CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

17.6

ॐ

सुशीला उपन्यास

धार्मिक

पं० गोपाल दासजी वरैया

मुद्रक एवं प्रकाशक
श्री शाँति सागर जैन सिद्धाँत प्रकाशिनी संस्था
आचार्य श्री शांतिवीर नगर
श्री महावीरजी (राजस्थान)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ दि० जैन वीर पुस्तकालय ॥
मंगल सेन जैन विशारद
पो० श्रीमहावीरजी (राजस्थान)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वीतरागाय नमः

सुशीला उपन्यास

(सामाजिक और धार्मिक)

लेखक

स्याद्वाद-वाचस्पति पं० गोपालदासजी वरैया

मोरेना [मध्य प्रदेश]

प्रकाशक

गृहविरत ब्रह्मचारी श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ

महामन्त्री

श्री शांतिसागर जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था

श्रीमहावीरजी (राजस्थान)

वैशाख श्री वीर निर्वाण संवत् २४८६

जनवरी १९६३ विक्रम सं० २०२० मूल्य १ रु० ३५ पैसे

सजिल्द १ रु० ७५ पैसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीशांतिसागरजैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था
आचार्यश्रीशांतिवीर नगर
श्रीमहावीरजी (राजस्थान) के पवित्र प्रेस में
मुद्रक—सेठ हीरालालजी पाटनी निवाई वालों के
मन्त्रित्व में छपा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धन्यवाद

श्री वीर निर्वाण सं० २४८८ में श्री आचार्य शिवसागरजी का ससंघ चतुर्मास लाडनू (राजस्थान) में हुआ। स्थानीय और बहिरागत जनता ने खूब धर्मध्यान में अपने तन मन धनका उपयोग किया। श्री संवस्थ दिगम्बर जैन मुनियों के उपदेशामृत से संतुष्ट हो ज्ञान प्रचार में भी कितने ही महानुभावों ने अपने धन का सदुपयोग किया। इस सुशीला उपन्यासका प्रकाशन भी उसी भावना का फल है। सेठ गणेश मल जी पांड्या शास्त्र स्वाध्याय के प्रेमी धार्मिक पुरुष हैं, अपने पुत्रों पर व्यापार का भार देकर सतत आत्म-हित में रत रहना अपने लिये कल्याणकर समझते हैं। आपने आज कल के स्त्री पुरुष बालक बालिकाओं की रुचि उपन्यास कहानी आदि के पढ़नेमें अधिक देखकर सुशीला उपन्यास के प्रकाशन की इच्छा प्रगट की और ३००) तीनसौ रु० देने का वचन दिया। आपका उत्साह देखकर नीचे लिखे महाशयों ने भी सहायता देना स्वीकार किया। बाकी रुपया श्री शांतिसागर जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था के शास्त्र प्रकाशन विभाग से लगा है। इस लिये इसकी कीमत कम रखी गई है।

सहायकों के नाम

३००) सेठ गणेशमल जी मोहनलाल जी पांड्या, लाडनू
२०१) श्रीमती सुगुनीबाई, धर्मपत्नी सेठ मिश्रीलाल जी पांड्या जसलगढ (सेठ हुलासरायजी पांड्या सुजानगढ़की मारफत)
१५०) सेठ नेमिचन्द जो शांतिलालजी बजाज अजमेर
१००) सेठ डूंगरमलजी गङ्गाराम जी लाडनू [राजस्थान]
५०) श्रीमती आसीबाई जी सीकर [राजस्थान]
५०) ब्रह्मचारिणी मदीबाई जो डेह [राजस्थान]

सुशीला उपन्यास में स्त्री शिक्षा का क्रम बतलाया है युवक युवती प्रौढ वृद्ध सबके लिये दृष्टांत देकर हितमार्ग दिखलाया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोम्मटसार जी के अनुसार तत्त्वचर्चा अच्छी तरह समझाई गई है अन्य उपन्यास जैसे कामविकारी कथानकों से भरे रहते हैं और पढ़ने वालों के हृदयमें अहितकर प्रभाव डालते हैं उस प्रकारका यह नही है।

पंडित शिरोमणि गोपालदास जी बरैया कोरे धर्म शास्त्री ही नहीं, साहित्यक भी थे इससे यह स्पष्ट हो जाता है।

सर्व साधारण में प्रचार करने के लिये इस पुस्तक की कीमत अत्यल्प [एक रु० ३५ पैसे] रखी गई है और बांटने वालों को १) रु० प्रतिके हिसाब से दी जायगी।

वैशाख सुदी ११ —ब्र० श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ
श्रीवीर निर्वाण सं० २४८६ महामन्त्री

संस्था का परिचय

बनारस [काशी] में इसकी स्थापना स्व० पं० पन्नालाल जी बाकलीवाल ने सन् १९१३ में की थी। १९१५ में बनारस से कलकत्ता स्थान परिवर्तन हुआ। उस समय इसका नाम भारतीय जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था था। सर्व प्रथम समय प्राभृत गोम्मटसार तत्त्वार्थ राजवार्तिकालङ्कार भाषा टीका मूल संस्कृत प्राकृत अनेक महान् ग्रन्थों का प्रकाशन किया गया। सन् १९५६ में कलकत्ता से श्रीमहावीरजी [राजस्थान] में स्थान परिवर्तन किया गया और आचार्य श्री वीरसागरजी की आज्ञानुसार भारतीय की जगह आचार्य श्रीशांतिसागर नाम जोडा गया।

तबसे इसका काम दिन प्रतिदिन उन्नत होता जा रहा है। इसका निजी भवन बन गया है। अति सुलभ ही नहीं, किन्तु दानी लोगोंकी सहायता से बिना मूल्य, अल्प मूल्य, लागत मूल्य से ग्रन्थ दिये जाते हैं।

मासिक पत्र 'श्रेयोमार्ग' निकलता है जिसके ग्राहकों को बिना मूल्य अनेक ग्रन्थ दिये जाते हैं।

संस्था विशुद्ध धार्मिक है। इसके संरक्षक, महामन्त्री, मन्त्री, सभासद सहायक निःस्वार्थ भाव से सेवा करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ख्यातिप्राप्त, अनेक उपाधियों से विभूषित

पं० गोपालदास जी वरैया

आपने जैन सिद्धान्त दर्पण, जैन सिद्धान्त प्रवेशिका और
"सुशीला" उपन्यास लिखकर जैन समाज का महान
उपकार किया है। आपकी लेखनी से
लिखी हुई "सुशीला" उपन्यास
तो आपके हाथों में है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपन्यास लेखक का संक्षिप्त जीवन—परिचय

पण्डितजीका जन्म विक्रम संवत १९२३ के चैत्रमें आगरेमें हुआ था आपके पिताका नाम लक्ष्मणदासजी था। आपकी जाति बरैया और गोत्र एछिया था। आपके बाल्यकालके विषयमें हम विशेष कुछ नहीं जानते। इतना ही मालूम है कि आपके पिताकी मृत्यु छुटपनमें हो गई थी। अपनी माताकी कृपासे ही आप मिडिल तक हिन्दी और छठी-सातवीं तक अंग्रेजी पढ़ सके थे। धर्मकी ओर आपकी जरा भी रुचि न थी। अंग्रेजीके पढे-लिखे लडके प्रायः जिस मार्गके पथिक होते हैं आप भी उसी पथके पथिक थे। खेलना-कूदना, मजा-मौज, तम्बाकू सिगरेट पीना, शेर और चौबाला गाना आदि आपके दैनिक कृत्य थे। १६ वर्ष की अवस्थामें आपने अजमेरमें रेलवेके दफ्तरमें पन्द्रह रुपये महीनेकी नौकरी कर ली। उस समय आपको जैनधर्मसे इतना भी प्रेम न था कि कम-से-कम जिन दर्शन तो प्रतिदिन कर लिया करें। अजमेरमें पण्डित मोहनलालजी नामके एक जैन विद्वान थे। एक वार उनसे आपका जैनमंदिरमें परिचय हुआ। उनकी संगतिसे आपका चित्त जैन धर्मकी ओर आकर्षित हुआ और आप जैन ग्रंथोंका स्वाध्याय करने लगे दो वर्षके बाद आपने रेलवेकी नौकरी छोड दी और रायबहादुर सेठ मूलचन्द्रजी नेमिचन्द्रजीके यहां इमारत बनवानेके काम पर २० रु० मासिककी नौकरी कर ली। आपकी ईमानदारी और होशियारीसे सेठ जी प्रसन्न रहे। अजमेरमें आप ६-७ वर्ष तक रहे। इस बीच आपका अध्ययन बराबर होता रहा। संस्कृतका ज्ञान भी आपको वहीं पर हुआ वहांकी जैन पाठशालामें आपने लघुकौमुदी और जैनेन्द्रव्याकरणका कुछ अंश और न्यायदीपिका ये तीनों ग्रंथ पढे थे। गोम्मटसारका अध्ययन भी आपने उसी समय शुरू कर दिया था। अजमेरके सुप्र-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्ध पण्डित मथुरादासजी और जैनप्रभाकर के वास्तविक सम्पादक बाबू बैजनाथजीसे आपका बहुत मेल जोल रहता था।

संवत ४८ में सेठ मूलचन्द्रजी जैनबद्री मूलबद्रीकी यात्राको निकले और आपको साथ लेते गये। लौटते समय आप बम्बई आये और यहां आपकी तबियत ऐसी लग गई कि फिर आपने यहीं पर रहनेका निश्चय कर लिया। हिसाब-किताबके काममें आप बहुत तेज थे इस कारण यहां आपको एस० जे० टेलरी नामकी यूरोपियन कम्पनीमें ४५ रु० मासिक की नौकरी मिल गई। आपके कामसे कम्पनीके मालिक बहुत खुश रहते थे। उन्होंने थोडे ही समयमें आपका वेतन ६० रु० मासिक कर दिया उसी समय आपकी माताजीका स्वर्गवास हो गया और आप बिना छुट्टी लिये ही आगरे चल दिये। फल यह हुआ कि आपको नौकरीसे हाथ धोना पडा। इसके बाद आप फिर बम्बई आये और सेठ जुहारमल मूलचन्द्रजी की दूकानपर मुनीम हो गये। कुछ समय पीछे एस० जी० टेलरीने आपको फिर रख लिया। अबकी बार आपने कई वर्ष तक यह काम किया। सं० ५१ में दिल्लीवाले लाला श्यामलालजी जौहरीके साथ आप जवाहरातकी कमीशन एजेंटीका काम करने लगे। इस कामको आपने कोई छः महीने तक किया पर इसमें आपने अचौर्य और सत्य-व्रतका पालन न होते देखकर आप इससे अलग हो गये और गोपाल-दास लक्ष्मणदास के नामसे गल्लेका काम करने लगे। यथेष्ट लाभ न होनेसे पांच छः महीनेके बाद यह काम उठा दिया संवत ५२ में पंडित धन्नालालजी काशलीवालके साझेमें आपने रुई अलसी चांदी आदिकी दलालीका काम करना शुरू किया और तीन चार वर्ष तक जारी रक्खा संवत ५६ में इसी कामको आप स्वतंत्र होकर करने लगे और दो वर्ष तक करते रहे।

बम्बईमें सेठ नाथारंगजी गांधीके फर्मके मालिक सेठ रामचन्द्र नाथा रङ्गजीसे आपका अच्छा परिचय हो गया था। सेठजी बडे ही सज्जन और धर्मात्मा हैं। सं० ५८ में आपके ही साझेमें पंडितजीने मोरेनामें आढतकी दूकान खोल ली और बम्बईका रहना छोड दिया। यह काम आपने कोई चार वर्ष तक किया। गांधी नाथारंगजीको जब मोरेनामें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लाभ नहीं दिखाई दिया तब उन्होंने सं० ६२ में शोलापुर बुला लिया और वहां आप लगभग दो वर्ष तक काम करते रहे। इसके बाद आप फिर मोरेना चले गये और वहां आपने सेठ हरिभाई देवकरण और सेठ रावजी नानचन्द्रकी सहायतासे गोपालदास माणिकचन्द्रके नामसे स्वतंत्र आढतकी दूकान खोली। इस कामको करते हुए आपने माधव जीनिंग फैक्टरी लिमिटेड की स्थापना की। इस काममें आपने बहुत परिश्रम किया। पर कई कारणोंसे आपको कोई दो वर्ष के बाद इससे संबंध छोडना पडा। इसके बाद आपने फिर गांधी नाथारंगजीके साथ काम किया। सं० ७०-७१ में रायबहादुर सेठ कल्याणमलजीके और उनके बाद दो वर्ष तक आप रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्द्रजीके साझेमें काम करते रहे।

जिस समय पण्डितजी अजमेर में थे उस समय उनकी शादी हो चुकी थी। सं० ४५ में आपको प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ, जो थोडे दिन जिया। सं० ४७ में कौशल्याबाई और ४६ में चि० माणिकचन्द्र का जन्म हुआ। इसके बाद आपके कोई सन्तान पैदा नहीं हुई। पिछली दोनों सन्तानें जीवित हैं। माणिकचन्द्र का विवाह हो चुका है और उनके एक पुत्र भी है।

पण्डितजी के सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ बम्बई से होता है।। यहां आपके और पण्डित धन्नालालजी के उद्योग से मार्गशीर्ष सुदी १४ संवत् १९४९ को दिगम्बर जैन सभा की स्थापना हुई। पण्डित धन्नालालजी आपके अनन्य मित्रों में से थे। लोग आप दोनों को "दो शरीर एक प्राण" कहा करते थे। पण्डित धन्नालालजी आपके प्रत्येक काम में प्रधान सहायक थे। इसी वर्ष के मार्च में श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी की ओर से खुरई (सागर) की सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठा हुई। इतना बड़ा जनसमूह शायद ही किसी मेले में इकट्ठा हुआ होगा। दिगम्बर जैन-समाज के प्रायः सभी धनी-मानी और पण्डित जन उपस्थित हुए थे। इस अवसर को बहुत ही उपयुक्त समझकर बम्बई सभाने आपको और पण्डित धन्नालालजी को सम्पूर्ण दिगम्बर जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाजकी एक महासभा स्थपित करने के लिए खुरई भेजा इसके लिए वहां यथेष्ट प्रयत्न किया। परन्तु यह जानकर कि जम्बूस्वामी मथुरा के मेले में महासभा की स्थापना का निश्चय हो चुका है, इन्हें लौट आना पडा। इसके बाद सं० ५० के जम्बूस्वामी के मेले में भी बम्बई सभाने इन्हें भेजा और उनके उद्योग से वहां पर महासभाका कार्य शुरू हुआ। महासभा के महाविद्यालय के प्रारम्भ का काम आपके ही द्वारा होता रहा है। सं० ५३ के लगभग भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परीक्षालय स्थापित हुआ और उसका काम आपने बडी कुशलता से सम्पादन किया। इसके बाद आपने दिगम्बर जैन सभा बम्बई की ओर से जनवरी सन् १९०० में (सं० ५६ के लगभग) "जैनमित्र" निकालना शुरू किया। पण्डितजी की कीर्तिका मुख्य स्तम्भ 'जैनमित्र' है। यह पहले ६ वर्ष तक मासिक रूप में और फिर संवत् ६२ की कार्तिक सुदी से २-३ वष तक पाक्षिक रूप में पण्डित जी के सम्पादकत्व में निकलता रहा। सं० १९६५ के १८ वें अङ्क तक जैनमित्रकी सम्पादकीमें पण्डितजी का नाम रहा। इसकी दशा उस समय के तमाम पत्रों से अच्छी थी, इस कारण इसका प्रायः प्रत्येक आन्दोलन सफल होता था। सं० ५८ के आसोज में बम्बई प्रान्तिक सभा की स्थापना हुई और इसका पहिला अधिवेशन माघ सुदी ८ को आकलूज की प्रतिष्ठा पर हुआ। इसके मन्त्री का काम पण्डितजी करते थे और आगे बराबर आठ दस वर्ष तक करते रहे प्रान्तिक सभा द्वारा संस्कृत विद्यालय बम्बई, परीक्षालय, तीर्थक्षेत्र, उपदेशभण्डार आदि के जो जो काम होते रहे हैं, वह पाठकों से छिपा नहीं है।

बम्बई दिगम्बर जैन पाठशाला सं० ५० में स्थापित हुई थी। यह पाठशाला अब भी चल रही है पण्डित जीवाराम लल्लूराम शास्त्रीके पास आपने परीक्षामुख, चन्द्रप्रभकाव्य और कातंत्र व्याकरण इसी पाठशाला में पढा था।

कुण्डलपुर के महासभा के जलसे में यह सम्मति हुई कि महाविद्यालय सहारनपुर से उठाकर मौरेना में पण्डितजीके पास भेज दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाय, परन्तु पण्डितजी का वैमनस्य मुंशी चम्पतरायजी के साथ इतना बढ़ा हुआ था कि उन्होंने उनके अण्डर में रहकर इस काम को स्वीकार न किया। इसी समय उन्हें एक स्वतंत्र जैन पाठशाला खोलकर काम करने की इच्छा हुई। आपके पास पं० वंशीधर जी कुण्डलपुर के मेले से पहिले ही पढते थे। अब दो-तीन विद्यार्थी और भी जैन सिद्धान्त का अध्ययन करने के लिए जाकर रहने लगे। इन्हें छात्रवृत्तियां बाहर से मिलती थीं। पण्डितजी केवल इन्हें पढा देते थे। इसके बाद कुछ विद्यार्थी और भी आ गये और एक व्याकरण के अध्यापक रखने की आवश्यकता हुई, जिसके लिए सबसे पहले सेठ सूरचन्द्र शिवरामजी ने ३० रु० मासिक सहायता देना स्वीकार किया। धीरे-धीरे छात्रों की संख्या इतनी हो गई कि पण्डितजी को उनके लिए नियमित पाठशाला और छात्रालय की स्थापना करनी पडी। यही पाठशाला आज "जैनसिद्धान्त विद्यालय" के नाम से प्रसिद्ध है और इसके द्वारा जैनधर्म के बड़े-बड़े ग्रंथों के पढ़नेवाले अनेक पंडित तैयार हो गये हैं। पाठशाला के साथ में एक छात्राश्रम भी है। छात्राश्रम और पाठशाला के लिए एक अच्छी इमारत लगभग दस हजार रुपयों की लागतकी बन गई है। पाठशाला और छात्राश्रम का वार्षिक खर्च इस समय कोई दस हजार रुपया है, यह सब रुपया पण्डितजी चन्दे से वसूल करते थे।

ग्वालियर स्टेट की ओर से पण्डित जी को मोरेना में आनरेरी मजिस्ट्रेट का पद प्राप्त था। वहां के चेम्बर आफ कामर्स और पंचायती बोर्ड के भी आप मेम्बर थे। बम्बई प्रान्तिक सभा ने आपको 'स्याद्वादवारिधि" इटावे की जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाने आपको 'वादिराजकेसरी' और कलकत्तेके गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के पण्डितोंने 'न्यायवाचस्पति' पदवी प्रदान की थी। सन् १९१२ में दक्षिण महाराष्ट्र-जैन-सभा ने आपको आपने वार्षिक अधिवेशन का सभापति बनाया था और आपका बहुत बडा सम्मान किया था।

पण्डितजी पठित विद्या बहुत हो थोडी थी। जिस संस्कृतके वे पण्डित कहला गये, उसका उन्होंने कोई एक भी व्याकरण अच्छी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरह नहीं पढा था। गुरुमुखसे तो उन्होंने बहुत ही थोडा नाममात्रको पढा था। तब वे इतने बडे विद्वान् कैसे हो गये। उसका उत्तर यह कि उन्होंने स्वावलम्बन शीलता और निरन्तरके अध्यवसायसे पाण्डित्य प्राप्त किया था। पण्डितजी जीवन भर विद्यार्थी रहे। उन्होंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया था वह अपने ही अध्ययनके बलपर; और इस कारण उसका मूल्य रटे हुए या घोटे हुए ज्ञानसे बहुत अधिक था। उन्हें लगातार दस बर्ष तक बीसों विद्यार्थियोंको पढाना पढा और उनकी शंकाओंका समाधान करना पडा। विद्यार्थी प्रौढ थे, कई न्यायाचार्य और तर्कतीर्थोंने भी आपके पास पढा था। इस कारण प्रत्येक शंका पर आपको घंटों परिश्रम करना पडता था। जैनधर्मके प्रायः सभी बडे बडे उपलब्ध ग्रन्थोंको उन्हें आवश्यकताओंके कारण पढना पढा इसीका यह फल हुआ कि उनका पाण्डित्य असामान्य हो गया। वे न्याय और धर्मशास्त्र के बेजोड विद्वान् हो गये और इस बातको न केवल जैनोंने, किन्तु कलकत्तेके बड़े बडे महामहोपाध्यायों और तर्कवाचस्पतियोंने भी माना बिक्रमकी इस बीसबी शताब्दी के आप सबसे बडे दिगम्बर जैन पण्डित थे, आपकी प्रतिभा और स्मरणशक्ति विलक्षण थी।

पण्डितोंको लिखनेका अभ्यास नहीं रहता है, पर पण्डितजी इस विषयमें अपवाद थे। उनमें अच्छी लेखनशक्ति थी यद्यपि अन्याय कार्योंमें फंसे रहने के कारण उनकी इस शक्तिका विकास नहीं हुआ और इस ओर उन्होंने प्रयत्न भी बहुत कम किया, फिर भी हम उन्हें जैन-समाज के अच्छे लेखक कह सकते हैं। उनके बनाये हुए तीन ग्रंथ हैं-जैनसिद्धान्तदर्पणका केवल एक ही भाग है। यदि इसके आगेके भी भाग लिखे गये होते, तो जैन-साहित्यमें यह एक बडे कामकी चीज होती। यह पहला भाग भी बहुत अच्छा है। जैन सिद्धात प्रवेशिका जैन धर्म के विद्यार्थियों के लिये एक छोटेसे पारिभाषिक कोश का काम देती है इसका बहुत प्रचार है। सुशीला उपन्यास उस समय लिखा गया था, जिस समय हिन्दी जगत में इस तरह के उपन्यासों का एक तरहसे अभाव ही था, और आश्चर्यजनक घटनाओंके बिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपन्यास ही न समझा जाता था। उस समय को दृष्टि से इसकी रचना अच्छे उपन्यासों में की जा सकती है। इसके भीतर जैन धर्मके कुछ गम्भीर विषय डाल दिये हैं, जो एक उपन्यास में नहीं चाहिये थे, फिर भी वे बडे महत्त्व के हैं। इन तीन पुस्तकोंके सिवाय पण्डितजीने सार्वधर्म जैन-जागरफी आदि कई छोटे-छोटे टेक्ट भी लिखे थे।

पण्डित जी को जहां तक हम जानते हैं कि कुटुम्ब-सम्बन्धी सुख कभी प्राप्त नहीं हुआ। इस विषय में हम उन्हें ग्रीसके प्रसिद्ध विद्वान् सुकरात के समकक्ष समझते हैं। पण्डितानीजीका स्वभाव बहुत ही कर्कश, क्रूर, कठोर, जिद्दी और अर्धविक्षिप्त था। जहां पण्डितजीको लोग देवता समझते थे, वहां पण्डितानीजी उन्हें कौडीके कामका आदमी नहीं समझती थी। वे उन्हे बहुत तंग करती थी और इस बातका जरा भी ख्याल न रखती थी कि मेरे बर्तावसे पण्डितजीकी कितनी अप्रतिष्ठा होती होगी। कभी कभी पण्डितानीजीका धावा विद्यालयमें भी होता था और उस समय छात्रों तक की शामत आ जाती थी। अभी पण्डितजी जब आगरेमें बहुत ही सख्त बीमार थे, तब पण्डितानीजीकी विक्षिप्तता इतनी बढ गई थी कि इनके आक्रमणसे पण्डित जीका जीवन बचाना भी छात्रोंको कठिन होगया था। वे बडी मुश्किल से पिंड छुडाकर उन्हें अपने घरसे बेलनगंज ले गये थे। सारा समाज आज जिनके लिये रो रहा है, उनके लिए पण्डितानीजीकी आंखसे शायद एक आंसू भी न पडा होगा। इस अप्रिय कथाके उल्लेख करने का कारण यह है कि पण्डितजी इस निरन्तर की यातनाको, कलहको उपद्रवको बडी धीरतासे बिना किसी उद्वेगके भोगते थे और अपने कर्त्तव्यमें जरा भी शिथिलता नही आने देते थे और यह पण्डितजीका अनन्य साधारण गुण था। सुकरातकी स्त्री खिसियानी हुई बैठी थी, सुकारत कई दिनके बाद घर आये। खाने-पीनेकी वस्तुओंका इन्तजाम किये बिना ही वे घरसे चले गये थे और कही लोकोपकारी व्याख्यानादि देने में लगकर घरकी चिंता भूल गये थे। पहले तो श्रीमतीने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत सा गर्जन तर्जन किया, पर जब उसका कोई भी फल नहीं हुआ तब उनका वेग निःसीम हो गया और उसने बर्फ जैसे पानीका घड़ा उस शीतकाल में सुकरातके ऊपर औंधा दिया। सुकरात ने हंसकर कह दिया कि गर्जनके बाद वर्षन तो स्वाभाविक ही है। पण्डितजी के यहां इस प्रकारकी घटनाएं यद्यपि वे लिखने में इतनी मनोरंजक नहीं है-अक्सर हुआ करती थी और पण्डितजी उन्हें सुकरातके ही समान चुपचाप सहन किया करते थे।

मनुष्यके स्वभाव और चरित्रका अध्ययन करना बहुत कठिन है और जब तक यह न किया जाय, तब तक किसी पुरूषका चरित्र नहीं लिखा जा सकता। पण्डितजीके सहवास में थोडे समय में (छः-सात महीने) रहकर हमने उनके विषय में जो कुछ जाना था उसीको यहां सिलसिले से लिख दिया है।

"यदि आपको पापात्मा हीरालाल और रामकुंवरिके पापोंका फल, उदयसिंह की परस्त्री लम्पटता का बुरा परिणाम क्या हुआ ? यह जानने की इच्छा है, यदि आपको सुशीला के अखण्ड पातिव्रत का, भूपसिंह और जयदेव की अलौकिक मित्रताका और रतनचन्द महामुनि के वैराग्यका पुण्यचरित्र पढ़ने की इच्छा है। यदि आप प्रकृतिकी सच्ची शोभा, काव्य की अनौखी छटा और नीति की सुन्दर मोहनी मूर्ति देखना चाहते है, तो सुशीला उपन्यासको अवश्य ही पढ़िये।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वीतरागाय नमः

सुशीला उपन्यास

मंगलाचरण ।

सकल व्रतनिमें अग्रसर, सकल कर्म क्षयकार ।
सकल निकल जासों भये, नमों शील शिवद्वार ॥

प्रथम पर्व ।

अर्द्ध रात्रिका समय है, चारों तरफ सन्नाटा छा रहा है। पूर्णमासीका चन्द्रमा पूर्ण रूपसे आकाशके मध्यभागमें तिष्ठ अपनी किरणोंसे समुद्र को क्षोभित कर रहा है। कभी समुद्रकी लहरें किसी चट्टानसे टकरा कर तूफानकी आशंका उत्पन्न कर देती हैं। और कभी जलचर जीव पानीमें से अपना भयानक मुख निकाल ऐसा भाव दिखाते हैं, मानों हाथसे निकली हुई शिकारकी खोज में व्यग्र हो रहे हैं; देखते २ पूर्वकी ओरसे एक घनघोर काली घटाने धीरे २ बढकर चन्द्रमाको ढक लिया। सर्व जगत अन्धकारमय भासने लगा। मेघराज घोर रूपसे गरजने लगे। और इस श्यामवर्णरूप विश्वव्यापी अन्धकारमें कभी कभी चपला अपने चंचल चमत्कारकी विचित्र छटा दिखाने लगी।

ऐसे समयमें समुद्रके बीचमें एक छोटासा जहाज अपनी मंद गतिसे गमनकर रहा है, जिसमें एक स्त्री और दो पुरुष तो प्रधान हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाकी चार पांच सेवक तथा आठ दश मल्लाह हैं, जो वारी वारीसे जहाजको खे रहे हैं। थोडी देरमें पवनने जोर पकडा और समुद्रकी लहरोंके झकोरोंसे जहाज डगमगाने लगा। और धीरे धीरे जहाजमें पानी भरने लगा। इतनेमें एक छोटेसे चट्टान से टकरा कर जहाज फट गया। और उसके डूबनेमें अब कुछ सन्देह नहीं रहा।

मल्लाहोंने बडी फूर्तीके साथ एक छोटी सी डोंगीमें उस स्त्रीको बिठाया और जल्दी जल्दी खे कर डोंगीको एक तरफको चलाना शुरू किया। इतनेमें जहाज डूब गया और सब मनुष्य पानी में गोतेखाने लगे।

इन तीन प्रधान व्यक्तियोंमें से एक पुरुषका नाम जयदेव दूसरेका भूपसिंह और स्त्रीका नाम सुशीला था। जयदेव सुशीला का पति और भूपसिंह जयदेवका मित्र था। जयदेवकी अवस्था अनुमान बीस वर्षके और भूपसिंह का पच्चास वर्षके होगी।

सुशीला अभी नवयौवना है। उसकी अवस्था लगभग पन्द्रह व सोलह वर्षके होगी। नागिनके समान काले केशोंकी लट मुखके ऊपर लटक रही है, जिसको देखकर चन्द्रमा भी लज्जित हो जाता है। मृगाके समान चचल नेत्रोंकी शोभा ही निराली है।

कुच कलशोंकी शोभा देखकर चक्रवाकयुगल शरमा जाता है उदरकी त्रिवली त्रिवेणीकी शोभाको धारण कर रही है। केलेके स्तम्भ समान जंघावाली, गजगामिनी कोमलांगी, पिकवयनी, उस अबलाको एक डोंगीमें बैठाकर कितनेही मल्लाह किनारेकी तरफ ले चले। मार्गमें सुशीला मल्लाहोंसे पूछती है कि, जयदेव और भूपसिंह कहां है? तब मल्लाह कह देते हैं कि, पीछेसे दूसरी डोंगी में आ रहे हैं।

मल्लाहोंके वचनको सुनकर कुछ देरके वास्ते सुशीला आश्वासन पा कर फिर कर पीछेको देखती है, परन्तु अपने साथियोंके आगमन चिह्न न देखकर फिर व्याकुलचित्त हो जाती है।

इस तरह नाना विकल्पजालोंमें उलझती हुई, कभी नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाती है, और कभी अपने साथियोंके शीघ्र आ पहुँचनेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशासे धैर्य्य धारण कर लेती है। डोंगी बड़े वेगसे चली जा रही है! सवेरा होते होते समुद्रके एक तटके निकट जाकर ठहर गई। तब मल्लाहोंने सुशीलाको डोंगीसे उतार कर एक म्यानेमें बिठाया और दरवाजा बन्द करके उसे रवाना किया। यह सब व्यवस्थाको देखकर सुशीला भयचकित हो पूछने लगी यह म्याना कहां जाता है? और हमारे साथी कहां हैं! परन्तु सुशीलाका इन प्रश्नोंका कुछ भी उत्तर नहीं मिला। धीरे धीरे सुशीलाका कोमल चित्त भयसे कम्पायमान होने लगा। अश्रुधाराकी झडीसे सब वस्त्र भीज गये। निदान एक दीर्घ उश्वास लेकर हाय जयदेव! कहती हुई सुशीला मूर्छित हो गई। थोडी देरमें म्यानेके झरोखोंमें आती हुई ठण्डी हवाके लगनेसे होशमें आई, फिर भी जयदेव और भूपसिंहकी याद करके रोने लगी। दोपहरके समय म्याना एक बागमें पहुंचा। म्यानेसे उतार कर सुशीला बागके बीचमें बने दुमंजले बंगलेमें पहुंचाई गई।

बंगलेके उस दूसरे मंजिलमें बीचोंबीच झाड फानूस आईने पलंग वगैरह ऐशोआरामके सब सामानोंसे सजा हुआ एक खूबसूरत दीवानखाना कमरा बना है। दीवानखानेके चारों तरफ एक चाला है और चाली को दूसरी तरफ चारों ओर कई कोठरियां बनी है, जिनमें हर तरहके जरूरतके सामान मौजूद हैं। वहां पहुंचते ही एक दासी स्नानके वास्ते गरम जल तथा दूसरा एक सुवर्णके थालमें नाना प्रकारके भोजन और व्यंजन ले आई। परंतु सुशीलाने जयदेव और भूपसिंहकी यादमें भोजनकी ओर झांका तक नहीं। कभी सोचती है कि, यह देश किसका है और ये मनुष्य कौन हैं? कभी विचारती है कि कही यह देश मेरे श्वशुरका न हो क्योंकि, बंदरपर म्याने वगैरहकी सब तय्यारी ठीक थी, उस ही प्रकार यहां भी रहनेको मकान तथा भोजनादिक समस्त सामग्री यथोचित है। परंतु वे दोनों अब तक क्यों नहीं आये? फिर हृदयमें विचार उठता है कि, यदि यह देश हमारा होता, तो समस्त सेवक वगैरह हमारी आज्ञाका पालन करते। परंतु वैसा कुछ दीखता नहीं है। बड़े ही सोच विचारमें पडी। भयसे सर्व अङ्ग कांपने लगा। सुशीलाके संग सदा कितनीही सहेलियां रहा करती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थीं, परंतु आज इस बंगलेमें बेचारी अकेली बैठी हुई प्रिय जयदेव तथा भूपसिंहकी याद कर करके आंसू बहा रही है।

इतने ही में अकस्मात् एक मनुष्य आया और कहने लगा—हे प्रिये तुम्हारे विरहमें मैं इतने दिनोंसे अत्यंत व्याकुल हो रहा हूं। आज तुम्हारे दर्शनसे मैं अपनेको धन्य समझता हूं। कृपा करके अब शीघ्र ही मेरे हृदयसे लगकर विरहज्वालाको शान्त करो। बडे परिश्रम और सौभाग्यसे यह आजका दिन प्राप्त हुआ है। तुम्हारे विरहमें मैंने जो कुछ दुःख सहे हैं, उनका वर्णन नहीं कर सक्ता। अब कृपा करके शीघ्र ही प्रणयदान देकर मुझे कृतार्थ करो। सुशीला इस मनुष्यके चेहरेको देखकर और उसकी बातोंको सुनकर न मालूम क्या स्मरण करके भय-भीत स्वरसे एक चीख मारकर मूर्छित हो गई।

द्वितीय पर्व

प्रातःकालका समय है। पूर्वदिशाकी ओर कुछ २ लालिमा दिखाई पड रही है। थोडी देरमें सूर्यदेवका उदय होनेवाला है। जिस प्रकार सम्यक्त्वके प्रादुर्भावसे कुछ पहिले करणलब्धिके प्रभावसे मिथ्यात्व दूर भाग जाता है, उस ही प्रकार सूर्योदयके सन्ध्याकी लालिमासे अन्धकार विदा हो गया। समुद्रके तटके वृक्षोंपर घोंसलोंमें से चिडियां निकल २ कर इधर उधर फुदक फुदक कर चुहाचुहा रही हैं। दानेकी खोजमें जाते समय अपने घोंसलोंके द्वारपर अपने बच्चोंकी चोंचसे चोंच मिला-कर निसर्गज मातृप्रेमका नमूना दिखा रही है।

ऐसे समयमें एक तख्तेपर बैठा हुआ जयदेव कभी डूबता कभी उछलता सूर्यके निकलते निकलते समुद्रके किनारे जा लगा। समुद्रतट की भूमिकी शोभा देखते ही जयदेवका चित्त हरा भरा सा हो गया। वह बडी शीघ्रताके साथ तख्तेको छोडकर पास ही एक वृक्षके नीचे एक सुन्दर शिलापर जा लेटा।

तीन दिनकी भूख प्यासके मारे सब शरीर और इन्द्रियां शून्य होगई थीं, अतः वह समुद्रमें बहनेके दुःखोंको याद करके मूर्छित हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया। समुद्रतटकी ठण्डी ठण्डी हवा लगनेसे कुछ देरमें होश हुआ, तो सुशीला और भूपसिंहकी याद करके जोर जोरसे रोने लगा। थोडी देर में स्वयं धीरज बांधकर चुप हुआ। चुप होते ही निद्राने घर दबाया, और दो तीन घण्टे खूब सोया।

आंखें खुलनेपर थका हुआ शरीर हलका मालूम होने लगा। परंतु साथ ही क्षुधाकी वेदना से चित्त व्याकुल होने लगा। धीरे धीरे शौच स्नानसे निवृत्त होकर संक्षेपमें सन्ध्यावन्दन सामायिकादि क्रियाकाण्ड-पूर्वक मनमें पंचपरमेष्ठीका ध्यान करके वृक्षके नीचेसे उकठर आहार की चिन्तामें एक ओरको गमन करने लगा। परन्तु शरीर शिथिल होने के कारण थोडी दूर चलता है। फिर किसी वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम लेता है। और इस प्रकार बडी कठिनतासे दुपहर तक धीरे धीरे चलकर समुद्रतटसे दो कोसकी दूरीपर एक छोटेसे ग्राममें पहुंचा। तलाश करते करते जिन चैत्यालयमें पहुंच भगवत्के दर्शन करके बैठा ही था कि इतनेमें एक वृद्ध पुरुष दर्शनार्थ चैत्यालयमें आया और दर्शन करके जयदेवसे पूछने लगा कि आपका निवास कहां है? और यहांपर किस प्रयोजनसे आपका आना हुआ?

जयदेवने उत्तर दिया कि मैं एक मुसाफिर हूं और मार्ग भूलकर यहां आ निकला हूं। यह सुनकर वृद्धपुरुषने जयदेवसे प्रीतिपूर्वक अपने स्थानपर चलनेको कहा। जयदेवने स्वीकार भी किया! वृद्धपुरुष जय-देवको अपने घरपर लाया और भोजन कराकर एक झोंपडीमें चार-पाई बिछा दी, जिस पर कई दिनका थका हुआ जयदेव आनन्दके साथ फिर सो गया। चार घण्टेमें जयदेवकी नींद खुली। चारपाईसे उठकर हाथ मुंह धोकर जलपी, वृद्ध पुरुषसे विदा मांग पश्चिम दिशाको रवाना हुआ। धीरे धीरे एक मंजिल पूरी करके कंचनपुर पहुंचा। शहरके बाहर ही धर्मशालामें उतरकर शौच स्नान सन्ध्यावन्दन से निवृत्त होकर श्रीमन्दिरजीमें इष्टदेवके दर्शन करके बाजारमें सैर करनेको चला। पैसा गांठमें नहीं है, जठराग्निउद्विग्न कर रही है, सुशीला और भूपसिंह की यादके मारे चित्त जुदा व्याकुल हो रहा है। अतः कभी इधर जाता है कभी उधर जाता है और कभी खडा होकर आंसू बहाने लगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसकी ऐसी अवस्था देखकर एक जौहरीने अपनी दूकान पर बुलाकर प्रेमपूर्वक पूछा, तुम ऐसे उदास होकर क्यों इधर उधर घूम रहे हो जयदेवने उत्तर दिया कि, रोजगारकी तलाशमें। फिर जौहरीने पूछा क्या तनख्वाह लोगे ? जयदेवने उत्तर दिया कि, रोटी कपडे ।

यह बात जौहरीने स्वीकार की और जयदेव भी हर्षपूर्वक उसके पास रहने लगा। जयदेव रत्नपरीक्षामें बहुत निपुण था। उसने धीरे धीरे जौहरीकी दूकानके सब कामका भार अपने ऊपर उठा लिया। जयदेवकी इस योग्यताको देखकर रतनचन्द जौहरी ऐसा प्रसन्न हुआ कि जयदेवको अपने निजपुत्र हीरालालसे भी अधिक प्यार करने लगा परन्तु हीरालालको यह बात सह्य न हुई और उसके चित्तमें जयदेव की ईर्षाका अंकुर जड पकड गया। वह इस बातकी चिन्तामें लगा कि, जयदेवको किस प्रकार घरसे बाहर करूं।

रतनचन्द कंचनपुरके जौहरियोंमें बडा श्रीमंत समझा जाता था। उसकी पहिली स्त्री रामप्यारी अपने एक हीरालालका छोडकर दश वर्ष पहिले ही परलोकको गमन कर चुकी थी। इस समय रतनचन्दकी उमर ४० वर्षके और हीरालालकी उमर करीब पंद्रह वर्षको होगी पांच वर्ष पहिले रतनचन्दका दूसरा विवाह हो चुका है।

उसकी दूसरी स्त्री रामकुमारीकी अवस्था इस समय अनुमान अठारह वर्षकी है। जयदेव रतनचन्दके चौकेमें ही भोजन करता था। इसके स्वरूप और लावण्यको देखकर रामकुंवरि मोहित हो गई। निरन्तर जयदेवका ही ध्यान करने लगी। परन्तु क्या कर ? क्योंकि, जयदेव केवल भोजन करने मात्रको कभी रतनचन्दके साथ और कभी हीरालालके साथ आया करता था, अतः उसे कभी एकांतका मौका ही नहीं मिलता था। अकस्मात् एक दिन रतनचन्द और हीरालाल शीघ्र ही व्यालू कर आये, परतु जयदेवको कार्यवश विलम्ब हो गया और वह व्यालू करनेको सबके पीछे गया। व्यालू करनेके बाद एकांत पाकर रामकुंवरिने जयदेवका हाथ पकड लिया और उसके साथ कामचेष्टा करने लगी।

यह अवस्था देखकर जयदेव चकित हो गया और धीमे स्वरसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनयपूर्वक कहने लगा कि, आप मेरी धर्मकी माता हैं। यह अनुचित व्यवहार मुझसे कदापि नहीं हो सकता। इस प्रकार निराशाके वचन सुनकर रामकुंवरि लज्जित होनेके बदले धृष्टतापूर्वक कहने लगी कि, यदि तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं करोगे, तो मैं तुमपर उलटा दोषारोपण करके तुम्हारा फजीता करूंगी और तुमको घरसे निकलवा दूंगी यह सुनकर जयदेवने गम्भीर स्वरसे कहा कि, आप उचित समझें सो करें परन्तु मैं यह अधर्म कार्य कदापि नहीं करूंगा। ऐसा कह बल पूर्वक अपना हाथ छुडा घरसे बाहर निकल आया और दुकानपर जा अपना मामूली काम करने लगा।

इसकी इस चालाकीको देखकर रामकुंवरि हाथ मलती रह गई और अपनी आशाकी पूर्णता दुःसाध्य समझ इसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचनेका बिचार करने लगी। घरके सब कामकाज यों ही छोडकर पलंगपर पड रही। रात्रीको जब रतनचन्द आया, तो फूटफूट कर रोने लगी। इस अवस्थाको देखकर रतनचन्द घबडाया और रामकुंवरिसे रोनेका करण पूछने लगा।

ज्यों ज्यों वह पूछता था, त्यों त्यों रामकुंवरि हिचकियां लेकर रतन चन्दके घबडाहटको बढाती जाती थी। आखिरकार बहुत कुछ समझाने बुझानेपर उसने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया कि, यह जयदेव जिसको आपने अपने घरमें रख छोडा है और जिसके ऊपर आपका बहुत बडा विश्वास है, बडा ही धूर्त और बदमाश है। प्रतिदिन जब तक आपके साथ भोजन करनेको आता था, तब तिरछी निगाहोंसे मेरी तरफ देखा करता था। परन्तु अब तक आपके भयसे वह कुछ साहस नहीं कर सका।

दैवयोगसे आज शामको कुछ कार्यवश व्यालू करनेके लिये वह सबसे पीछे आया और व्यालू करनेके बाद एकांत पाकर मुझ अबला पर बलात्कारपूर्वक शील भ्रष्ट करनेकी चेष्टा करने लगा। मेरी चोली फाड डाली और पशुकर्म करनेको उपस्थित हुआ। जब मैं चिल्लाई और पडोसियोंको बुलानेकी उसको धमकी दी, तब वह अधर्म शीघ्र ही भाग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया। अब मैं अत्यन्त लज्जित हो रही हूं। मेरी लाज आपके हाथ है। या तो इस घरमें मैं ही रहूंगी, या वह ही रहेगा। यदि आप इसका ठीक ठीक प्रबंध नहीं करेंगे, तो मैं कुएमें गिर पड़ूंगी, अथवा विष खाकर मर जाऊंगी। इतना कहकर रामकुंवरि बिलख बिलख कर रोने लगी।

इस अवस्थाको देखकर रतनचन्द बडे चक्करमें पड़ा। वह कभी अपनी प्रियाकी दुःखभरी बातोंको सुनकर भ्रममें पड जाता है और कभी जयदेवकी योग्यता और सौजन्यका स्मरण करके स्तंभित हो जाता है रतनचन्द विचारशक्ति और नीतिनिपुण था। अतः उसकी विचारशक्तिने असली बातको खोज निकाला। तब रामकुंवरिके षड्यन्त्रको समझ गया। परन्तु मौका देखके उस समय जयदेवको धमकानेका वचन देकर गुस्सा दबाके रह गया।

परन्तु रामकुंवरिको इससे सन्तोष नहीं हुआ उसने रतनचन्दको इस विषयमें उदासीन देखकर हीरालालको जयदेवके विरुद्ध भडकानेके प्रयत्न किया। हीरालाल पहिले ही से जयदेवके विरुद्ध था अब रामकुंवरिकी सहायता पाकर उसका साहस द्विगुणित हो गया और इस प्रकार वह जयदेवका जानी दुश्मन बन गया। मौका पाकर एक दिन आधी रातके समय खड्ग लेकर जयदेवके पलंगके पास जा खड्ग म्यानसे बाहर करके जयदेवपर चलानेको ही था कि इतने ही में पीछे से आकर किसी ने हीरालाल का हाथ पकड लिया और हीरालाल भय चकित होकर हाथ पकडने वाले की सूरत देखने लगा।

तृतीय पर्व।

मध्याह्न का समय है। सूर्य अपने पूर्ण प्रतापसे पृथिवी को संतप्त कर रहा है। पशु पक्षी छायाकी खोजमें इधर उधर व्याकुल हो रहे हैं। भोले जीव सांसारिक दुःखदावाग्निसे भयभीत होकर संसारमें इसी प्रकार सुखकी छाया खोजनेमें आकुलित रहते हैं। तृषातुर पांथजन आसपास जलाशयोंके न मिलनेसे भटकते फिरते हैं। उन बेचारोंको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस प्रचंड ग्रीष्ममें किसी बतलानेवालेके भी दर्शन नहीं होते। सम्यक्त्व सलिलके न मिलनेसे मिथ्यात्व-आतप-दग्ध-दूरभव्यमें इसी प्रकार चक्कर खाते रहते हैं।

उस समय उन्हें किसी सम्यग्दृष्टिका समागम भी नहीं मिलता। प्यासे मृगोंके समूह मृगतृष्णामें जलका संकल्प करके दौडे जा रहे हैं, पर बेचारे उस प्रयत्न में कृतकार्य नहीं होते। दुःखोत्तप्त संसारी जीव विषयोंमें इसी प्रकार सुखका संकल्प करते हैं और उनके आसेवनसे परिपाकमें निराश होते हैं। तप्त पवनके झकोरों से छोटे २ वृक्षोंकी सुकुमार कोंपलें मुरझाकर खिन्न हो रही हैं। व्याघ्रादिक हिंस्रजीव कहीं झाडियों में पड़े हुए जोर से हांफ रहे हैं। उनके भयावने शब्द मार्ग-क्रमण करनेवाले पथिकजनों को भयभीत कर देते हैं। चारों तरफ सन्नाटा खिंच रहा है।

जङ्गल बडा डरावना है। दूर २ तक मनुष्योंकी आबादी नजर नहीं आती। जिधर देखते हैं, उधर विस्तृत पर्वतमालायें दूर तक पैर फैलाये पडी हैं।

एक छोटी सी पगंडडी पर ऐसे समयमें एक भाग्यका मारा हुआ पथिक चल रहा है। उसके चंचल नेत्र चारों तरफका दृश्य देख रहे हैं; परन्तु न जाने क्यों आंसुओंकी धारा बहा रहे हैं। वह पथिक अश्रुधारा को दश पांच कदम चलके दुपट्टे से पोंछ लेता है, परन्तु धारा बन्द नहीं होती।

पाठको! यह और कोई नहीं आफतका मारा हुआ बेचारा भूपसिंह है। कई दिनका भूखा प्यासा जयदेव और सुशीला की खोजमें इस जङ्गलमें आ फंसा है।

जङ्गलकी विस्तीर्णता देखकर भूपसिंहको उससे शीघ्र पार होनेकी चिन्ता हुई। अतः वह द्रुतगतिसे चलने लगा। और संध्या होनेके कुछ पहिले एक नगर में जा पहुंचा। वहां भोजनादिकी चिन्तासे निवृत्त होकर नगरके बाहिर एक सुन्दर उद्यानमें कुछ लोगोंको आपसमें वार्ता करते देखकर उनके पास जा खडा हुआ और बातचीत सुनने लगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके द्वारा जो कुछ सुना उसे भूपसिंह ने आंखोंसे भी देख लिया। अर्थात् देखा कि एक चतुरङ्ग सेना बडे वेग से इस नगर की ओर चली आ रही है। रथ, सैनिक, पदातियोंका महासमुद्र उमड़ा आ रहा है। भगवती पृथिवी विपुल धूल उडाकर उसका स्वागत कर रही है।

यह खबर विद्युद्वेगसे सुवर्णपुर नगर भरमें फैल गई। वहांके महाराजाने परचक्रसे अपनी रक्षा करनेके लिये अपने सेनापतिको सचेत किया। सेनापति तत्काल ही सेना तैयार करके मुकाबला करनेके लिये सुसज्जित होकर नगर के बाहर पडावमें आ डंटा।

इन दोनों चक्रोंमें रणचण्डी को नृत्य करती हुई देखकर घोर हिंसाके दृश्यका अनुमान कर अनुकम्पा-कम्पित सूर्यदेव अस्ताचलकी ओटमें होगये। उनके अस्त होते ही पश्चिम दिशामें संध्या की लालिमा युद्धस्थलवाहिनी रक्तनदीका नमूना दिखाने लगी। धीरे २ लालिमा विलायमान हो गई और चारों ओर अन्धकारने अपना राज्य जमा लिया। मिथ्यात्व उपशमसम्यक्त्वके अस्त होनेसे इसी तरह अपना अधिकार जमाता है। विषयकषायरूपी चोर और व्यभिचारी क्षमाशीलादि रत्नोंकी लूट करने में दत्तचित्त होने लगे।

भूपसिंह यह सब चरित्र देख सुनके नगरमें लौट आया। एक सरायकी कोठरी में नाना चिन्ताओंमें रात पूरी की। और सबेरे प्रातः-कालीन क्रियाओंसे निश्चल होकर समर-समाचार पानेकी इच्छासे नगरमें घूमने लगा।

आज सवेरे ही सुवर्णपुरके महाराजका आलीशान दरबार भरा हुआ है। सम्पूर्ण राज्यकर्मचारी यथास्थान बैठे हुए हैं परन्तु किसीके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकलता-ध्यानस्थ हो रहे हैं। इतनेमें एक सांडनीसवारने आकर इस शांतिको भङ्ग कीया। सब लोग उसकी तरफ देखने लगे। उसने महाराज का अदबके साथ प्रणाम करके एक चिट्ठी दी और एक ओर जा खडा हुआ। महाराज ने चिट्ठी मंत्री को देकर पढने को कहा। मन्त्री पढके सुनाने लगे। उसमें यह लिखा आ था :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवीतरागाय नमः

स्वस्ति श्री सुवर्णपुरसुभस्थाने विराजमान राजनीति-नैपुण्यादि विविध-गुणसम्पन्न राजेश्री विजयसिंहजी योग्य रामनगर नरेश नाहर सिंहका यथायोग्य बंचना। अपरंच-आपको इस विषयमें अनेक बार लिखा गया कि, आप अपनी कन्या मदनमालतीका विवाह हमारे कुमार प्रतापसिंहके साथ कर देवें, परन्तु आपने हमारे पत्रोंका कुछ भी सत्कार नहीं किया। आप विचारशील और दूरदर्शी हैं। चाहें, तो अब भी चेत सकते हैं। इसलिये एकवार पुनः सूचना दी जाती है कि, आप मदनमालतीका सम्बन्ध हमारे पुत्रके साथ करने का शीघ्र ही प्रबन्ध करें। अन्यथा बलात्कार विवाह कराया जायगा और तब आपको व्यर्थ लज्जित होना पडेगा इत्यलं विस्तरे—

शुभमिति ज्येष्ठ शुक्ला ६ गुरुवार।

भवदीय-हितैषी
नाहरसिंह।

पत्रके सुनते ही विजयसिंहके नेत्र लाल हो गये। भुजा फडकने लगीं। भृकुटी वक्र हो गई। क्रोधको संभालके वहां बैठना कठिन हो गया। अतः बुद्धसेन मन्त्रीको उत्तर लिखनेकी आज्ञा देकर वे राजभवन का चले गये। मन्त्रीने महाराजकी आज्ञानुसार पत्र लिखके मोहर हस्ताक्षर पूर्वक दूतके हवाले किया। सांडनी सवार पत्र लेकर अपने दरबार में पहुँचा। सब लोग उत्कंठित हो रहे थे कि, देखें क्या उत्तर मिलता है। महाराज ने चिट्ठी लेकर मन्त्रीको पढनेके लिये दी। उसमें लिखा था,—

नमः श्रीजिनाय।

स्वस्ति श्री रामनगरनरेश नाहरसिंहजी योग्य सुवर्णपुरसे विजय सिंहका यथायोग्य बंचना। आपका अत्यन्त अविचारितरम्य पत्र मिला, वृत्त अवगत हुए। हमारी मदनमालती कन्या का विवाह आपके पुत्रके साथ नहीं हो सक्ता। यह सम्बन्ध मुझे सर्वथा इष्ट नहीं है। आपको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बलात्कारकी धमकीका उत्तर युद्धस्थलमें देना ही हम समुचित समझते हैं। इत्यलम्।

शुभतिथि ज्येष्ठ शुक्ला ६ गुरुवार

भवदीय—
विजयसिंह।

पत्रके पूर्ण होते ही नाहरसिंह क्रोधके मारे उछल पडा सेनापतिको उसी समय युद्ध आरम्भ करने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही रामसेन सेनापति की दश हजार सेना तैयार हो गई। और कूचका डङ्का वजते ही रवाना होकर मैदान में आ डटी।

इधर विजयसिंह महाराज का सेनापति कुंवरसिंह भी गाफिल नहीं था, पांच हजार सेना लेके पहिले से ही आ जमा था। अब क्या था, रणदुन्दुभि बजने लगी। दोनों ओर से अस्त्रसे मारकाट होने लगी। दो घण्टे तक भयानक युद्ध हुआ। रणभूमि मुर्दोंके मारे श्मशान सी दिखने लगा।

इस दो घन्टेकी घमासानके बाद अपनी पक्षके बहुत लोगोंको मृत देखकर कुंवरसेनकी सेना पीछे हटने की चेष्टा करने लगी और उधर प्रतिपक्षियों का बल आगे बढने लगा। यह देख कुंवरसिंहने अपने शूरवीरों को ललकार कर कहा—"खबरदार बहादुरो! यह पीछे हटने का समय नहीं है देखो हम थोडी ही देर में विजय पाने वाले हैं।" स्वामीकी ललकारसे शूरवीरोंने अपना दल फिर आगे बढाया, परन्तु आखिर पीछे हटना पडा। शत्रुकी दश हजार सेनाके सामने विजय पा लेना खेल नहीं था। दो हजार सेना कट मरी और शेष तीन हजार के पैर उखड गये। अतः रामसिंह ने विजय पाई। यह देखकर नाहर-सिंह फूलके कुप्पा होगया। उसकी सेनामें आनन्द भेरी बजने लगी।

दिन भरके थके मांदे सूर्यदेव अस्ताचल शिखरशायी हो गये। प्रतीची देवीका कपोलमण्डल अपने नाथके स्वागतमें मनोहर रक्तिमा-युक्त हो गया। इसे देख कुटिल चिडियां चुहचुहाहट मचाने लगी, और कुन्दकलिकाओंने दांत निकाल दिये।

थोडी देर में चारों ओरसे अन्धेरा दौड आया गगनमण्डलमें षष्ठी का खंडित चन्द्रमा और उसके साथ तारागणोंने अपने आसन आ जमाये। दिनभरकी गर्मीसे जिस जगतने पजावेका रूप धारण किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था, उसमें इन थोडीसी मूर्तियोंके कारण शीतलता का संचार होने लगा। उधर निद्रादेवी का दौरा शुरू हुआ, और क्रमक्रमसे सारे जगत ने उनकी गोदमें अपना सिर रख दिया। कुंवरसिंह के लश्करके सैकडों योद्धाओंको आज रात्रि भर निद्रा नहीं आई।

चतुर्थ पर्व।

दूसरा दिवस हुआ। प्रातःकाल होते ही दिवाकर महोदय युद्ध कांड के दर्शक बनकर आ विराजे। उनके इस निष्ठुर दर्शक कार्यसे प्राची देवी अतिशय अप्रसन्न थीं, परन्तु ये माननेवाले देवता नहीं थे। देवी लाल २ नेत्र करती ही रह गई, पर ये अपनी इष्टसिद्धिमें नहीं चूके। दोनों ओरके योद्धा अपनी २ प्रातःक्रियाओंसे निश्चिन्त होकर और सर्व प्रकार से सुसज्जित हो; स्वामीआज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे।

आज महाराज विजयसिंह की बारह हजार और नाहरसिंह की बीस हजार सेना युद्ध क्षेत्र में अवतीर्ण हुई, और रणदुन्दभि बजते ही आपसमें भिड गई। कुंवरसिंह और उसकी सेना कलकी हार से बहुत लज्जित हो रही थी, इस कारण आज भूखे सिंह की तरह शत्रु पर टूट पडी। उधर रामसिंह और उसकी सेना कलके घमण्डमें जैसी चाहिये वैसी सावधान नहीं थी, इस कारण सम्मुखकी मार न झेल सकी, इसलिये पीछे हटने लगी। अवसर पाकर कुंवरसेनने सिपाहियों को उत्साहित करते हुए दबाना शुरू किया। रामसिंहकी फौज भगाने लगी यह देख नाहरसिंहने अपने पुत्र प्रतापसिंहको मददके लिये भेजा रामसिंह की सेना अपने पक्षकी वृद्धि देखकर लौट पडी और जोशसे मार करने लगी। इसवार प्रतापसिंहके खड्गसे कुंवरसेन घायल होकर धराशायी हो गया। सेनापति के गिरनेसे सेना कुछ शिथिल हुई, परन्तु तत्काल ही कुंवर रणजीतसिंह को दश हजार फौजके साथ सहायताको आया देखकर जी तोडकर लडने लगी।

रणजीत और प्रतापसिंह का एक पहर युद्ध हुआ। अन्तमें लडते २ प्रतापसिंहकी तलवार मूठसे निकल गिर पडी। यह देख रणजीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिंह भी अपनी तलवार फेंक शस्त्रयुद्ध छोड मल्लयुद्ध करने में प्रवृत हुआ कुछ लडनेके पश्चात् रणजीतसिंह ने प्रतापसिंहको निष्प्रताप कर छाती पर सवार होकर उसकी मुश्कें बांध ली और कैद कर लिया।

प्रतापके कैद हो जानेकी खबर पाते ही नाहरसिंह अपनी पचास हजार फौज एकसाथ लेकर रणजीत पर आ कूदा और उसे चारों ओर से घेर लिया। रणजीत दो घण्टे तक वडी वहादुरी से लडता रहा, परन्तु अन्तमें शस्त्रहीन होकर नाहरसिंह के द्वारा कैद हो गया। प्रतापसिंह छुडा लिया गया नाहरसिंहका लश्कर विजयका डंका बजाता हुआ पडावको लौट गया। आज नाहरसिंह और प्रतापके आनन्दका कुछ ठिकाना नहीं है। प्रतापसिंह मदनमालती के समागमके मीठे २ स्वप्न देखने लगा और नाहरसिंह पुत्र विवाह की तैयारियोंकी उधेड-वुनमें लग गया।

पुण्योदयके क्षय होने पर प्रतापवानों की अधोदशा होती है। ऐसा उपदेश देते हुए मरीचिमाली सूर्य अस्ताचलकी ओटमें हो गये। संध्या देवी चारों ओर से खिलखिला के हंस पडी। उसकी हास्य प्रभासे थोडे समयके लिये संसारमें पीतांबरसा विछ गया। उधर मानो ताक ही में बैठे थे, इस तरह अन्धकार देव आ धमके। आप संसार को दिखाने लगे कि अन्यायी और जुल्मी राजाओंका भी अस्तित्व कुछ समय पृथ्वी पर रहता है। थोडी देरमें गगन मण्डपमें चन्द्र ज्योत्स्ना और तारिकाओं की प्रभा खिलने लगी।

आज रात्रिको ही विजयसिंह का प्रतापशाली दरवार भर रहा है। सम्पूर्ण मन्त्री सरदार योद्धा और नागरिक धीमान और लक्ष्मीवान यथा स्थान विनय सहित बैठे हुए हैं। महाराज की मूर्ति किसी घोर चिन्तामें मग्न होने की साक्षी दे रही है। सब लोग चुपचाप बैठे हैं। थोडी देर में मन्त्रीने महाराजकी आज्ञानुसार घोषणा की कि, जो शूरवीर कल ही नाहरसिंहको जीवित कैद करके रणजीतको छुडा लावेगा, उसको मैं अपनी कन्या मदनमालती व्याह दूंगा और दहेज में आधा राज्य देके उसे सन्तुष्ट करूंगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस घोषणाको सुनके अनेक शूरोंके मन राज्य कन्या की लालत लालसा से फडकने लगे। परन्तु नाहरसिंहके पराक्रमको देखकर ज्वर चढ आता था, इस कारण घन्टे भर तक दरबारमें सन्नाटा खिंचा रहा, कोई भी साहस करके आगे नहीं आया।

पाठकों! याद होगा कि, भूपसिंह सुवर्णपुर में ही है। रणसमाचारों के पाने की इच्छा उसे निरन्तर ही रहती थी, इसलिये आजके दरबार में भी वह दर्शकोंके साथ आ खडा हुआ था। सभा की इस अवस्थाको देखकर उससे रहा नहीं गया। चट सभा में प्रवेश करके महाराजके रक्खे हुए उक्त घोषणा के बीडे को चाब गया।

दरबारके लोग आश्चर्यदृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। महाराज इस क्षत्रिय पुत्रके साहसको देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने उठके उसे छातीस लगा लिया, और आशीर्वाद देके दरबारको बरखास्त किया। मन्त्री और सेनापतिको युद्धकी उचित व्यवस्था कर देनेकी आज्ञा देकर राजभवनको चले गये।

बुद्धसेन मन्त्री भूपसिंह को अपने साथ ले गये और एक पृथक महलमें उनके रहनेकी राज्योचित व्यवस्था कर दी भूपसिंह भावी युद्धकी उत्साहकी तरंगों में डूबता उछलता हुआ सुखशैय्यापर सो गया।

पंचम पर्व।

प्रातः काल हुआ। सूर्यदेव नाहरसिंह को विजय लाभ से उन्मत्त देखकर व्यंगरूपमें हंसने लगे। अभ्रपटल फटके इधर उधर बिखर गये। परन्तु नाहरसिंहने नहीं जाना कि, ये मुझे भावी पराभवकी सूचना देते हैं।

सब लोग प्रातः कालीन क्रियाओंके करने में दत्तचित्त हुए। दोनों ओर का सैन्य सुसज्जित हो गया। भूपसिंह पच्चीस हजार सेनाके साथ युद्धक्षेत्र में पहुंचा। उसने सम्पूर्ण सेनाको ५ टुकडों में विभक्त किया जिनमें से तीन टुकडे तीन दिशाओं में कर दिये, एक टुकडा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने साथ लिया और एक अपनी रक्षा के लिये कुछ पीछे रक्खा। उधर से नाहरसिंह का प्रधान सेनापति रामसिंह दश हज़ार सैन्यके साथ युद्ध को प्रस्तुत था।

रणभेरी बजते ही युद्धारम्भ हुआ। भूपसिंह ने घन्टेभरमें रामसिंह की सेनाको विह्वल कर दिया। वह जिस ओर को अपना धावा करता था, उसी ओर से फौज की काईसी फट जाती थी। आज नवीन संचालक के मिलने से उनकी सेना में भी अपूर्व उत्साह था, रामसिंह की सेना हिम्मत हारके पलायनोन्मुख हो गई। यह देख रामसिंह अपना घोडा बढाकर भूपसिंह के सन्मुख हुआ और ललकारके बोला। यदि तुझमें कुछ शक्ति है, तो मेरे सन्मुख आ देख! मैं कैसी शीघ्रता से यमपुरका रास्ता बतलाता हूं। इन शब्दों के सुनते ही भूपसिंह का शौर्य भभक उठा। वह घोडे परसे कूद के रामसिंह पर जा टूटा। वारको बचाकर उसने रामसिंह को ऐसी ठोकर लगाई कि, वह जमीन पर आ रहा। परन्तु फिर सम्भलके उठ बैठा और लडने लगा। दो ही हाथोंमें रामसिंह की तलवार बेकार हो गई। तब उसने भूपसिंह पर सेल चलाया परन्तु भूपसिंह उसे बचा गया, और बदले में एक हाथ तलवार का ऐसा मारा कि, सिर धड से जुदा हो गया।

सेनापतिके गिरते ही सेना भागने लगी, परन्तु पन्द्रह हजार सेना सहित प्रतापसिंहके आ जाने से फिर जम गई। एक घण्टेके युद्ध में प्रतापसिंह कैद हो गया, भूपसिंह की विजय हुई, अब नाहरसिंहकी स्वयं बारी आई। वह आग बबूला होकर अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ भूपसिंह पर आ टूटा। परन्तु भूपसिंह गाफिल नहीं था, इस समय इशारा पाकर उसकी सेनाके तीन टुकडोंने तीन तरफ से नाहरसिंहको घेर लिया, और पीछे का टुकडा भी खास सेना में आ मिला। घनघोर युद्ध होने लगा।

एक प्रहर तक बराबर युद्ध होता रहा। ग्रीष्मसे चिरसन्तप्त रणभूमि नररक्तसे प्लावित हो गई। भूपसिंहकी बहादुरी देखकर शत्रु की सेना के छक्के छूट गये। आखिर नाहरसिंहको स्वयं सम्मुख होना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पडा। भूपसिंहका एक तलवारका वार ढालको फोडकर नाहरसिंहके कन्धेमें गहरा घाव कर गया, उसकी कुछ परवाह न करके नाहरसिंहने भूपसिंहपर सेल चलाया, परंतु उसके पहिले ही भूपसिंहका सेल माथेपर जा धमका। जिसकी चोटसे वह तिलमिलाकर धराशायी होकर भूपसिंहकी कैदमें हो गया।

मालिकके परतन्त्र हो जानेसे सेनाने हथियार डाल दिये और अधीनता स्वीकार कर ली। रणजीतसिंहको बन्धनसे छुडाकर और प्रताप तथा नाहर दोनों कैदियोंको लेकर भूपसिंहने विजय पताका उडाते और आनन्द दुन्दुभि बजाते हुए सुवर्णपुरमें प्रवेश किया। भूपसिंहकी विजयध्वनि नगरभरमें गूंजने लगी। उनकी बहादुरीकी यत्र-तत्र प्रशंसा सुनाई देने लगी। सुवर्णपुर आनन्द कलरवसे आकीर्ण हो गया।

महाराज बिजयसिंह विजयध्वनि सुनकर स्वयं अगवानीके लिये आये। भूपसिंहने महाराजको प्रणाम किया और रणजीत चरणोंपर गिर पडा। महाराजने दोनोंको छातीसे लगा लिया और आनन्दाश्रुओंसे उनका अभिषेक किया। भूपसिंहको सम्बोधन करके कहा "आजका यह सौभाग्य तुम्हारे निमित्तसे ही प्राप्त हुआ है।" इस राज्यकी लज्जा आज तुमहींने रक्खी है। तुम्हारे समान हितू दूसरा नहीं है। भूपसिंहने इसके उत्तरमें नम्र होके कहा, "महाराज यह सब आपके पुण्यका प्रताप है।" इस प्रकार वार्तालाप होनेके पश्चात् सब लोग अपने २ स्थानपर गये। नाहरसिंह वगैरह कैदखानेमें भेज दिये गये यह देख दिवाकर महाराजको बड़ा वैराग्य हुआ। "जो कल आनंदसे अंगमें नहीं समाता था, वह आज कैदखानेकी हवा खा रहा है। छिः ऐसा संसार मुझे नहीं चाहिये, ऐसा सोच निशानाथको राज्य देकर अस्ताचलकी गोब्हर गुफाओंमें एकाकी विहार करने लगे।"

षष्ठ पर्व।

सुवर्णपुरमें घर २ आनन्द मंगल हो रहे हैं। जहां तहां सदावर्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लग रहे हैं। जिनालयोंमें मंगलविधानोंकी मनोहर ध्वनि गूंज रही है। सब लोग उज्वल वस्त्र भूषाभूषित गलियोंमें आते जाते दिखाई देते हैं आज महाराज विजयसिंहकी प्रतिज्ञानुसार मदनमालतीका विवाह भूपसिंहके साथ होगा। प्रजा आज इसी आनन्दसे उत्फुल्ल हो रही है।

मदनमालती भूपसिंहके गुण और रूपको सुनकर पहिलेसे ही मुग्ध हो रही थी, आज उसी अभीष्ट युवाके साथ शुभ लग्नमें आर्षविधि-पूर्वक उसका प्राणिग्रहण हो गया। तब मदनमालतीके आनन्दकी सीमाका अनुमान पाठक ही कर सकते हैं।

इधर मदनमालतीके स्वरूप और लावण्यको देखकर भूपसिंहका मन उनके हाथसे ही निकल गया। उन्हें मदनमालतीके बिना अब एक घडी वर्षसी सूझने लगी। पर क्या करते लोक बंधन दुर्निवार है!

विवाह होनेके तीसरे दिन सुहाग रात्रिकी तैयारी होने लगी। एक स्वतंत्र राजप्रासाद ऐशो आरामके सम्पूर्ण सामानोंसे सुसज्जित कि सखीजनोंके साथ मदनमालती उस एकान्त महलमें पहुंचाई गई, जैसे चातक मेघकी आशामें विह्वल हो जाता है, मदनमालती उसी तरह भूपसिंहके दर्शनको विह्वल हो रही है। उसके चंचल नेत्र द्वारमार्गपर अचल हो रहें हैं, कर्ण आनेकी आहटकी प्रतीक्षामें हैं, और शरीर स्पर्श सुखकी वांछासे बाह्यज्ञान शून्यसरीखा स्थिर हो रहा है। अब आते हैं, अब आते हैं, इस प्रकार बहुत समय बीत गया, परन्तु भूपसंहि नहीं आये। नगरमें शोध खोज होने लगी परंतु कहीं भी कुछ पता नहीं लगा। सब लोग इस प्रकार भूपसिंहके एकदम गायब हो जानेसे बिकल होने लगे। इतनेमें एक दासीने आकर मदनमालतीके हाथमें एक पत्र दिया। वह उसे खोलकर वांचने लगी। न जाने उसमें क्या लिखा हुआ था कि, उसको वांचते ही मदनमालती एक बडी भारी आह खींचकर बेहोश होगई।

सप्तम पर्व।

वर्षा ऋतुका समय है। आकाशमें चारों ओर मेघपटल उथल पुथल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मचा रहें हैं। छोटी २ बूंदे पड रही हैं। हरियालीके सब्ज गलीचेपर पानीके कण एक विलक्षण शोभाको उत्पन्न कर रहें हैं। विरहीजनों के हृदयमें लगकर झंझावायु तीरका काम कर रही है और पीछेसे मयूरोंकी कूक तो गजब ही ढा रही है। इधर पपीहाका "पी! पी!" शब्द विरहिणी मुग्धाओंको उद्विग्न कर रहा है। उनके हृदयमें इन दो शब्दोंसे न मालूम कैसे २ आशा-निराशा, संयोग-वियोग, अनुनय अभिमान आदि विकारोंके विचित्र चित्र खिच रहे हैं।

दिनके तीन बज चुके हैं, परंतु सूर्यदेवका आसमानमें पता नहीं है। उनकी दो चार किरणें कभी २ किसी अभ्रपटलमेसे फूटकर बडी मनोहर लालिमा फैलाकर तत्कालही छिप जाती हैं। कुलबालाओंकी प्यारी हास्यरेखा अरुणरुचिर ओष्टोंके बाहर बहुत समयतक नहीं ठहरती।

हम अपने पाठकोंको इस ममय विलासपुरके समीपवर्ती एक उद्यानमें लिये चलते हैं। उद्यानकी शोभा वर्णनीय है; परन्तु हम आज उसकी सौन्दर्य-कथामें उलझकर व्यर्थ समय नहीं खोनाचाहते, और उद्यानके उस हिस्सेमें पैर रखते हैं, जहां रूपकी एक अपूर्व हाट लग रही है। वहां एक नवयौवनावाला कोकिलकंठविनिन्दित मनोहर स्वरसे मल्हार गाती हुई झूलाझूल रही है। और उसके चारों ओर खडी हुई अनेक कमनीय-कामिनियां उसके गाने तथा झूलनेमें मदद हैं। उद्यानमें चारों ओर सन्नाटा खिचरहा है। मानो उद्यानके सम्पूर्ण जीवजन्तु उस गान्धर्व अभिनयमें सर्वथा मग्न हो रहे हैं। केवल दो चार झिल्लियां इधर उधरसे अपनी तान लगा रही हैं। शायद ये अपने कंठोंको मनोहर समझती हैं, इसलिये बिना आह्वान ही दम भर रही हैं।

पाठक! आज बालिकाओंका प्यारा तीजका त्यौहार है। इसलिये यह विलासपुरके महाराजाकी लाडली कन्या अपनी समवयस्क सहेलियोंके साथ इस उद्यानमें दोला-क्रीडा कर रही है। बुद्धिमान पिताने कन्याकी रक्षाके लिये थोडीसी सेना भी भेज दी है, जो समीपहीके एक जलाशयके किनारे सचेत और सन्नद्ध है।

विलासपुर के महाराज का नाम विक्रमसिंह है। उनकी महारानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मदनवेराके इस एक कन्याके अतिरिक्त जिसका नाम सुशीला है, कोई दूसरी सन्तान नहीं है। सुतरां सुशीलापर राजदम्पतिका असाधारण प्रेम होना चाहिए, इसके अतिरिक्त सुशीलाके रूप और स्वाभाविक गुणोंने उन्हें और सम्पूर्ण राजपरिवारको मुग्ध कर लिया है।

सुशीला जिस समय ६—७ वर्षकी थी, उस समय अध्यापिकाने उसकी बुद्धि प्रखरताको देखकर सरस्वतीकी उपाधि दी थी। और अब तो सुशीला यथार्थमें सरस्वती है, न्याय—व्याकरण, धर्मशास्त्रादि विविध विद्याओंमें वह असाधारण बुद्धि रखती है। अच्छे २ विद्वान् उसके पांडित्यको देखकर चकराते हैं। इस समय बालिका सुशीलाने यौवनावस्थामें पदारोपण किया है, उसके अङ्ग प्रत्यंगोंमेंसे यौवनकी प्रभा फूट रही है।

सुशीलामें केवल रूप तथा विद्या ही नहीं है, किन्तु उसने लोकोत्तर शीलव्रतको धारण करके "सोनेमें सुगन्धकी" कहावत चरितार्थ की है वह जानती है कि, स्त्रियोंके सम्पूर्ण गुणोंकी प्रतिष्ठा इसी शीलव्रतसे है।

इस उद्यानके सामनेसे ही एक छोटीसी सडक विलासपुरकी ओर चली गई है। उस परसे चलनेवालेको यह दोलाक्रीडा अभिनय अच्छी तरह दिख सक्ता है परंतु हम देखते हैं, कि, आज उस सडक परसे कोई आता जाता नहीं है। उद्यानके बीचोंबीचमें एक छोटासा परंतु सुन्दर बंगला बना हुआ है।

परमसुशीला सुशीला अपनी सहेलियोंके सहित दोला क्रीडामें हो रही है। उसे खबर नहीं है कि, मेरी यह सरल बालक्रीडा किसीके हृदयमें कुछ कुटिलताका असर कर रही है। वह यह भी नहीं जानती कि, इस उद्यानमें मेरे और मेरी सखियोंके सिवाय और भी कोई है। पाठक! इस समय उस सडकपर एक युवा घोडेको रोककर खडा हो रहा है और अपने अनिमिष—नेत्रोंसे सुशीलाको देख रहा है। जैसे योगीश्वर परमसमाधिके समय आत्मध्यानमें तल्लीन हो जाते हैं, वह नवयुवक सुशीलाके ध्यानमें उसी प्रकार मग्न है। सुशीलाके अलौकिक रूप लावण्यको देखकर उसका मन उसके हाथसे चला गया है, जान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पडता है, वह मुग्ध उसीके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा है, पर क्या गया हुआ मन फिरके आता है ?

युवाकी यह अवस्था मेघ महाराजसे देखी नहीं गई, वे लगे मूसलाधार पानी बरसाने। अब क्या था रंगमें भंग हो गया। सुशीला अपनी सहेलियोंके सहित बागबंगलेमें जा छुपी। इधर नवयुवकके ध्यानकी कलो खुल गई। उसकी आंखोंके साम्हने अंधेरा छा गया। उधर सायंकाल भी समीप आया, इसलिये सुशीला सखीजनोंके साथ रथपर सवार होके महलोंकी ओर चल पडी। रक्षकसेना रथके आगे-पीछे होली। युवा किंकर्तव्यविमूढ़की नाई देखते ही रह गया। और थोडी देरमें घोर अंधकारने आकर समग्र पृथिवीको काली चादरसे ढक दिया।

अष्टम पर्व

सूर्यपुरके एक राजप्रासादमें एक कमरा एशोआरामके सब सामानसे सजा हुआ है। कमरेके बीचोंबीच एक पलंग बिछा हुआ है। उसपर पडा हुआ एक युवा करवटें बदल रहा है। आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह रही है। वदनमें जौफ आगया है। लबोंपर खुश्की और चेहरेपर पीलाई झलक रही है। पलंगके पास ही कुर्सीपर एक दूसरा युवक बैठा हुआ है। दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हो रही है।

मित्र बलवन्तसिंह ! सुशीला प्यारी सुशीलाका वियोग अब सहा नहीं जाता। हाय ! वह भोली २ सूरत अबतक आंखोंके साम्हने नृत्य करती है। यदि शीघ्रही उसके मिलनेका उपाय न होगा, तो प्यारे मित्र अब यह प्राणपखेरू इस तनपंजरमें बहुत समयतक नहीं ठहर सकेंगे।

अजी उदयसंहिजी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? होशको ठिकाने लाइये। आप राजपुत्र हैं, आपके लिये एक दो क्या दश सुशीला आ सक्ती हैं, क्षत्रियपुत्र क्या स्त्रियोंके लिये प्राणपखेरू उडाते फिरते हैं ? छिः धैर्य्य धारण कीजिये। इस तरह आतुरतासे कुछ नहीं होगा। मुझे उसका पता ठिकाना ठीक ठीक बतलाइये। मैं अभी जाता हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(उछलके और खुश होके) क्या आप सचमुच मेरी सुशीलासे मुझे मिलादेंगे ? अच्छा तो लीजिये, उसका पता ठिकाणा मेरी इस नोटबुकमें लिखा है, आप भी लिख लीजिये।

"बहुत अच्छा"! कहके बलवन्तसिंहने सुशीलाका पता लिख लिया। और उसी समय वहांसे रवाना हो गया। उसके चले जानेपर उदयसिंह फिर वियोगाग्निमें जलने लगा।

पाठक जान गये होंगे कि, यह वही युवा है, जो सुशीलाको विलासपुरके उद्यानमें झूला झूलती हुई देखके ध्यानस्थ हो रहा था। यह सूर्यपुरके राजा निहालसिंहका पुत्र है। इसका नाम उदयसिंह है, और वह दूसरा युवक जो बातचीत कर रहा था इसका अभिन्न-हृदय-मित्र बलवन्तसिंह है।

उदयसिंहकी अवस्था मित्रके जाते ही और भी शोकप्रद हो उठी। कुसुमशरने अकेला पाकर उसकी खूब खबर लेना शुरू की। उसके साथ सुकोमल पुष्पशय्या शूलका काम करने लगी। व्यजनसमीर और चन्दनलेप ग्रीष्मकी उष्ण लूओं और अग्नितापसे भी अधिक दुःख दायी प्रतीत होने लगा।

अहो ! यह जीव रंचमात्र विषयसुखकी लालसासे कैसे कैसे उग्र दुःख भोगता है। परन्तु जिन्होंने इसमें सुख मान रक्खा है, उन विषयोंमें वास्तविक सुखका नामनिशान भी नहीं है। जो दुःख अत्यन्त क्रूर व्याघ्रादि जीवोंके कारणसे होता है, उससे भी अधिक दुःख इस विषयशत्रुके संसर्गसे सहने पडते हैं।

अत्यन्त रुष्ट राजा जो कुछ दण्ड दे सकता है, विषयशत्रुका दण्ड उससे कहीं बढ़कर है। अतिरुद्र कालकूटके विपाकसे भी विषयोंका विपाक अतिभयानक है। इस विषयशत्रुजनित दुःखोंको भोगनेकी अपेक्षा कालके गालमें प्रवेश करना उत्तम है। दहदहाती अग्निका दाह भी विषयदाह के सामने झक मारता है। आशीविष जातिके सर्पोंके विषसे भी इन विषमविषयोंका विष उग्रतर है। जिन भोगोंसे बडे बडे इन्द्र और चक्रवर्ती भी तृप्त नहीं हुए, उनसे हीनपुण्य इतर मनुष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसप्रकार तृप्त हो सकते हैं ? जिस नदीक प्रवाहमें बड़े बडे उन्मत्त हाथी भी बह गये हैं, उसमें विचारे शशककी क्या अवस्था होगी ? जिनविषयोंके सेवनसे बडे बडे ऋद्धिधारी देव भी सुखलाभ नहीं करसके, उन विषयोंके आसेवनसे यह बिचारा क्षुद्र मनुष्य किस प्रकार सुखी होगा ? जिस केशरीसिहके सन्मुख बडे बडे मदोन्मत्त हस्ती भी गलितमद होजाते हैं, उस क्रूर सिंहके सामने पददलित मृगकी क्या दशा होगी ? यदि नदियोंके जलसे समुद्र तृप्त हो जावे, और ईन्धनसे अग्नि तृप्त होजावे तो कदाचित् यह प्राणी भी विषयोंसे तृप्त हो सकता है, परन्तु जब यह जीव भोगभूमि और स्वर्गोंके सुखसे ही तृप्त नहीं हुआ तो कानें गन्नेके समान मनुष्य जन्मके सुखोंसे किस प्रकार तृप्त होसक्ता है । समुद्रके जलसे जिसकी प्यास नहीं बुझी, तो भला छोटे २ क्षित्यंकुरोंकी ओससे उसकी प्यास किस प्रकार बुझैगी ।

जो प्राणी इस विषयशत्रुसे प्रेरित हो अपने शरीर तथा कुटुम्बके अर्थ घोर पापाचरण करते हैं, वे नरकोंकी घोर वेदनाके पात्र होते हैं । यहां यह प्राणी घोर पापाचरणसे जिस द्रव्यका सम्पादन करता है, उस द्रव्यका परिजन पुत्रकलत्रादि सब उपभोग करते हैं परन्तु जब उस घोर पापके फल भोगनेका समय आता है, तब उस दःखका बटबारा करनेको कोई पास भी नहीं फटकता है । नरकादिकके दुःखोंकी कथाको रहने दीजिये, यहीं पर चोर जिस धनको चोरी करके लाता है उसका उपयोग तो उसके समस्त कुटुम्बीजन करते हैं, परन्तु जेलखानेकी हवा उस विचारे अकेलेको ही खानी पडती है । परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है, कि, यह सब बात प्रत्यक्ष देखता हुआ भी यह जीव पापाचरणसे उपेक्षित नहीं होता ।

प्यारे पाठको ! विषय भोगोंसे विरक्त महात्माओंको जो सुख होता है, इन्द्र और चक्रवर्तिओंका विषयजन्य सुख उसके अनन्तवें भाग भी नहीं है । इसी कारण यदि सच्चे सुखकी वांछा है, तो शिव सुखके कारण भूत धर्म का साधन करो ।

बडे कष्टसे प्राप्त हुए कल्पवृक्ष सदृश मनुष्य जन्मको यदि भोगों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में नष्ट कर दोगे तो फिर मनुष्य जन्मका संयोग दुर्लभ हो जायगा। परन्तु यदि यह मनुष्य दीर्घ संसार के कारणभूत विषम विष समान विनश्वर काम भोगोंको छोड देता तो नरक भूमिके घोर दुखोंको किस प्रकार प्राप्त होता ? कामिनी संभोगमें जो इस जीवने सुख मान रखा है, वह भी इसका भ्रम है, क्योंकि, जब श्वान हड्डीको मुखमें डाल कर चूसता है, तब हड्डीकी तीक्ष्ण नोंकसे छिदकर उसके मुखमेंसे ही रुधिर निकलता है। जिसके आस्वादनसे अपनेको सुखी मानता है। ठीक वैसी ही अवस्था कामिनी संभोगमें है। कामिनी संसर्गसे निज तनुजनित-स्वेद विशेषके निकलनेसे ही यह प्राणी अपनेको सुखी मानता है।

यदि वास्तवमें देखा जावे तो सन्तोषके समान जगत्में कोई सुख नहीं है और तृष्णाके समान कोई दुःख नही है। इस कारण जिन महानुभावोंने इन विषयोंमें तृष्णाका त्याग करके दिगम्बरीय दीक्षाका अवलम्बन किया है वे ही धन्य हैं। और मद मदन कषाय शत्रुओंके वशीभूत होकर विषय विसर्जन नहीं किया और नरकादिकके घोर दुखोंसे भयभीत नही हुए तथा संसार शरीर और भोगोंसे जिनको विरक्तता नहीं हुई उनका मनुष्य जन्म पाना ही निष्फल है।

स्वजन, पुत्रकलत्र, मातापिता, भाई, मित्र, धन, यौवन, बल, वीर्य, आयु और शरीर इत्यादि समस्त सामग्रीको चपला चमत्कारवत् क्षण-भंगुर देखता हुआ भी यह मूढात्मा आत्मकृत्यसे विमुख हो रहा है यह बड़े दुःखकी बात है। इस कारण जो सच्चे सुखकी अभिलाषा है, तो संसार मार्गसे विरक्त होकर मोक्षमार्गमें रमण करो ! विषयोंका सङ्ग छोडकर ज्ञानका सङ्ग करो, युवतिसुखको छोडकर शमसुखका अवलम्बन करो। धर्म्यकृत्यको दैवके ऊपर छोडकर पौरुषहीन हो जाना, कदापि न्यायसङ्गत नहीं हो सकता। यत्न करनेपर भी यदि कार्यसिद्धि नहीं होय तब ही दैवापराध मानना उचित है इस कारण सुखके वांछकोंको उचित है कि, निरन्तर भगवत्पादारविन्दमें भक्तिपूर्वक आत्मतत्त्वकी भावना भावै। विषयसुखसे विरक्तिपूर्वक समस्त सत्त्व वर्गमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रता धारण करें। शास्त्राभ्यास कषायोंके उपशम और संयमके धारण करनेमें अपनी शक्तिका उपयोग करें। और दूसरोंके दोष सम्बन्धमें मूकताका अवलम्बन करें।

नवम पर्व।

पहरभर दिन चढ चुका है। पथिक जन मार्गक्रमण कर रहे हैं। छोटे २ व्यापारी आसपासके ग्रामोंसे नानाप्रकारकी व्यापारी वस्तुयें घोड़े, बैलों तथा गाडियों पर लादे हुए गंवारी गीत गाते हुए नगरकी ओर जा रहे हैं। मार्गके दोनों ओर छोटे छोटे बरसाती जलाशय भर रहें हैं। उनमें मेंढ़कोंने अपना बाजार गर्म कर रक्खा है, वृक्षलता पर इस समय विशेष सजीवता दृष्टिगोचर होती है। उनमें छिपी हुई झिल्लियोंकी झनकार ग्रामवासियोंको बडी प्रियकर लगती है।

इस समय एक युवती भगवा वस्त्र परिधान किये हुए विलासपुरकी ओर जा रही है। उसके कंधेपर एक भिक्षाकी झोली और हाथमें एक सितार है। कभी कभीं मौजमें आकर वह सितारके एक दो तारों पर ठोकर लगा देती है, तो पथिकजन आशान्वित नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगते हैं। यह युवती वस्त्रभूषादि तथा रंगढंगसे जोगिनसी जान पडती है, इसलिये हम इसे कुछ समय तक जोगिन ही कहेंगे।

जोगिन मार्गातिक्रमण करके विलासपुरमें पहुंची और नगरमें दो चार गलियोंमें थोडी देर घूमघामकर सुशीलाके महलके नीचे पहुंचकर गाने लगी। जोगिनने ऐसी बढिया ठुमरी गाई कि सुशीला उसको सुनकर थकित होगई। उसने शीघ्र ही एक लौंडीको भेजकर जोगिनको महलमें बुला लिया और गाना सुननेकी इच्छा प्रगट की। आज्ञा पाते ही जोगिनने दो चार अच्छी अच्छी ठुमरी सुनाई। सुशीला अतिशय प्रसन्न होकर इसे एक अशरफी देने लगी। परन्तु जोगिनने अशर्फी नहीं ली। झुकके प्रणामकर बडी बेपरवाहीके साथ खाली हाथ महलके बाहर होगई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोगिनकी इस निष्पृहताको देखकर सुशीला और उसकी सखियां चकित हो रही थी। परन्तु रेवती नामकी मुख्य सखीने उसकी चाल ढाल पर एक भेद भरी विलक्षण दृष्टि फेंकी। और उसके चले जाने पर उसके विषयमें बडे गौरसे विचार करने लगी। इसको इस प्रकार गंभीर विचारमें डूबी हुई देखकर सुशीलासे नहीं रहा गया। वह पूछ बैठी—

सुशीला—क्यों रेवती! आज तू किस विचारमें डूब रही है?

रेवती—कुछ नहीं, ऐसे ही कुछ सोच रही थी।

सुशीला—आखिर उसका कुछ नाम भी तो होगा?

रेवती—मैं इस जोगिनके विषयमें ही कुछ विचार रही थी।

सुशीला—क्यों इस पर भी कुछ सन्देह हो गया क्या?

रेवती—हां मेरी समझमें इस जोगिनके वेषमें कुछ गुप्त रहस्य है।

सुशीला—(आतुरतासे) सो क्या?

रेवती—जान पडता है, कोई पुरुष जोगिनके वेषमें किसी गुप्त मतलबसे यहां आया था?

सुशीला—रेवती! तुझे बैठे बिठाये खूब मतलब सूझा करते हैं। भला! तुझे कैसे मालूम हुआ कि वह पुरुष था?

रेवती—उसके रंग ढङ्ग कुछ ऐसे ही नजर आते थे। परन्तु कुछ चिन्ता नही है। जब एक बार आया है, तो फिर भी आवेगा। अब की बार ऐसा छकाऊं, कि वह भी याद करे।

इस प्रकार कहकर रेवती वहांसे उठ खडी हुई और जोगिनके विषयमें छानबीन करने लगी। उधर जोगिन महलसे निकलते ही छू-मंतर हो गई। और फिर विलासपुरमें कहीं उसकी शकल नजर नहीं आई।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशम पर्व ।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सुशीला सुखशय्यासे उठकर बैठी हुई पंच नमस्कार मंत्रका स्मरण कर रही थी कि, अचानक उसकी नजर पलङ्ग पर पडे हुए बन्द लिफाफे पर पडी। जिसपर उसका नाम और राजकुमार उदयसिंहकी मुहर लगी हुई थी। उसे देखते ही, वह चौंक पडी, और घबडाकर रेवती ! रेवती ! इस प्रकार जोरसे पुकारने लगी सुशीलाके जीवनमें यह एक नवीन और अस्वाभाविक घटना थी।

सुशीलाकी घबडाई आवाज सुनकर रेवती दौडती हुई आई, और बडी शीघ्रतासे बोली,

रेवती—क्यों बाई ! तुम इतनी घबडा क्यों रही हो ?

सुशीला—देख तो सही ! बात ही घबडानेकी है, इस लिफाफेको तो देख ?

रेवतीने सुशीलाके हाथसे लिफाफा ले लिया, और खोलकर आद्योपान्त बांच चुकने पर फिर सुशीलाके हाथमें दे दिया। पत्रमें इस प्रकार लिखा हुआ था।

श्री जिनाय नमः

प्रिय-सुशीले ! जिस दिनसे तुम्हारी मनोहर-मूर्तिको उस बागमें झूलते हुए देखा है, उस दिनसे मेरा मन मेरे हाथमें नहीं रहा है। रात्रि-दिन तुम्हारी त्रिभुवन मोहिनी मूर्ति मेरे नेत्रोंके सामने झूलती रहती है। क्या इस समय जैसे तुम मेरे हृदय और नेत्रोंके सन्मुख विराजमान रहती हो, उस तरह कृपा कर मेरे शरीरके समीप भी बैठोगी ? हाय ! तुम्हारे शीतल शरीरकी वियोग ज्वाला मुझे झुलसाये डालती है, क्या उसकी शान्ति करके अपनी स्वाभाविक कोमलताका परिचय दोगी ? इत्यलम्। अधिक क्या लिखूं। तुम स्वयं बुद्धिमती हो।

शुभ मिति } प्रणयाभिलाषी

श्रावण सुदी १४ } उदय

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस पत्रको पढकर सुशीला छक्क हो गई । रेवतीके नेत्र क्रोधके मारे अरुण हो गये । और होठ फडकने लगे । कोमलाङ्गी सरला रेवती की उस समय की वीरमूर्ति देखने योग्य थी । वह हाथ मल २ के सुशीला से कहने लगी—क्या करूं, अबकी बार गफलत में मारी गई । लेकिन फिर भी कुछ चिन्ता नहीं है । अबकी बार उस हरामजादे को सजा दिये बिना नहीं रह सकती । ऐसा कहकर अपने प्रयत्नों में दत्तचित्त हुई । भोली सुशीला इस मामले को कुछ न समझ सकी, और चकित नेत्रों से देखती ही रह गई । रेवती से कुछ विशेष वार्तालाप न कर सकी ।

हमारे दूरदर्शी पाठक समझ गये होंगे कि, यह सब कार्यवाही बलवन्तसिंह की है । जोगिन के वेष में यही बलवन्त सुशीला के महल में भेद लेने को आया था । और दूसरी बार उदयसिंह की मुद्रायुक्त चिट्ठी भी सुशीला के पलङ्ग तक इसी ने पहुँचाई थी । आजकल उदयसिंह भी विलासपुर में आ गया है । दोनों एक कोठरी किराये से लेकर गुप्त वेष से नगर में रहते हैं, और अपने षड्यन्त्र चला रहे हैं ।

आधी रात बीत चुकी है । चारों ओर अन्धेरा छाया हुआ है । मेघों ने आसमान को सर्वथा ढक रक्खा है, अतः चेष्टा करने पर भी कहीं कुछ नजर नहीं आता, कभी २ उस अविरल अन्धकार को फाडकर बिजली चमककर लुप्त हो जाती है । ऐसी भयावनी रात्रि में बलवन्तसिंह और उदयसिंह दोनों सुशीला के महल के पीछे आये, और एक कमन्द लगाकर खिड़की के मार्ग से सुशीलाके शयनगृह में पहुंच गये ।

सुशीला एक सुन्दर सुसज्जित पलङ्ग पर दुशाला ओढे सो रही है । मनोहर मुख मण्डल का कुछ भाग उघड रहा है । उस पर केशकलापों की एक लट पडकर 'लोभतैं अमियके अहि चढ्यो चन्द्रपे' की कल्पना उद्भूत कर रही है । उदयसिंह का हृदय आनन्द से उत्फुल्ल हो गया । सदसत् का विचार किये बिना ही वह उस सरला निष्पाप-निष्कलङ्क कन्या को हाथ पकड के उठाने लगा । परन्तु उठा नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सका ! सुशीला का बदन सर्वथा शीतल और ढीलासा देखके-वह चौक पडा । और बलवन्त को नजदीक बुला के कहने लगा ।

उदय—बलवन्त ! देखो तो सही ! इसका बदन ठण्डा क्यों पड गया है ।

बलवन्त—(नाडी पर हाथ रखके) अरे ! यहां तो नाडी का भी पता नहीं है ।

उदय—और ये देखो तो श्वास भी तो नहीं परन्तु इसके शरीर में से सुगन्ध बडी मजेदार आ रही है ।

बलवन्त—ठीक कहते हो ! पर मुझे तो इसमें कुछ सन्देह होता है

उदय—ए ! और मेरा मस्तक क्यों घूमता है ?

इतना कहते २ उदयसिंह जमीन पर ढुलक पडा । और उसके कुछ ही पीछे बलवन्त ने अपने पैर फैला दिये । दोनों की चेतना विदा हो गई ।

ग्यारहवां पर्व ।

प्रातः काल का समय है । उदयाचल पर्वत की ओट में से निकल कर ज्यों ही सूर्यदेव ने झुकके देखा कि, अन्धकार महात्मा रफूचक्कर हुए । उन्होंने लौट के पीछेको देखा भी नहीं । उनके साथ चौर व्यभिचारी और उलूक भी नौ दो ग्यारह हो गये । मरीचिमाली सूर्य गगन मण्डप के सिंहासन पर आ विराजे । उनके आते ही अराजकता से सन्त्रस्त संसार प्रसन्न चित्त दिखलाई देने लगा, और लोग अपने २ इष्ट कार्यों में दत्तचित्त हुए राज मार्गों पर आने जाने लगे ।

इस समय विलासपुर के राज भवन के एक बड़े कमरे में राजा विक्रमसिंह का दर्बार लगा हुआ है । दर्बार मामूली है, और उसमें मन्त्री, सेनापति आदि खास २ आदमी यथास्थान बैठे हुए हैं । एक ओर रेवती हाथ जोडे निम्नदृष्टि किये हुए खडी है, सामने चार सिपाही हथकडी बेडियों से विवश दो कैदियों को लिये खड़े हैं, उनके हाथ में नङ्गी तलवारें चमक रहीं हैं कैदी बडी घृणा के साथ रेवती की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओर देख रहे हैं। इसी कमरे की दाहिनी ओर एक चिक पडी हुई है, उसके भीतर से रानी मदनवेगा और कन्या सुशीला इस दृश्यको देख रही हैं, दरबारमें मानसिक उछलकूदके सिबाय सब प्रकार सब तरहसे शांतिता विराजमान है। थोडी देर में महाराज ने रेवती की ओर देखके पूछा, क्यों रेवती! इन लोगों के विषय में तू क्या कहना चाहती है।

रेवती—महाराज! आज रातको श्रीमती सुशीलाके महलमें मैंने इन दोनोंको गिरफ्तार किया है। ये लोग जिस बदनियतसे महलमें घुसे थे, उसे मैं पहलेसे जानती थी, इस कारण सब प्रकारसे सचेत थी यही कारण है कि, आज मैंने बडी सरलतासे महाराजके चरणोंके प्रसादसे इन्हें गिरफ्तार कर लिया। मैं आशा करती हूं कि, इनकी गुस्ताखीका इन्हे उचित दण्ड दिया जावेगा।

म०—(रेवतीसे) ठीक है, इनकी करतूतोंका फल इन्हे चखाया जावेगा। (मंत्रीसे) शूरसेन! इन महात्माओंसे इनका परिचय तो पूछो?

शूरसेन—(एकसे) क्यों तुम्हारा नाम क्या है?

एक०—कुछ नहीं।

शूरसेन—(दूसरेसे) और तुम्हारा?

दू०—सब कुछ।

रेवती—महाराज! इससे कुछ लाभ नहीं निकलेगा। ये इस तरह कुछ नहीं बतावेंगे। मैं इनका सब भेद जान चुकी हूं। इनमें से ये (एककी ओर इशारा करके) तो सुवर्णपुरके महाराज निहालसिंहके सुपुत्र उदयसिंह हैं और ये (दूसरेकी ओर इशारा करके) इन्हींके मित्र बलवन्तसिंह हैं। दोनोंने ही बडे अच्छे कार्य पर कमर कसी है। बडों की शोभा इसीमें है।

म०—(मंत्रीसे) अच्छा तो इन्हे अब होशियारीसे कैदखानेकी हवा खिलाओ। महलोंकी गन्दी हवा खाते खाते बेचारोंकी नाकों दम आरही होगी।

शू०—बहुत अच्छा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतना कहकर शूरसेन दोनों कैदियोंको अपने साथ लेकर वहांसे उठ खडे हुए, और उनको बन्दोंवस्तके साथ कैदखानेमें भेज दिया। इसके बाद दरबार बरखास्त कर दिया गया। महाराज अंतःपुरमें चले गये सुशीला अपनी सखी रेवतीके साथ अपने महलको चली गई।

द्वादशवां पर्व।

रात्रिको १० बजे हैं। महाराज अपने शयनागारमें महाराणी मदनवेगाके साथ एक सुसज्जित पलंगपर तकियेके सहारेसे बैठे हुए एक बडे गम्भीर विषयमें बातचीत कर रहें हैं।

मदनवेगा—महाराज! सुशीला निरीबालिका नहीं रही है। यह मैं आपसे कईवार कह चुकी हूं, परंतु खेद है कि, आप ध्यान नहीं देते। हम स्त्रियोंकी बुद्धि ओछी गिनी जाती है, इसलिये हमें आपके अधिकारमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। यह ठीक है, परंतु इस विषयका अनुभव जितना स्त्रियोंको होता है, मैं समझती हूं उतना आपको नहीं होगा। इसलिये पुनः पुनः प्रार्थना करती हूं। सुशीलाकी अवस्था १४ वर्षकी होचुकी है। उसके साथकी अनेक लडकियोंको मैंने देखा है कि वे पूरी गृहिणी हो चुकी है उनकी गोदमें छोटे छोटे बालकोंको देखकर उनकी माताओंको कितना हर्ष न होता होगा? क्या मै अपनी सुशीलाको भी इस भावसे देखूगी? नगरकी अनेक बडे बडे घरोंकी स्त्रियां मुझे प्रतिदिन उलाहना देती और ताने मारती हैं कि, सुशीलाके विवाह की अपने यहां अभी तक चर्चा भी नहीं है।

विक्रमसिंह—प्रिये मैं आज तुम्हारे प्रस्तावसे प्रसन्न हूं, और बहुत शीघ्र सुशीलाके योग्य वरकी तलाश करूगा परंतु अभी तक तुम्हारा और तुम्हारे नगरकी स्त्रियोंका आक्षेप व्यर्थ ही है। क्योंकि, शास्त्रमें व्यवहार प्राप्त होनेपर ही कन्याओंका विवाह करना योग्य कहा है। और इस बातको तुम स्वयं जानती हो, कि, सुशीलामें अभीतक व्यवहारकी योग्यता नहीं आई है। अपनी सुशीला बडी बुद्धिमती कन्या है, उसमें किसीके भी आक्षेपको जगह नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मदनवेगा—महाराज ! यह ठीक है, अपनी सुशीला सचमुच एक देवकन्या है। उसे अपने पढने लिखनेसे कभी फुरसत ही नहीं मिलती नित्य नवीन ग्रन्थोंको लिखवाकर मंगाने और स्वतः लिखने पढनेके सिवाय उसे मैंने कभी सखी सहेलियोंमें हंसी ठठोली करते नहीं सुना। और ऐसी वैसी सखियोंका उसके पास निर्वाह भी तो नहीं है। अभी कल ही एक सखीको उसने मर्यादारहित हंसी करते देख महलोंसे निकलवा दिया है। मैं देखती हूं, नगरकी जितनी पढी लिखी स्त्रियां है वे उसके पास रोज आती हैं, और घडी दो घडी ग्रन्थचर्चा करके प्रसन्नतासे जाती हैं।

विक्रमसिंह—इसके सिवाय तुम्हें यह भी जानना चाहिये कि, छोटी उमर में विवाह कर देने से भावी सन्तान बहुत कमजोर होती है, जिससे संसार का अकल्याण होता है। जिस बालक बालिकाओं के छोटी उमर में ही विवाह हो जाते हैं, उनका पारस्परिक स्नेह नष्ट हो जाता है, और वे प्रायः आरोग्यता से हाथ धो बैठते हैं! हमारे क्षत्रिय कुलमें सदासे प्रौढ़ विवाह होते आये हैं। यही कारण है कि, हममें अब तक वीरता बनी हुई है। तुमने जिन बालिकाओं के सन्तान सुख क देखकर सुखी होना चाहा है, वह सुख दिखावटी और अविचारितरम्य है। यदि प्रौढ़ विवाह के मर्म को समझ जाओगी, तो शीघ्र ही तुम्हारा वह भ्रम दूर हो जावेगा। बालकोंके माता पिता ही अपनी सन्तानोंको सुखी दुःखी करने के कारण है विवाह कार्य गुडियों का खेल नहीं है, यह बडा गम्भीर और विचारणीय कार्य है बालकों के लालन पालन पर जितना ध्यान देने की आवश्यकता है, उससे कई गुना ध्यान इस ओर देना चाहिये। सुशीला के विवाह के विषय में मैंने कभी विचार नहीं किया, अथवा, ध्यान नहीं दिया, ऐसा समझना तुम्हारी भूल है। मैं निरन्तर इसकी चिन्ता रखता हूं। परन्तु अभी तक किसी स्थान और योग्य वरके न मिलने से ही मैं चुप हो रहा था।

मदनवेगा—प्राणनाथ ! यह सचमुच मेरा भ्रम था मैंने नहीं जाना कि, आप स्वयं इस विषय में इतना मनन कर हैं। परन्तु दासी की हीन बुद्धि में यह बात नहीं आती कि, देश भर में कोई योग्य वर और स्थान नहीं मिला सो कृपा करके समझा दीजिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विक्रमसिंह—(मुसकराके) स्त्रियोंकी बुद्धि बाहरी दृश्योंमें जल्दी अनुरक्त हो जाती है वस्त्राभूषणों से लदा हुआ और हाथ पैरसे सुडौल पुरुष देखा कि, उनका जी पानी २ हो जाता है। परन्तु किसी पदार्थके बाह्य सौन्दर्य्य पर रीझ के उसकी उत्तमता अनुत्तमता का निर्णय कर बैठनाबडी भारी भूल है। इन्द्रायणका फल देखनेमें बडा प्यारा होता है, परन्तु उससे कई गुना कडुआपन भी उसमें रहता है, अतएव स्थान और वरकी योग्यता अयोग्यता की जांच लक्ष्मी और सुन्दरता से नहीं किन्तु शिष्टता और बुद्धिमत्ता से करना चाहिये। यही कारण है कि मैं अभी तक सुशीला के योग्य वर और स्थान का अन्वेषण नहीं कर सका सुशीला के समान ही गुणवान रूपवान वर और सब प्रकार से सुख सम्पन्न घर ढूंढना हमारा परम कर्तव्य है। और अब तुम समझ सकती हो कि, ऐसे योग्य वर और घर का शोधना कितना मुश्किल कार्य है।

मदनवेगा—महाराज! आपका विचार बड़ा सुन्दर है। मेरी सुशीला बडी पंडिता है, उसे उसीके समान विद्वान् पति मिलेगा तब ही वह सुखी हो सकेगी इसमें सन्देह नहीं है। कल सुशीला की अध्यापिका को बुलाकर मैंने उनसे इस विषय की बातचीत की थी, सो उन्होंने भी कहा था कि, हमारी सरस्वती* को बृहस्पति के समान ही वर ढूंढना चाहिये। वे और भी कहती थीं, कि सरस्वती कोई साधारण बालिका नहीं है, उसके पांडित्य को देखकर दांतों में अगुली दबानी पडती है।

विक्रमसिंह—अध्यापिका का कहना असत्य नहीं है, सरस्वती साक्षात् सरस्वती ही है। यदि तुम्हारी सम्मति हो तो सुशीला का स्वयंवर मंडप रचने की इच्छा है। मेरे एक वृद्ध मंत्री ने कहा है कि, स्वयंवर मंडप में सुशीला को शास्त्रार्थ करके जो राजकुमार जीत लेवे, उसी को वरमाला पहिनाई जावे। मन्त्री की उक्त सम्मति बहुत योग्य

*पाठकों को याद होगा कि सरस्वती सुशीला की उपाधि थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझता हूं, अब केवल तुम्हारी आज्ञा लेने की आवश्यकता है, क्योंकि तुम सुशीला की माता हो।

मदनवेगा—(मुसकराके लज्जित होके) धन्य है ! मैं सुशीला की माता हुई पर आप कोई नहीं। हंसी को आपसे कभी छुट्टी भी मिलती है ?

विक्रमसिंह—जी ! जहां श्रीमती विराजमान है, वहां कमबख्त हंसी खुशीको छुट्टी कहां, आपकी नजर ओटमें हुई कि, वह भी रफूचक्कर होती है।

मदनवेगा—बस ! रहने दो जी ये चोचले, मुझे इस प्रकार बडाई करके कीचडमें न घसीटा करो। मैं आपकी चरणदासी हूं। मेरे शरीरपर भी जब आपका पूरा अधिकार है, तब अन्य विषयोंके अधिकार का छप्पर मेरे सिरपर रखना मुझे खिजाना ही है।

विक्रमसिंह—(रानीकी ठोडीको पकडके मुसुकुराते हुए) अच्छा देवीजी ! तो आप क्रोध न करें, आपहीकी जीत सही। क्षमा किजीये अब रात्रि बहुत बीत गई है, अतः शयन करनेकी आज्ञा दीजिये।

मदनवेगा-(पांवोंमें पडके और खीजके) भगवान जाने आप कभी ताने मार २ के तृप्त होंगे कि नहीं, मैं तुम्हारे पांव पडती हूं, मुझे यों पापमें मत घसीटो।

त्रयोदशवां पर्व।

रात्रीके दो बज चुके हैं। चारों ओर प्रकृति देवीकी शान्तिता विराजमान है। कंचनपुरकी गलियोंमें पुलिसके सिपाही आवाज लगा २ के पहरा दे रहे हैं, और कहीं कहीं उनका अनुकरण करके कुत्ते भोंक रहे हैं। इन बेचारोंको अभी तक इस नौकरीके वेतनका कहींसे प्रबंध हुआ कि नहीं सो किसी अखबारमें नही पढ़ा। पराधीन पहरूओंके सिवाय नगरके सब अमीर गरीब सुखनिद्रा ले रहे हैं। इस समय रतनचन्द्रजीके कमरेमें हम उसकी स्त्री रामकुंवरिको पेटके दर्दसे व्याकुल देखते हैं। रतनचंद्र पलंगपर एक ओर सो रहा है। रामकुंवरिका दर्द बहुत बढ गया, इसलिये वह धैर्य नही बांध सकी और जोर २ से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिल्लाने लगी। उसके चिल्लानेसे रतनचन्द्र जागके उठ बैठा, और हक्कावक्का सा होके वैद्यको बुलानेकी तजवीज करने लगा। नौकरको पुकारा, परन्तु कुछ उत्तर न मिलनेसे वह स्वयं अपने हाथमें एक लकडी लेके वैद्यके यहां जानेको चल खडा हुआ।

वैद्यके घरका रास्ता रतनचन्द्रजीकी दुकानके पाससे होकर ही गया है। सो ज्योंही रतनचन्द अपनी दुकानके साम्हने पहुँचा कि, उसने एक आदमीको अपनी दूकानके जीनेपरसे ऊपर जाते हुए देखा उस आदमीका सारा शरीर काले कम्बलसे ढका हुआ था, और हाथमें कोई हथियार चमक रहा था इस दृश्यको देखकर रतनचन्द अपनी श्रीमतीकी पीडाको भूल गये और कुछ सोचके तत्काल हीं धीरे २ दबे पैर उस आदमीके पीछे पीछे जीने पर चढ गये। वह आदमी दूकानके कमरेमें पलंग पर सोते हुए पुरुषका काम तमाम करनेको ही था, कि पीछेसे लपककर रतनचन्द्रने उसका हाथ पकड लिया। हाथ पकडते ही उस घातकने रतनचन्द्रकी ओर फिरके देखा। देखते ही उसके देवता कूच कर गये और इधर घातककी सूरत देखते ही रतनचन्द्रके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

पाठक! आप चिन्तातुर न हुजिये, हम बतलाये देते हैं कि ये घातक महाशय और कोई नहीं, रतनचन्दजीके सपूत हीरालालजी हैं। आप निरपराधी जयदेवका सिर काटनेको आये थे, परन्तु उसमें रतनचन्द्रने आकर विघ्न डाल दिया। पलंग पर बेचारा जयदेव सो रहा है, उसको खबर ही नहीं है कि मेरे लिये कैसे कैसे चक्र चल रहे हैं।

रतनचन्द्र हीरालालके हाथसे तलवार छीनकर फिर उसे नीचेकी दुकानमें ले आया और कहने लगा।

र०--रे पापात्मन! तूने यह कैसा अधम विचार किया था? छिः! जयदेव सरीखे धर्म परायण पुरुषरत्न पर भी तेरा यह हिंसक हाथ उठ सकता है?

हीरालाल--जयदेव धर्मपरायण नहीं, अत्यन्त पापी और नराधम है। और मैंने शीघ्र ही उसे यमपुर पहुचाना अपना कर्तव्य समझा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत०-[विस्मित होके] तेरे पास उसके अधर्मी साबित करनेका कुछ सबूत है ?

हीरा०-हां ! है, और उसे आप भी जानते हैं, परन्तु आप जान बूझके अजान बन रहे हैं। उस दिन मौसी विमाता ने इसके अत्याचार का आपसे सब हाल कहा था, परन्तु जब आप उसे बिलकुल पानीके घूंट पीगये, तब मैंने स्वयं ही उसको दण्ड देना उचित समझा।

रतनचंद्र-क्या तुझे स्वयं जयदेवके अत्याचारका विश्वास है ?

हीरा०-हां ? पूरा पूरा विश्वास है। और मैं आपसे आज शपथ पूर्वक कहता हूं कि, यदि आप उसे घरसे नही निकालेंगे, तो मैं उसकी जान लिये विना नहीं रहूंगा।

रत० [कुछ सोचकर] अच्छा, आठ दिनके पहले पहले मैं इसका निवटारा कर दूगा, परंतु याद रखना, तबतक कोई बारदात न होवे। यदि मेरी इस बातका कोई उल्लंघन करेगा तो अपने कियेका फल पावेगा। इतना कहकर रतनचंद वैद्यके यहां गया और वहांसे कुछ औषधि लाकर उसने रामकुंवरिको खिलाई। खिलाते ही थोडी देरमें उसकी पीडा शांत हो गई। और तब दोनों सुखसे सो रहे।

चौदहवां पर्व।

जयदेवको कंचनपुरमें रहते हुए बहुत दिन बीत गये। सुशीलाके विरह और भूपसिहके विछोहका कांटा उसके हृदयमें उठते बैठते चलते फिरते निरन्तर चुभा ही करता था। और इधर रतनचन्दके घरकी घटनाओंसे, जो आजकल हुआ करती थीं। उसका चित्त और भी चिन्तित रहता था, सो अयदेवके शरीरकी दशामें परिवर्तन हो गया था उसका निष्कलंक मुखमंडल यद्यपि खूब तेजस्वी और कांतिमान था, परन्तु शोकचिन्ताओंकी पीली कलई उस पर चढ़ गई थी। बडा भारी विद्वान् होकर भी जयदेव शोकचिन्ताओंसे अलिप्त नहीं रह सका यह ठीक है; परन्तु उसको कभी किसीने चिन्तित और अन्यमनस्क नहीं देखा। यह सदा प्रसन्नमुख रहता था, और अपने कार्यको बडी बुद्धि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मतासे सम्पादन करता था। उसकी एकवाक्यता, सत्यता और सरलतासे रतनचन्दकी दूकान पहलेसे चौगुनी चल पडी थी।

आज प्रातः ही जयदेवकी शरीरचेष्टा बहुत कुछ शोकाच्छन्न दीखती है। वह अभी शय्यात्याग कर उठा है, परन्तु ऐसा जान पडता है कि उसने रात्रिभर निद्रा नहीं ली आज वह अपने मुखकी शोकच्छायाके छुपानेकी बहुत चेष्टामें है, परन्तु छुपा नहीं सकता। पुस्तकादि पढ़कर भी अपने चित्तको बहलानेका प्रयत्न किया, परन्तु निष्फल हुआ आखिर पलंगसे उठके बाहर आया। और आवश्यक कार्योंसे छुट्टी पाकर उसीसमय रतन चन्दजीसे एकान्तमें जाकर मिला। दोनोंमें इसप्रकार बातचीत होने लगी।

जयदेव—शेठजी! मैं आपकी कृपाका बहुत आभारी हूं। आपने बड़े संकटके समय आश्रय देके मेरा उपकार किया है, मैं उसे कभी भूल नहीं सकता। आज प्रार्थना यह है, कि अनेक कारणोंसे अब मेरा यहां चित्त नहीं लगता है, इसलिये मुझे घर जानेकी आज्ञा दीजिये।

रतनचन्द—जयदेव! तुम सरीखे सच्चे सदाचारी पुरुषको मैं छोड नहीं सकता। न जाने क्यों मेरा जी तुम्हें बहुत चाहता है परन्तु इधर कुछ दिनोंसे जब मैं तुम्हे एकांतमें देखता हूं तब तुम कुछ विशेष चिंतित दीखते हो। तुम स्वयं बुद्धिमान हो, इसलिये चिन्ता नहीं करना चाहिये यह शिक्षा भी नहीं दे सकता। और दूसरे क्या चिन्ता है, यह जान भी नहीं सकता, जो कुछ कहूं।

जयदेव—(नीचा मस्तक करके) शेठजी! आपकी कृपा और प्रेमको मैं जानता हूं, और चिन्ताके फलको जानता हूं, परन्तु क्या करूं विवश हूं। चित्त किसी तरह नहीं लगता, और न आगे लगनेका कुछ उपाय ही सूझता है, अतः लाचार प्रार्थना करता हूं।

रतन—अस्तु, अब मैं इस विषयमें कुछ आग्रह नहीं कर सकता, परन्तु एक जरूरी कामके लिये मुझे खेटपुर जाना है। वहां मुझे ८–१० दिन लगेंगे, तब तक ज्यों त्यों और भी तुम्हें रहना चाहिये। वहांसे आते ही मैं तुम्हारी विदा अवश्य कर दूंगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जयदेव—(चिन्तित होके) आपकी इच्छा ! परन्तु जहां तक बने आप वहां अधिक दिन न लगावें, क्योंकि, मैं बहुत दुःखी हूं।

रतनचंद—नहीं ! ऐसा नहीं होगा, मैं बहुत जल्दी आऊंगा। यह सुनके जयदेव वहांसे चला आया, और शेठजीने अपने चलनेकी तैयारी की। आवश्यक सामग्री, दो घोडे और दो सेवकोंको लेकर रतनचंद कंचनपुरसे चल पड़े। कुछ दूर चलके उन्होंने सेवकोंसे कहा, कि मुझको इस नजदीकके गांवमें कुछ काम है, सो मैं गांवमेंसे होता हुआ दूसरे रास्तेसे खेटपुर पहुंचूंगा। तुम दोनों सडकपरसे सीधे चले जाओ, और खेटपुरके बाहर जो पक्की सराय है, वहां ठहरना। मैं तुमसे वहीं मिलूंगा इतना कह कर रतनचंद एक पगडंडी परसे चल दिया। सेवक लोग सडक पकडे हुए चले गये।

पंद्रहवां पर्व।

"जागो ! जागोरे ? बटोही यहां चोरनिको डर है"।

शेठ रतनचंदजीके चले जानेके कारण आज उनकी श्रीमती रामकुंवरिजी अकेली हैं। आपने भोजनके समय हीरालालसे कहा; देखो जी ! इतनी बड़ी हवेलीमें मैं अकेली रहनेवाली नहीं हूं। यहां जब दिनमें ही डर लगता है, तब भला तुम ही कहो, रातको मेरी क्या गति होगी ? मैं जरूर मर जाऊंगी। सो यदि तुम्हें मेरे प्राण बचाना अभीष्ट हो तो यहीं आकर सोना। रामकुंवरिका यह प्रस्ताव हीरालालको बिना कुछ हीलेके उसी समय स्वीकार करना पडा।

प्रतिज्ञानुसार रातके दश बजने पर हीरालाल दूकानसे आया और ऊपरके एक सजे सजाये कमरेमें जहां कि रतनचंदजी सोया करते थे, जाके एक पलंग पर लेट गया इस पलंग परसे दो तीन गजके अंतरपर एक और मसहरीदार पलंग बिछा हुआ था, उस पर रामकुंवरि लेटी थी। सामने कमरेके बीचोंबीच एक सुन्दर शमादान जल रहा था, उसके प्रकाशसे कमरेके शृंगारकी सम्पूर्ण चीजे हंसती हुई मालूम पडती थी। कमरेकी चारों ओरकी खिडकियां खुली हुई थीं। उनमेंसे हवाके मीठे २ झोके आके शरीरसे लगकर गुदगुदी पैदा कर रहे थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीरालाल और रामकुंवरि दोनोंकी चढ़ती जवानी है दोनोंके शरीरमें उन्मत्तताकी लालिमा रोम रोम से फूट रही है, और दोनों ही संसारके अत्यंत दुःखित परिपाक फलके स्वादसे अपरिचित हैं। अतएव नही कह सकते कि आज इन दोनोंका सन्निकट शयन दोनोंके लिये कैसा सुखकर तथा दुःखकर है। कंचनपुर नगरके निवासी इस समय सुखकी नींद सो रहे हैं। वे इस बातसे बिलकुल बेसुध हैं, कि हमारे नगरके एक एकांत कमरेमें संसार-पथके ये मुग्ध पथिक एक भयानक डाकूकी नजरके नीचे आ गये हैं। न जाने आज उनके परमधनकी रक्षा होती है कि नहीं इस समय लज्जा और लोकमर्यादा ये दोनों पूज्य देवी उन दोनोंकी रक्षामें सन्मुख उपस्थित हैं परन्तु कौन कहा सकता है कि मूर्ख पथिकोंको वह प्रबल पराक्रांत डाकू अछूते छोड देगा ? लज्जा और लोक मर्यादा क्या मदनसिंह डाकूके बाणके आगे ठहर सकेंगी ? नहीं कदापि नहीं। आज मदनसिंह बडे प्रबल हैं, यौवन संपति और अविवेकादि बडे योद्धा उनके सहायक हैं। हाय ! आज बेचारे पान्थ अवश्य लुट जावेंगे। रतनचन्दजी की हवेली के सामनेसे चले जाते हुए एक पुरवियेने इसी समय एक कवित्त पढी—

"जागो ! जागोरे बटोही ! यहां चोरनिको डर है"।

परन्तु खेद है कि, उन्मत्त पथिकोंने कवित्तके उक्त अन्तिम चरण पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह परम शिक्षाजनक पद कंचनपुरके ऊंचे २ मकानोंकी दीवालोंसे टकराकर वायुमंडलमें विलीन होगया।

हीरालालके आनेके बाद प्रायः एक घंटेतक कमरेमें सन्नाटा खिचा रहा, मानों पडते ही दोनोंको घोरनिद्राने दबा लिया। परन्तु यथार्थमें उन दोनोंके दिलोंमें बडी उछलकूद मच रहीं थी, केवल बाहिरी मौनावलम्बन था। लज्जा और मदनका द्वन्द्वयुद्ध बहुत समय नक चला। आखिर देखते ही देखते लज्जाकी पक्षके विवेक, विचार, सन्तोष, आदि योद्धा पुष्पहार (काम) के तीक्ष्णबाणसे घायल होकर धराशायी हो गये। और लज्जादेवी पलायोन्मुख हुई। हीरालालने लडखडाती हुई जीभसे कहा —चाची ! जागती हो कि सोती ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामकुंवरि—हत्यारी नींदने अभी कहां खबर ली है। क्यों! कुछ काम हो तो उठूं।

हीरालाल—हां! मुझे इस समय खूब प्यास लग रही है। दया करके थोडासा शीतल जल पिलादो, तो हृदय शीतल हो जावे।

रामकुंवरि—अजी, इसमें दयाकी कौनसी बात है, मैं अभी लाई (इतना कहकर रामकुंवरि पलंगपरसे उठी और एक सुन्दर गिलासमें जल भरके लाई और बोली) लो पियो, मैं कैसा प्यारा ठंडा जल लाई हूं।

हीरा०—बडी दया की। (पानी पीकर) आज न जाने मुझे क्यों नींद नहीं आती।

राम०—और यही हाल मेरा है, जबसे पडी हूं करवट बदल रही हूं।

हीरा०—तो फिर थोडी देरके लिये यहीं बैठ जाओ। कुछ बातचीत करके ही रात काटें।

राम०—क्या हर्ज है? (ऐसा कहके हीरालालके पलंगके पास हीं एक कुर्सीपर बैठ गई, और किंचित् मुसुकराके बोली) तुम पीहरसे अपनी बहुको क्यों नहीं लिवा लाते! बहुत दिन होगये, बेचारी तरसती होगी और इधर तुम भी तकलीफ उठाते हो।

हीरा०—क्या करूं! काकाजीसे लाचार हैं, उन्हें इस बातका कुछ ख्याल ही नहीं है।

राम०—अजी! उनकी कुछ मत कहो, वे तो अपनी माफिक सबको हीं मिट्टीके समझते हैं। जरा कभी छेडछाड की कि ज्ञान सुझाने बैठ जाया करते हैं। यह नहीं सोचते कि नई उमर भी कोई चीज है?

हीरा०—(अंगडाई लेके) अजी। और नई उमर भी कैसी? जिसमें दुनियादारीका कुछ भी नहीं देखा। दिलके हौसले दिलमें हीं मारके रह जाना पडता है।

रामकु०—परंतु हौसले दबानेसे दब नहीं सकते, जान पडता है, आज तुम इसी उधेडबुनमें लगे होंगे, इसीसे नींद नहीं आई।

हीरा०—अजी! कुछ मत पूछो, आज बडी तकलीफ है, न मालूम जी कहां कहां जाता है!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामकुंवरि–(जम्हाई लेके) जाता कहां होगा, बहुत दूर तो ससुराल तक।

हीरा०–और क्योंजो ! आपका !

रामकुंवरि–(धीमे स्वरसे शरमाके) बस ! अपने सरीखा मेरा भी समझो। हम तुम दोनों एक हीं रोगसे पीडित हैं।

हीर०–यह रोगकी खूब सुनाई ! भला अब इस रोगकी चिकित्सा करनेकी भी इच्छा है या नहीं !

रामकुं०–(आखें नींची करके) सो तो तुम ही जानो।

विचारशील पाठक ! इसके आगे क्या हुआ, सो कहलानेकी जरूरत नहीं है। जो सोचा था, वही हुआ। बेचारे अपक्वबुद्धिके पथिक प्रेमका पियाला पीके ज्यों हीं आपको भूले कि, उस चांडाल कामने उन्हें लूट डाला। वे क्षण भरमें शील संयमादि रत्नोंको खोकर राजासे रंक हो गये। दोनोंके मुखपर कालिख फिर गई।

यह देख कमरेमें जो शमादान जल रहा था, वह एक हवाके झोकेसे गुल हो गया। उसने अपने प्रकाशमें यह अन्धकार होना उचित नहीं समझा ? कमेरेकी खिडकियां भी फटफटाने लगी। यदि उनका वश होता तो, शायद वे भी यह दुष्कृत्य देखनेको वहां न लगी रहती। इतनेमें कमरेके पश्चिमकी ओर एक बडा भयानक शब्द हुआ, जिसे सुनके हीरालाल और रामकुंवरि दोनों चौंक पडे। घबडाके ज्यों हीं उन्होंने देखा कि, साम्हने एक विकटाकार मूर्तिको देखा। उसका सारा शरीर एक काले कम्बलसे ढका हुआ था, और हाथमें एक तीक्ष्ण धारवाली तलवार थी। इस भयानक पुरुषको देखते ही दानों एक बडी चीख मारके बेहोश हो गये।

मूर्ख पथिकों ! तुमने विना विचारे ऐसे स्थानमें डेरा किया, जहां एक क्षणभर भी कुशलतासे नही बीत सकता था हाय ! तुम लूट लिये गये। अब तुम अपने खोये हुए शालरत्नको संसारका समस्त द्रव्य न्योछावर करके भी नहीं पासकते। अब संसारमें तुम्हारा जीवन केवल भार रूप है। एक कवि कहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अपकीरति छाय रही जगमें,
तो वृथा दिन चार जिये न जिये"

सोलहवां पर्व ।

कंचनपुर से पांच छह कोस पश्चिमकी ओर खेटपुर एक अच्छा कस्बा है । वहां शेठ रतनचन्दजीके एक परममित्र रहते हैं, जिनका नाम शेठ धनपालजी है । धनपालजी बडे सौम्य और दूरदर्शी पुरुष हैं । रतनचन्दजीको वे बहुत मानते हैं, और हृदयमें प्रीति भी रखते है । दोनोंका बहुत बडा घरोबा है । इसलिये दोनोंके कार्य दोनों की सम्मतिसे हुआ करते हैं ।

आज रतनचन्दजी उक्त शेठजीसे मिलनेको चले थे, और यह विचार किया था कि, उन्हें लौटते समय साथमें लेता आऊंगा । जबसे उन्हें रामकुंवरि के चाल चलन पर शक हुआ था, और जबसे जयदेवको व्यर्थ कलंक लगानेका रामकुंवरिकी ओरसे प्रपंच रचा गया था, तबसे रतनचन्दजीका चित्त ठिकाने नहीं रहता था, उसे गृहस्थाश्रमसे बहुत कुछ विरक्तता आगई थी और इसलिये तत्सम्बन्धी विचार करनेके लिये वह अपने मित्रसे मिलना चाहता था, परंतु कार्याधिक्तासे अबतक उसकी वह इच्छा पूर्ण नहीं हुई थी । आज सबेरे जब जयदेवने उससे विदा मांगनेका प्रस्ताव किया तब उसे मित्रसे मिलनेका विचार सहसा करना पडा । क्योंकि, जयदेवके चले जाने पर दूकानका कार्य कैसे चलेगा, यह उसे बड़ा भारी चिन्ता बढ गई । हीरालालमें इतनी योग्यता और गुरुता नहीं थी कि वह दूकान चला सके । परन्तु कचनपुरसे निकलते ही एक दो अपशकुन ऐसे हुए कि, उनके फलोंके विचारमें रतनचन्दका हृदय धडकने लगा । उसका साहस नहीं हुआ कि, आज कंचनपुर छोडके अन्यत्र जाऊं । परन्तु घरसे निकल पडा था, इसलिये क्योंका त्यों लौटना योग्य नही समझा और तब नौकरोंको खेटपुरकी धर्मशालामें ठहरनेको आज्ञा देकर एक पगडंडीसे चल पडा इसके पहले पर्वमें पाठक यह बात जान चुके हैं ।

यह पगडडी वायव्यकी ओर जो एक छोटासा ग्राम था, वहांको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गई थी। रतनचन्द वहींको चल पडा, और ग्रामके बाहर एक अमराईकी सघन और शीतलछाया देखकर ठहर गया। एक झाडसे घोडेको बांध दिया और आप एक कम्बल बिछाके पास ही एक झाडकी छायामें बैठ गया। यह स्थान कंचनपुरके केवल २ कोसके फासले पर था।

गृहजंजालमें फंसे हुए जीवको एकान्त मिलनेसे आनन्दकी जगह निरानन्दका अनुभव होता है। जहां योगियोंको शांति मिलती है, वहीं गृह जंजालियों पर अशांतिका पहाड टूट पडता है। जहां योगी आत्मस्वरूपका अनुभवन करते हुए अनन्त कर्मोंका निर्जरा करते हैं, वहीं परिग्रह पिशाचके पंजेमें फंसे हुए प्राणी जडरूप संसारको भयानक रूप धारण किये हुए देखते हैं। और जहां उन्हें सर्वथा निराकुलता प्राप्त होती है, वहीं संसारी जीवोंको तमाम चिन्तायें एकदम आ दबाती हैं। रतनचंदकी उस एकांत आराममें यही दशा हुई। अपने कलंकी संसारकी नानाविचारतरंगोंमें वह डूबने उछलने लगा। वैराग्य भावनाओंसे सहारा लेकर उसने बहुत चाहा कि, इन तरंग मालाओंसे पार हो जाऊं, परंतु कुछ फल नहीं हुआ। धीरे २ संध्या होगई। प्रभाकर महाराज आंखें मिलाते मिलाते मुंह ढकनेकी ताकमें लगे। प्रतीचीदेवी उनकी यह दशा देख धीरे २ विकटरूप धारण करके कोप परिस्फुटित लाल लाल आंखे दिखाने लगी। परंतु इस ललाईका फल कुछ भी नहीं हुआ वे धृष्ट नायक बनके चल ही दिये।

उनके जाने की देर थी कि, अन्धकार महाशय भूमि, वृक्ष, लता, पत्रादिकों पर क्रम से काले परदे पड़ गये ऐसा जान पडने लगा, मानों यामिनी कामनी को वैधव्यदीक्षा देने के लिये काली साडी पहिनाई गई है। इस समय रतनचन्द सेठ को बडा वैराग्य उत्पन्न हुआ। उनके देखते २ जिस संसार में प्रकाश ही प्रकाश था, अन्धकार ही अन्धकार दीखने लगा। यद्यपि ये प्राकृतिक घटनायें प्रतिदिन हुआ करती हैं, और देखने में भी प्रतिदिन हो आती हैं, परन्तु आज रतनचन्द के खिन्न हृदय पर उन्होंने बहुत असर किया। उस अन्धकार पूर्ण रात्रि में उसके मुख से अचानक निकल पडा कि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In.Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"नहीं ! अब इस असार संसार में रहने की आवश्यकता नहीं है। कल ही इसका निवटारा कर डालना चाहिये" इस वाक्य के निकलते ही तारागणों के व्याज से गगन मण्डलने हंस दिया। उसने सामने जो एक बादल का काला टुकडा पडा था, वह उसी समय अलग हो गया। रतनचन्दजी की बुद्धि का परदा भी हम समझते हैं, इसी समय अलग हट गया !

यद्यपि रतनचन्द को घर जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी, और वह जाना भी नहीं चाहता था, परन्तु शल्य का एक छोटा सा कांटा उसके हृदय में ऐसा चुभ रहा था, कि उसके निकले बिना उसकी वृत्ति में निश्चलता नहीं आ सकती थी। वह कांटा वही था कि, रामकुंवरि को वह दुराचारिणी जानता था, परन्तु अपनी आंख से उसने उसमें कोई भी दुश्चरित्र का लक्षण नहीं देखा था। और यथार्थ में रामकुंवरि थी भी ऐसी ही चालाक कि उसकी मुख चेष्टा से उसके चारित्र का अनुमान रतनचन्द सरीखे सरल पुरुष के द्वारा होना कठिन था। अतएव आज रतनचन्द ने अपनी उस शल्य को स्वयं जाकर निकाल डालना उचित समझा। क्योंकि, बुद्धिमान जो कोई कार्य करते हैं, वह भली भांति विचार पूर्वक ही करते हैं।

घोड़े को उसी अमराई में छोडकर रतनचन्द कंचनपुर की ओर चल पडा। लोगों की नजरों से बचने के लिये उसने अपना शरीर कम्बल से ढक लिया था और शरीर रक्षा के लिये एक तलवार भी उसी में छिपा ली थी। मुख्य मार्ग को छोडकर घूमते फिरते हुए चलने में बहुत बिलम्ब हो गया। अतः अनुमान ११ बजे बडी कठिनता से अपनी हवेली के निकट पहुंचा नगर भर घोर निद्रा में तल्लीन था। केवल दो चार पुरुषों के आ जाने की आहट राजमार्ग पर सुनाई पडती थी। अथवा कभी कभी अपरिचित शब्द सुनकर कूचों में भोंकते हुए कुत्तों की आवाज सुनाई पडती थी, शेष सर्व प्रकार से शान्ति थी।

हवेली के पश्चिम में जो गली थी, वहां जाकर रतनचन्द ने देखा, तो उसके खास कमरे की खिडकियों में से रोशनी आ रही थी, किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की बात-चीत की आहट मिलती थी। इसलिये वह वहीं ठिठककें खडा हो गया। और ध्यान लगाके सुनने लगा। नगर भर में उस समय बिलकुल शांति थी। इसलिये उस समय वह बात चीत यद्यपि बहुत धीमे २ स्वरों में होती थी, परन्तु रतनचन्द को इतना अनुमान कराने के लिये बस थी, एक पुरुष और एक स्त्री का वह वार्तालाप है। रतनचन्द के चित्त में उसे सुनकर बडी व्यथा होने लगी।

उस गली में हवेली पर चढ़ने के लिये पहले एक जीना था, परन्तु इधर कुछ दिनों से अनावश्यक समझ कर उसका द्वार एक ताला डाल के बन्द कर दिया था। दैवयोग से रतनचन्द के पास इस समय चाबियों के गुच्छे में उसकी चाबी निकल आई अतः शीघ्र ही उसके द्वारा ताला खोल के वह जीने पर चढ़ गया। परन्तु ऊपर किवाड बन्द थे। जाके देखा तो दरवाजा बन्द था। किवाडों के सन्धों में से भीतर कमरे का कुछ, २ प्रकाश आ रहा था। रतनचन्द ने रन्ध्रों में आंख लगा के कमरे के भीतर जो कुछ देखा, उससे वह एकदम अवाक् हो गया। जिसका स्वप्न में भी विचार नहीं किया जा सकता था, उस पाशव कर्म को देखकर उसका हृदय शून्य हो गया, चेतना जाती रही। क्षण भर के लिये धरती पर बैठ गया। पश्चात् थोडी देर में चेतना लाभ होते ही उसका क्रोध यकायक उबल उठा, बड़े जोर से बोला—"भगवति पृथिवी! ऐसे अधर्मी पशुओं का भार भी तू सम्हालती है? धिक्कार है तुझे।" और जोर से किवाडों में लात मारी कि, किवाड फट के अलग हो गये। पापी उसके शब्द से चौंक पड़े और साम्हने काले कम्बल से ढकी हुई इसी विकटाकार मूर्तिको देखकर चीख मार के बेहोश हो गये।

नृकीटो! पापियो! तुम जानते हो कि, हमारे पापों का देखने वाला कोई नही है, इसलिये इच्छित पाप करने के लिये उतारू हो जाते हो। मदोन्मत्त होकर लोकमर्यादा विवेक, शीलादि सबको तिलांजलि देकर स्वतंत्रता से विचरते और अपने स्वरूप को भूल जाते हो। परन्तु स्मरण रक्खो, तुम्हारे कर्म तुमसे एक क्षणभर भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथक् नहीं रहते, वे बड़े कठिन प्राहरिक हैं। तुम्हारी प्रत्येक कृतिका फल तुम्हें मिलेगा। हाय! हाय! थोड़े से विषय सुख के लिये तुम्हें घोर नरक में असह्य दुःख झेलने पड़ेंगे। सचेत रहो।

सत्रहवां पर्व।

बड़ी भयानक रात है। अन्धेरेके मारे कुछ भी नजर नहीं आता। बादल न केवल उमड़े हुए हैं, परन्तु उदार पुरुषों की नाईं बरस रहे हैं। परन्तु लोग संसार की अस्थिरता नहीं देखते, गहरी नींद में सो रहे हैं। थोडे २ जलका आश्रय पाकर मेंडकगण पौराणिक पंडितों की तरह अपनी टर्रटर्र में मस्त हैं। शीतल समीर बारीक २ जलकणों के सहित इतस्ततः भ्रमण कर रहा है, परन्तु विलासपुर की रमणीय वस्ती में उसे कोई ठहरने को जगह नहीं देता। उसका आगमन होते ही लोग अपने-अपने घरों के द्वार झरोखे बन्द कर देते हैं। वह उनसे टकरा कर जब खिन्न हो जाता है तब फिर आगे चलता है।

इस समय विलासपुर के जेलखाने में जो कि शहर से पूर्व की ओर है, हम अपने पाठकों को ले चलते हैं। एक कोठरी में उदयसिंह और बलवन्तसिंह हथकड़ी और बेडियों से विवश पड़े हुए हैं। उदयसिंह के चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई है लम्बी लम्बी आहें खींचने और आंखों से आसुओंकी धारा बहानेके अतिरिक्त वह सर्वथा निश्चेष्ट हैं। बलवन्तसिंह अपने मित्र की इस दशा के विचार में अन्यमनस्क हुआ कुछ विचार कर रहा है। अफसोस! राजकुमार की दशा बडी शोचनीय है। सुशीला की मुहब्बत ने बरबाद कर दिया, तोभी वे सुशीला और उसका मोहब्बत छोड़ना नहीं चाहते। हजार समझाने पर भी इनके हृदय पर कुछ असर नहीं होता। क्या करू, महाराज साहब जब यह बात सुनेंगे, तो क्या कहेंगे? मेरे साथ होते हुए भी विपत्ति से रक्षा नहीं हो सकी। रेवती भी कैसी चालाक लौंडी है। कौन जानता था कि उसके सुडोल और सीधे शरीर के भीतर ऐसी बेडौल और टेढी चालाकी निकलेगी। खूब फंसाया। हमारे हुजूर जब तक यहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जेलखाने की हवा खावेंगे, तब तक वहां उनकी सुशीला किसी भाग्य-शाली के हृदय का हार बन जावेगी। सुनते हैं, दो ही चार दिन में सुशीला का स्वयंवर होने वाला है। चलो छुट्टी हुई, तब तो उदयसिंह हत्यारी मुहब्बत को छोड़ेंगे। अच्छा हुआ जो इनके कानों तक यह स्वयंवरकी भनक नहीं पडी नही तो अभी न जाने क्या गजब मचाते। परन्तु नहीं, ये इसी में मर जावेंगे। मुहब्बत बहुत बुरी बला है, अब भी मुझे प्रयत्न करने से न चूकना चाहिये। यदि इस जेलखाने से छुट्टी हो जावे, तो हम लोग अब भी बहुत कुछ कर सकते हैं, और अपने अभीष्ट की सिद्धि को पा सकते हैं। इस प्रकार विचार जाल में उलझे हुए बलवन्तसिंह को दरवाजे के बाहर कुछ आहट मिली। वह धीरे धीरे द्वार पर आया, और दालान में टहलते हुए एक पहरेदार को देख के बोला, क्यों भाई! इस समय भी क्या तुम पहरा दे रहे हो? यह रात तुम इसी तरह निकाल दोगे और विश्राम नहीं करोगे?

पहरेदार—नहीं, हम लोगोंकी यही नौकरी है। नौकरी में आराम नहीं है। मेहनत से जी चुराकर आराम करना आराम नहीं हराम है। थोडे से आराम के लिये अपना ईमान नहीं बिगाडना चाहिये। बेईमान के दोनों लोक बिगडते हैं।

बलवतसिंह—तब तो तुम बड़े ईमानदार और ज्ञानतदार नौकर मालूम होते हो। पर भाई! हमने सुना है तुम्हारा राजा कदरदां नहीं है यदि तुम हमारे महाराज के नोकर होते तो अभी तक एक अच्छे औहदे पर पहुंच जाते। क्या कहूं, इस समय मैं विवश हूं, नहीं तो तुम्हें बतला देता कि, हमारी सरकार कैसी गुणज्ञ और दयावान है।

पहरेदार—भाई! "गई बहुत और रही थोडी" अब साल छह महीने के लिये क्या जरूरत है कि, गैरों के द्वारों पर टकराता फिरूं। हमारी सरकार में गुणज्ञता उदारता और दया की कमी नहीं है। जिसने तुमसे हमारे राजके विषयमें कुछ कहा है, उसने गलती की है! वह कोई नमक हराम होगा। यथार्थ में इसमें महाराज का दोष नहीं है। मेरे पूर्व जन्मकी कमाई ही इतनी थीं कि, बुढापे तक पांच रुपयेसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छह नहीं हुए। और अब तो होवेंगे ही क्यों? मेरे भाग्य में नहीं है, तब आपके महाराज भी मेरे लिये अनुदार बन जावगे!

बलवन्त—नहीं! ऐसा नहीं है। भाग्यके भरोसे बैठे रहनेवाले कुछ नहीं कर सकते। भाग्यवादी बडी भूल करते हैं। पुरुषार्थसे सब कुछ हो सकता है। और पुरुषार्थ करना हम लोगोंका परम धर्म है। भाग्य कोई चीज नहीं है।

पहरेदार—अच्छा, भाग्य कोई चीज नहीं है, तो इतने बडे महाराजके वीरपुत्र होके ये तुम्हारे मालिक क्यों भाग्यको रो रहे हैं, और तुम भी तो बडे पुरुषार्थी हो, भला निकलो तो इस कोठरीमेंसे? देखें।

बलवन्त—तो क्या हमारे यहांसे निकल जानेमें तुमको शक है? तुम्हारे देखते हुए हम यहांसे पुरुषार्थसे निकल जावेंगे और उसमें तुम्हीसे हमको सहायता भी मिलेगी। (उदय० की ओर उंगली करके) देखो! भाग्यवादियोंकी यह दशा होती है। ये तुम्हारे हीं जोडीदार हैं हजरत मुहब्बत तो लगाने चले हैं परीसे और सूंघ रहे हैं जमीन!

पहरेदार—(सचिन्त होके) तुमने यह क्या कहा कि, तुमसे मदद मिलेगी? क्या तुम मुझसे कुछ ऐसी आशा रखते हो?

बलवन्त—हां, क्यों नहीं! संसारके सब ही कार्य एक दूसरेके सहायतासे चलते हैं। सच कहते हैं, यदि तुम मुझे थोडी देरके लिये यहांसे छुटकारा दे दो, तो कल ही अपने महाराजके राज्यमें तुम्हें किसी अच्छे ओहदे पर बैठा दूं। और लो, हम लोगोंके शरीर पर इस समय जो कुछ है सब तुम्हारा है।

पहरेदार—छिः! इसको पुरुषार्थ कहते हैं! यदि धोकेबाजी, बेईमानी, फरेब और रिशवत देनेको ही पुरुषार्थ कहते हैं, तो धिक्कार है, उस पुरुषार्थको? तुम नीच बातें करके अपने नामी राजाके नाम पर और अपने क्षात्र धर्मको बट्टा लगाते हो, लानत है, तुम पर? यदि तुम्हारा राजा तुम सरीखे पुरुषोंकी बातपर विश्वास करता है, तो समझना चाहिये कि, वह कोई अच्छा राजा नहीं होगा। जिस राज्यमें योग्यायोग्यकी पहचान नहीं है, वह राज्य बडे अन्धकारमें ग्रस्त है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसकी जड बहुत कच्ची है। राजा दूसरे देवके तुल्य है, उसके साथ विश्वासघात करने से हम लोगोंका कदापि कल्याण नहीं हो सकता जाओ ! अब मैं तुमसे बातचीत नहीं करना चाहता, तुम सरीखे एक सरदारसे मेरे सरीखे एक अदना सिपाहीको इतनी घृणा उत्पन्न हो जाना बडे दुःखकी बात है ।

बलवन्तसिंहका मुंह बन्द हो गया। उस निष्कपट, विश्वस्त सिपाहीके सन्मुख उसे एक शब्द कहनेका भी साहस नहीं हुआ । वह धीरे धीरे खिसकके अपने स्थानपर आ बैठा। सिपाही दूसरी ओरको टहलने लगा।

अनुमान आधे घण्टेके सन्नाटेके बाद द्वारपर फिर किसीकी आहट हुई। बलवन्तसिंह कान लगाके सुनने लगा आवाजसे जान पडा कि, वही पहरेदार है, जिससे बातचीत हुई थी। निकट जाके पूछा–क्यों, क्या कहते हो ? बोला क्या किया जावे पेट बडी बुरी बला है, तुम्हारा मंत्र मुझपर चल गया। और सचमुच तुम्हारा पुरुषार्थ कामका है, भाग्य कोई चीज नहीं है। लाओ, तुम अपने शरीरपरका जेवर निकालके मुझे दो, मैं तुम्हे अभी यहांसे निकाले देता हूं। परन्तु स्मरण रखना, तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी होगी।

यह सुनते ही बलवन्तके मुंहमें पानी आ गया, वह आनन्दके मारे उछल पडा, और बोला–विश्वास रक्खो ! हम अपनी प्रतिज्ञा अवश्य ही पूरी करेंगे और तुम्हे निहाल कर देंगे। लो, हम लोगोंकी हथकडी बेडी काट दो, और यह जेवर उतार लो। यहांसे भागकर तुम हमारे राज्यमें चलो, वहां तुम्हे कोई भय नहीं है यह सुनके पहरेदारने धीरेसे द्वार खोल दिया और भीतर आके दोनोंकी हथकडी बेडी काट दो। शरीर परका जेवर ले लिया, पश्चात् कहा–लो शीघ्रतासे भागो, यदि किसीको मालूम हो जावेगा, तो जानपर आ बनेगी। आखिर तीनोंने सिरपर पैर रखके भागना शुरु किया। परन्तु १ मील ही न भागे थे कि, पीछेसे किसीकी आवाज आई, खबरदार ! कायरो ! मैं आ पहुंचा तुम तीनों जवान हो, मुझ बुढेकी तलवारका मजा भी जरा चखे जाओ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं तो पीछे शेखियां मारोगे। यह सुनते ही तीनोंके पैर जहांके तहां जम गये, शरीर शून्य हो गया। आनेवाला तीनोंके आगे भीममूर्ति धारण करके आ खडा हुआ। पहरेदार सिपाहीके पैर थर थर कांपने लगे। चाहा कि भाग जाऊं, परन्तु ऐसा कर नहीं सका। आनेवालेका पहिला हाथ उसी पर पडा जिससे उसकी बाह कटके अलग गिर पडी, गहरे घावकी वेदनासे वह गिरके मूर्छित हो गया। खूनकी धारा बहने लगी।

बलवन्तसिंह और उदयसिंह दोनोंके पास इस समय हथियार नहीं थे। मददगार सिपाहीको बातकी बातमें गिरते देखके और अपने पर आई हुई विपत्तिको सन्मुख देखके दोनों झपटे और चाहा कि, तलवार बचाके इसे बाहुपाशमें बांध लेवें, परन्तु वह भी असावधान नहीं था, उछलके वह अलग हो गया, और दाव बचाके एक हाथ ऐसा मारा कि बलवंतसिंहके कंधे पर जाके पडा। लगते ही वह भी बेहोश हो गया। गिरे हुए सिपाहीकी तलवार उदयसिंहके हाथमें पड गई, इसलिये वह बडे बलके साथ आनेवालेके सम्मुख हुआ, और अनुमान आध घंटेतक दोनोंमें खूब युद्ध हुआ।

उदयसिंहने अपने प्रतिद्वन्दीको बल और शस्त्र-कौशलमें सब प्रकारसे अजेय देखकर और पूर्वदिशामें ऊषादेवीका आगम जानकर और अधिक समय तक उससे भिड़े रहना उचित नहीं समझा, अतएव वह उससे किसी तरह पीछा छुडानेकी चिन्तामें लगा। उधर प्रतिद्वन्दी भी घंटोंके परिश्रमके कारण कुछ शिथिल हुआ कि, मौका पाकर उदयसिंहने पीठ फेरदी और पलायाञ्चक्रे! प्रतिद्वन्दीने अब उसका पीछा करना उचित नहीं समझा। और उसी स्थानपर बैठ गया।

ऊषा अपने अरुण होठोंपर मन्द २ हंसी झलकाती हुई आ पहुँची और उस वीर पुरुषका अपने किरणरूपी करोंसे आलिंगन करनेको दौडी।

प्रभात हो गया, अनेक राज्यकर्मचारी इस घटनाकी सुधि पाकर दौडे आये, और मूर्छापन्न बलवन्त और सिपाहीको कैद करके ले गये, वीर पुरुष बड़े सत्कारके साथ नगरमें लाया गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाठक ! यह वीरपुरुष और कोई नहीं, वही राजभक्त पहरेदार है, जिसके साथ बलवंतसिहकी पहले बातचीत हुई थी। और वह आदमी जो बलवंतादिको छुडाकर भागा था, तथा पीछे जो अपनी एक बांह खो बैठा था, एक दूसरा पहरेदार था जिस समय बलवंत और पहले पहरेदारकी बातचीत हो रही थी, दूसरा छुपे हुए दोनोंकी बातचीत सुन रहा था। बलवंतसिहके दिये हुए लालचसे वह अपनी ईमानदारी खो बैठा, और यह राजद्रोह करनेको उद्यत हो गया।

यह पहले पहरेदारकी बदलीपर आया था। क्योंकि, ३ बजे रात्रिके पश्चात् प्रतिदिन इसीका पहरा रहता था। पहले पहरेदारके चले जानेपर इसने अपनी घात लगाई और बलवंतसिहसे छुडा देनेकी बातचीत कही। उसकी बनावटी बोली और धूर्तताको बलवंतसिह नहीं समझ सका। उसने यही जाना कि, यह वही पहरेदार है, जिससे पहले बातचीत हुई थी। मेरा दिखाया हुआ लालच इस पर असर कर गया है। पहलेका नाम वीरसिंह और दूसरे पहरेदारका नाम अजानसिह था।

वीरसिंह अपनी नौकरी पूरी करके घर गया, परन्तु उसे निद्रा नहीं आई उसके हृदयमें बलवन्तसिंहकी धूर्तताका बडा खटका बैठ गया था, और उसका असर इस कारण और भी अधिक हुआ कि अजानसिहका स्वभाव लालची बहुत था, वह इस बातको जानता था कि, यदि बलवन्तसिह उस मंत्रका प्रयोग जो कि मुझपर निरर्थक हुआ है, अजानपर करेगा, तो सचमुच वह अकार्य कर बैठेगा।

जब उसे किसी प्रकार निद्रा नहीं आई, और पूर्व सन्देह बढता ही गया, तब तो वह एक हथियार लेकर कारागृहकी ओर फिर चला वहां जाके देखा, तो जिस कोठरीमें उक्त कैदी थे, उसे खुली हुई और खाली पाई। और कैदियोंके भागनेकी आहट कुछ दूरपर पाई, इसपर तत्काल ही उनकी ओर शक्तिभर दौडा। और इसके पश्चात् जो कुछ हुआ, वह कहा जा चुका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अठारहवां पर्व ।

अनुमान ७ बजे महाराज विक्रमसिंहके दरबारमें दोनों कैदी और वीरसिंह उपस्थित किये गये । कैदियोंके घावोंपर मलहम पट्टियां लगा दी गई थी, और इससे उनका शरीर बहुत स्वस्थ था । इसीप्रकार वीरसिंहके भी जो दो चार घाव लगे थे, उनका इलाज करा दिया गया था इस समय वह अत्यन्त प्रसन्नचित्त दिखाई देता था ।

आज्ञा पाकर वीरसिंहने अपनी बीती घटनाका हाल महाराजसे निवेदन किया, जिसे सुनकर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए । वृद्ध वीरसिंहकी वीरता और ईमान्दारी सुनके समस्त दरबारमें एक अतिशय उल्लास प्रगट होने लगा । बलवन्तसिंहने स्वयं उठकर कहा—

महाराज ! यद्यपि मैं इस समय आपका कैदी हूं, और पुनः इस कैदमें पडनेका कारण वीरसिंह होनेसे वह मेरा शत्रु है, परन्तु शत्रोरपि गुणाः वाच्याः अर्थात् शत्रुके भी गुण वर्णनीय होते हैं, इस नीतिसे मैं वीरसिंहकी प्रशंसा किये विना नहीं रह सकता ! आप धन्य हैं, जिनके यहां ऐसे सच्चे, वीर, धार्मिक और राजभक्त सेवक हैं । ऐसे क्षत्री पुत्रोंके कारण ही यह पृथ्वी भाग्यशालिनी है ।

वीरसिंहको अपने वशमें लानेके लिये मैंने हजार प्रयत्न किये, और बातें बनाई, परन्तु वे सब निष्फल हुई । वीरसिंहका सुदृढ मानस तनिक भी चलबिचल नहीं हुआ, उलटी मुझे ही वह फटकार सुननी पडी, जिसका घाव मेरे हृदयपर अभी तक है । मैं महाराजसे प्रार्थना करता हूं कि, वीरसिंह सरीखे वीरको कोई अच्छा वीरोचित पद दिया जावे । और इस नीचातिनीच अजानसिंहको कोई ऐसा दण्ड दिया जावे जिसे संसारको फिर कभी ऐसा विश्वासघात करनेका साहस न होवे । ऐसे पुरुषोंके प्रसादसे ही बड़े बडे बलशाली राज्य नष्ट होजाते हैं ।

संसारमें राजद्रोह सरीखा कोई पाप नहीं है । थोडेसे धनके लोभमें पडकर जो राज्यकर्मचारी इस तरह राज्यका अपकार करनेको तैयार होजाते हैं, वे बडे कृतघ्न हैं ।

महाराज विक्रमसिंह यह सुनके कुछेक मुसुकुराये और बोले-आपकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्मति माननीय है, जैसा आप चाहते हैं, वैसा ही होगा। परन्तु यह तो कहिये कि, वीरसिंहकी फटकारसे भी आप अजानके अनुगामी क्यों बने ? और इसका दंड आपको क्या दिया जावे ?

बलवन्त—अवश्य ही वीरसिंहकी शिक्षाका मुझपर असर हुआ है परन्तु अपने मालिककी ओर देखके सहसा मुझे अजानका साथी अजान बनना पडा था, जिसके लिये कि मुझे इस समय बडी घृणा हो रही है। उस विषयमें मैं आपका पूर्णतः अपराधी हूं, आप जो चाहे दंड दे, मैं सहनेको तैयार हूं।

महाराज—अस्तु ! आप अपने अपराधके बदलेमें छोड दिये जाते हैं। आप जहां चाहें, वहां स्वतंत्रतासे जासकते हैं, यही आपके लिये दंड है।

बलवन्त—(गद्गद् और नतमस्तक होके) धन्यवाद है ! सहस्र धन्यवाद है ! परन्तु महाराज ! मेरे साथ इतना उपकार और करें कि मैं सेवक बनालिया जाऊं। मैं आप सरीखे नरनाथकी सेवा छोडके अब अन्यत्र नही जाना चाहता। मेरे लिये यही स्वतंत्रता है। यही सब कुछ है।

महाराजने बलवंतसिंहकी प्रार्थना स्वीकार की। बंधनमुक्त होके उन्हें उसी समय दरबारमें उनके योग्य स्थान दिया गया, लोग विस्मित होके महाराजकी ओर देखने लगे। वीरसिंहके लिये आज्ञा हुई कि आजसे ये नौकरीसे विमुक्त किये जावें, और १००) पेंशन मुकर्रर कर दी जावे।

इसके पश्चात अजानसिंहके दंडकी बारी आई, परंतु इसके पहले ही देखा कि, उसका शरीर प्राणहीन होके धराशायी हो गया। लोगोंने समझा, मूर्छा आई, परन्तु यथार्थमें वह उसकी अंतिम मूर्छा थी। अपने किये हुए दुष्कर्मसे उसका हृदय वैसे ही विदीर्ण हो रहा था कि, महाराजकी दया, अपने साथी वीरसिंहकी बडाई और बलवन्तसिंहकी निष्कपटताके तीक्ष्ण दृश्योंने एकके पीछे एक आकर उसे निर्जीव ही कर डाला। अजानसिंह अपनी अज्ञानतासे पश्चातापकी अग्निमें दग्ध हो गये। दरबारके सम्पूर्ण सभ्योंके चित्तपर इस दृश्यका बडा असर हुआ। महाराजका चित्त दयासे आर्द्र हो गया। दुःखी होकर वे दर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बार बरखास्त करके शीघ्र ही अन्तपुरमें चले गये । लोग हर्ष विषाद करते हुए अपने अपने स्थानपर गये ।

उन्नीसवां पर्व

क्रोधमें उन्मत्त हुए रतनचन्दने बेहोश रामकुंवरि और हीरालाल को पलंगसे जकडके बांध दिया और चाहा कि, होशमें लाकर इनकी खूब खबर लूं, परंतु तत्काल ही उसका वह भीषण क्रोध वैराग्यके शीतल विचार-प्रवाहसे शांत हो गया । उसके फडकते हुए होंठ स्थिर हो गए, नेत्रोंकी लालिमाका परिवर्तन हो गया चढी हुई भोंह कमान वक्रत छोडके सीधी होगई और कांपता हुआ सारा शरीर क्षणभरके लिये स्तंभरूपमें स्थिर हो गया, हृदयमें शान्तरसका समुद्र लहरें लेने लगा । सा थोडी ही देरमें रतनचन्दके मुंहमेंसे निकाल पडा, " जब असार संसारमें रहना ही नहीं है, तो यह विडम्बना किसलिये करूं ? इन दुष्कर्मों के वशमें पडे हुए दीन जीवोंको व्यर्थ हीं क्यों कष्ट पहुंचाऊं ? उन्हें मारनेसे मुझे क्या लाभ होगा ? और अब वे मेरे हैं ही कौन ? कोई नहीं । पाठक ! ये उस शांतरसके गम्भीर समुद्रकी तरलतरंगोंका मनोहर नाद था, जो रतनचन्दके हृदयमें प्लावित हो रहा था । पापपूर्ण निंद्य ससारमें ऐसे सुन्दर शब्द बहुत थोडे भाग्यवान् सुन सकते हैं ।

आगे रतनचन्दका कोमल हृदय रामकुंवरि और हीरालालको देखकर करुणासे परिप्लावित होने लगा । वह सोचने लगा, हाय ! ये बेचारे दीन प्राणी कर्मोंके चक्करमें पडे हुए कैसे २ घोर अनर्थ करते हैं, और अपने अनन्त शक्ति शाली स्वरूपको भूले हुए हैं । इन्हें यह भी ज्ञान नहीं है कि हमारा हित क्या है, फिर हितरूप प्रवृत्ति करना तो दूरकी बात है ।

बेचारोंने बडे कष्टसे अनन्तकाल भ्रमण करते २ यह मनुष्यजन्म पाया था, परन्तु इसमें भी ये अपना कल्याण न कर सके, और अब दुष्कर्ममें मग्न हो रहे हैं, न जाने ये कब ठिकाने लगेगे । बेचारे क्या करें, स्वयं कुछ ज्ञान नहीं रखते और सच्चे उपदेशोंका साधन नहीं है, इससे मार्ग भूले हुये हैं । जी चाहता है कि, कुल उपदेश देकर इन्हें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार्गमें लानेकी चेष्टा करूं, परन्तु ऐसा न हो कि उसका इनपर उलटा असर पडे, क्योंकि "पित्तज्वरवतः क्षीरं तिक्तमेव हि भासते" सो यह भी असाध्य रोगी जान पडते हैं,इन्हें मेरा एक २ शब्द कडुआ लगेगा।

अतएव अब इन्हें इनके भाग्यपर छोडके अपना कल्याण करना चाहिए। रात्रि थोडी ही बाकी रह गई है, और इसके पहले ही मुझे कंचनपुर छोड देना है, सो अब शीघ्रता करना चाहिये। ऐसा सोचकर रतनचन्द अपराधिओंको वहीं छोडकर एक पृथक् कोठरीमें गया, जहां लिखने पढनेका सामान रक्खा रहता था। वहां जाकर उसने तीन चिट्ठियां और एक वसीयतनामा लिखा पहली दो चिट्ठियां रामकुंबरि और हीरालालके नामकी थीं उन्हें उसने दोनोंके सिराहने रखके हवेली को चारों तरफसे बन्द करके ताला लगा दिया, पश्चात् सीढ़ियोंसे नीचे उतरकर एक ओर चलदिया। इस समय भी उसका वही वेष था जो उसका इस घरमें प्रवेश करते धारण किया था।

घरसे निकलकर रतनचन्द गलियोंमेंसे होता हुआ अपनी दूकान पर पहुँचा और जीनेसे चढके वहां गया, जहां जयदेव सोता था। यह वही जगह थी,जहां उस दिन हीरालालके हाथोंसे जयदेवकी जान बचायी गई थी। जयदेव भीतरसे सांकल दिये हुए गहरी निद्रा ले रहा था उसे खबर नहीं थी कि, आज मेरा सच्चा हितैषी अन्तिम विदाई लेनेको आया है। कमरेकी एक खिडकी खुली हुई थी, रतनचन्दने उसीमेंसे वह वसीयतनामा, चिट्ठी और चाबियोंका गुच्छा एक रूमालमें लपेटकर भीतर फेंक दिया और बडी देरतक जयदेवके उघडे हुये निष्कलंक मुखको देखकर एक लम्बी सांस लेकर वहांसे चल दिया।

दिन निकल आनेके भयसे उसने बडी शीघ्रतासे उस अमराईकी ओर गमन किया, जहां घोडा छोड दिया था। जाकर देखा तो स्वामी भक्त घोडा जहांका तहां खडा है, और अपने स्वामीके आनेके मार्गको देख रहा है। रतनचन्दने पास पहुंच पुचकारके उसकी पीठपर हाथ फेरा और फिर सवार होके एक जङ्गलकी ओर उसे दौडाया। सवेरा होते २ रतनचन्दको कंचनपुरसे बहुत फासले पर उसने पहुंचा दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रतनचंदके घरसे निकलते ही रामकुम्वरि और हीरालालकी वेहोशी दूर हुई, तो उन्होंने अपनेको वेबशीकी हालतमें पलंगसे जकडे हुए पाया, चारों तरफके किवाड वन्द थे, भयके मारे कपकम्पी लगने लगी दोनों एक दूसरेके मुंहको ओर देखके अपनी २ चेष्टासे अपने दुष्कर्म की ओर घृणा और वेबशीपर दुःख प्रकाश करने लगे। परंतु लज्जा, दुःख और भयके मारे दोनोंके मुंहसे एक शब्द भी न निकला। इतने में सवेरा हुआ, झरोखोंमेंसे सूर्यका प्रकाश आने लगा। समदृष्टि सूर्य-देव पापी और पुण्यात्मा दोनोंके घरोंकी ओर एक रूपसे अपने कर (किरण) फैलाते हैं, इस बातका परिचय उसी दिन मिला। एक ही साथ दोनों पामरोंकी दृष्टि अपने २ सिरानेपर पडी हुई चिट्ठीयोंपर गई, दोनों मन ही मनमें उन्हें बांचने लगे। चिट्ठियोंमें लिखा था:—

रामकुम्वरि,—

तेरा अनन्त उपकार मानना चाहिये, जो तेरे कारणसे मुझे आज इस गृह जंजालसे छुट्टी मिली। स्त्रियां ऐसी ही होनी चाहिये, जिनसे उनके पति इसघोर विपत्तिसे मुक्त होनेके सम्मुख होजावें। मैं तुझे अपनी आखोंसे तृप्त होकर देखे जाता हूं, सो अब पुनर्दर्शनकी लालसा नहीं रहेगी मैं तेरी कृतिका फल दिये विना ही जाता हूं, इसमें आश्च-र्य नहीं करना। क्योंकि मेरा चित्त अब ऐसे ही मार्गपर लग गया है।

तू अपने दुर्लभ मनुष्य जन्मका दुरुपयोग कर रही है, इस बातका खेद है सो यदि होसके तो, मेरी इस बातपर विचार करना कि, सुख का मार्ग कौनसा है। अधिक कुछ नहीं, क्षमाभाव रखना।

रतनचंद

हीरालाल,—

दुर्लभ मनुष्य जन्मरूपी हीरा, हाय! हाय! तूने कौडीके बदलेमें दे दिया जौहरीका पुत्र होकर तू ऐसी भूल कर बैठा जो एक घसकटा भी नहीं कर सकता। तुझे ऐसी भिखारी अवस्थामें मैं अब नही देखना चाहता इसलिये आज अन्तिम··· है। होसके, तो फिरसे उसके पानेका प्रयत्न करना। इत्यलम्।

रतनचंद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिट्ठियोंके पूरे होते २ दोनोंकी अजीब हालत हुई । अभीतक तो वे जानते थे कि, यह कोई दैवी कोप है, अथवा किसी शत्रुने हमको गिरफ्तार किया है, परतु चिट्ठियोंपर रतनचंद्रकी सही देखते ही उनकी घबराहटका ठिकाना न रहा। खेटपुरको गये हुए जिस रतनचन्द का उन्हें स्वप्नमें भी स्मरण नहीं था और जिसे वे सर्वथा भूलकर निश्चित हो दुराचारमें प्रवृत्त हुए थे, उसीको उन्होंने चिट्ठीके रूपमें सम्मुख देखकर उस घटनाका अनुभव किया, जिसे दावाग्निसे तीन ओरसे घिरे हुए मृग समूह चौथी ओरसे आते हुए सिंहकी भीषण गर्जनाको सुनकर करते हैं। खेद है कि, रतनचंदकी सरल और शिक्षाप्रद चिट्ठियां जिनमें किसी प्रकारके भयकी सम्भावना नहीं थी, पापियों को पापयुक्त दृष्टिमें बडी भयंकर दिखलाई देने लगी। नाना प्रकारकी चिन्ताओं में उनके प्राण सूख गये।

उधर सूर्यदेवने हंसते हुए जयदेवके कमरेमें भी प्रवेश किया, खुले हुए झरोखेमेंसे उन्होंने अपने कर फैलाकर जयदेवको मानों यह कहते हुए जगाया कि, उठो, संसारकी कुछ और भी विचित्रता देखो, और होसके तो उससे कुछ शिक्षा प्राप्त करो। जयदेव पंचनमस्कार स्तोत्रका पाठ करता हुआ शय्यासे उठ बैठा, और क्षणभर को नेत्र बंद करके ध्यानस्थित हो उसने कमरे में चारों तरफ अपनी दृष्टि फेंकी झरोखेके पास ही पडे हुए रूमालको उसने विस्मित होकर उठा लिया और उसमें लपेटी हुई चिट्ठियोंको बडी आतुरतासे बांचना शुरू किया। पहली चिट्ठीमें यह लिखा हुआ था:—

प्रिय जयदेव,—

कालकी गति विचित्र होती है। कल क्या होगा, सो कोई नहीं जानता। तुम मुझसे बिदा लेना चाहते थे परंतु आज मैं तुमसे ही बिदा लेता हूं. जी चाहता था, कि तुमसे एकवार और मिलूं परंतु कई बातें सोचकर न मिलसका। और अब मिलनेकी भी क्या आवश्यकता है। मैं आज सब दुःखोंसे छूटकर सुखके मार्गमें प्रवेश करता हूं तुम्हें इस बातसे कुछ परिताप होगा, परन्तु नहीं, तुम बुद्धिमान् और दूरदर्शी हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमार्थ दृष्टिसे देखोगे, तो निश्चय ही प्रसन्न होओगे। मैं आज उस मार्गमें पैर रखता हूं, जिससे यह दुर्लभ मनुष्य जन्म सफल होता है, और जहांसे जाने में फिर बार २ लौटना नहीं होता।

दूरदर्शी जयदेव!—एकाएक मैंने ऐसा क्यों किया, इसके जानने के लिये तुम्हारा चित्त उद्विग्न होगा, अतः मैं भी उसे छिपाना नहीं चाहता। कल मैं खेटपुर नहीं गया। मार्गसे लौटके आया और एक अम्राईमें चिंतामें पडे २ दिन पूरा किया, रात्रिको मेरी इच्छा अपने घरके चरित्रको देखने को हुई, और प्यारे जयदेव! जिस चरित्रके देखनेका कोई स्वप्नमें भी विश्वास नहीं कर सकता, उसे मैं अपनी आंखो से देख भी चुका। पापकी सीमा देख चुका, लोकमर्यादा और धर्मको सम्मुख भस्म होते देखचुका, और देखचुका सम्पूर्ण ससारको सर्वथा अजानांधाकारमें आविभूंत। सो अब यहां (संसारमें) एक घडी भी कल नहीं पड़ती, बहुत जल्दी तारणतरण श्रीगुरुदेवकी चरण शरणको प्राप्त होता हूं।

मैंने क्या देखा, उसे लिखके इस पत्रको घृणास्पद और कलङ्कित नहीं बनाना चाहता हूं, तुम स्वयं सब कुल देख और समझ लोगे। वह चाबियोंका गुच्छा तुम्हें सौंपे जाता हूं और साथ ही एक वसीयतनामा लिखे जाता हूं कि, आजसे मेरे घरके तुम सब प्रकारके स्वामी हुए। अपना उत्तराधिकारी बनाने लिये मैं तुमसे अधिक सुयोग्य किसीको नहीं देखता। मेरे परिश्रमसे कमाये हुए धनके भोगनेका पात्र मैं तुम्हें ही समझता हूं। यह धन तुम जैसे सदाचारी, धर्मात्मा और विचारशील पुरुषके हाथमें पडकर अवश्य ही सन्मार्गमें लगेगा. यह निश्चय है।

वसीयतनामेमें जिस धनका अधिकार तुम्हें दिया है, उसके सिवाय मेरी खास तिजोरीमें कुल रुपया नकद रक्खा है, उसके विषयमें मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि, वह किसी ऐसे कार्यमें लगाया जावे, जिससे सद्धर्मकी सच्ची प्रभावना और सच्चा दान हो।

मैं जाता हूं, परन्तु मेरे लिये तुम खेद नहीं करना। अब मैं अपने आत्माको और मलीन नहीं रखना चाहता। सर्व जीवोंके प्रति मेरा मैत्री-भाव है। मेरे हृदयमें यह श्लोकार्ध बार बार उठा करता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"कदाऽहं समभविष्यामि पाणिपात्री दिगम्बरः।" इत्यलम्।

तुम्हारा हितैषी
रतनचंद

इस चिट्ठीके बांचते ही जयदेवकी आंखोंके सामने अंधेरा छा गया और वह इसका कुछ भी निश्चय नहीं कर सका कि, अब मुझे क्या करना चाहिये। चिट्ठीमें लिखी हुई घटनाके आभासको आंखोंसे देखनेके लिये एकाएक घरसे निकल पडा। हवेलीके पास जाकर देखा तो चारों तरफसे किवाड बंद हैं और ताले पडे हुए हैं। उन्हें देखकर जयदेव बडे संशयमें पडा कि हे विधाता! यह क्या लीला है? आज क्या हुआ? रामकुम्वरि कहां चली गई? किवाड़ किसने बंद किये? क्या सेठजीकी चिट्ठीका यही अर्थ है?

इस प्रकार बहुतसे प्रश्न मनमें ही करके जयदेवने उन सबका उत्तर पानेके लिये हवेलीका मुख्य द्वार खोलकर रतनचन्दके सोनेके कमरेमें प्रवेश किया और देखा कि रामकुम्वरि तथा हीरालाल दोनों एक पलंग से जकडे हुए पडे हैं। और दोनोंके सिराहने अपनी चिट्ठीकी नाईं रतनचंदकी कमलसे लिखा हुआ एक २ कागजका पुर्जा पडा हुआ है। उन्हे इस अवस्थामें देखते ही, जयदेव अपनी चिट्ठीका आशय साफ समझ गया।

हाय! अब न जाने ये दुष्ट हम लोगोंके साथ कैसा वर्ताव करेगा। क्या हमारे दुष्कर्मोंकी खबर इसको भी लग चुकी? और वे (रतनचंद) इसीको सब अधिकार सोंपके चल दिये हैं? यदि ऐसा हुआ तो बडी कठिनता हुई हमने इसके साथ कभी भलाईकी इच्छा नहींकी है, सदा इसके मार डालनेकी तथा घरसे निकलवा देनेकी चिन्ता की है। तब फिर इससे छुटकारा पानेकी कैसे आशाकी जा सकती है? अफसोस! हमारे ऐशोआरामके दिनोंमें धूल पड गई और अब ये जब हमारे कृत्यको प्रगट करेगा तब हम कैसे किसको मुंह दिखावेंगे? उन दोनों दुराचारियोंके हृदयमें ऐसे भयानक विचार आ आके डराने लगे और उनका शरीर फिर कम्पायमान होने लगा। जयदेव क्षणार्ध उनके सामने स्तब्ध खडा रहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीसवां पर्व।

विलासपुरके राजभवनके समीप ही एक कन्यापाठशालाकी इमारत है। यह इमारत यद्यपि बहुत बडी नहीं है, परन्तु देखनेमें बडी सुडौल और साफ है। इसके चारों तरफ एक सुन्दर बगीचा लगा हुआ है, जिसमें नाना प्रकारके सुगन्धियुक्त पुष्प खिल रहे हैं। यह बगीचा एक परकोटेसे घिरा हुआ है। भीतर जानेके लिये परकोटेमें एक द्वार है, वहां पर निरन्तर दो पहरेदारोंका पहरा रहता है। द्वारमेंसे भीतर जाते ही पाठशालाका मुख्य द्वार मिलता है। वहां पर एक षट्कोणा कृति चबूतरा बना हुआ है, जिसके बीचोंबीच एक संगमर्मरके पत्थर पर बडे बड और सुन्दर अक्षरोंमें यह लेख खुदा हुआ है।

नमः सरस्वत्यै।

श्री सरस्वती पाठशाला।

विलासपुरके स्वामी महाराजाधिराज १०८ विक्रमसिंहजीकी बुद्धिमती पुत्री सरस्वती (सुशीला) ने कुलीन कन्याओं और स्त्रियोंके पठनपाठनके लिये और उन्हें विद्याके आभूषणसे यथार्थमें सुन्दर बनानेके लिये इस पाठशालाकी स्थापना की है। बिलासपुर राज्यका जबतक संसारमें अस्तित्व रहेंगा, तबतक यह पाठशाला श्रीजैनशासनके प्रसादसे परिचालित रहेगी।

श्रीरस्तु। शुभमभूयात्।

कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा।

पाठशालामें प्रवेश करते ही पहले मुख्य अध्यापिकाकी कक्षा मिलती है। इस कक्षाका कमरा बडी सुन्दरतासे सजाया हुआ है। सब प्रकारकी मनोहर आरायशके अतिरिक्त इसकी दीवालों पर जो चित्र खिंचे हुए हैं, वे स्त्रियोंके चित्तों पर एक विचित्र ही प्रकारका असर करते हैं। सीता, मनोरमा, गुणमाला, द्रौपदी, अन्जना सुन्दरी आदि पवित्रता स्त्रियोंके चित्र चित्रकारने इस खूबीसे चित्रित किये हैं, कि उनके दर्शनमात्रसे उन पवित्रा पावना दिव्यङ्गनाओंका पूरा चरित्र सम्मुख होकर नृत्य करने लगते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नराधम रावणका वह अनुभव और पूजनीया सीताकी वह घृणा-युक्त फटकार जो साम्हनेके चित्रमें झलक रही है, किस स्त्रीके चरित्रको आदर्श न बनावेगी ! नृकीट कीचकके पैशाचिक कृत्यका प्रतिफल और द्रोपदीके उस प्रातःस्मरणीय शीलकी रक्षा किसे दुष्कृत्योंसे पराङ्मुख और सत्कार्योंके सम्मुख न करेगी ? अहा, हा ! मनोरमाका वह वैजयन्ती नगरीके फाटक खोलनेका दृश्य कैसा शिक्षाप्रद है। मनोरमाके पातिव्रतकी वे दुःसह प्रभायें जो उसके मुखमण्डल पर प्रस्फुटित हो रही हैं और नगरकी सहस्रावधि स्त्रियोंकी पापपूर्ण मलीन मुद्रायें जो श्रेणीबद्ध दिखाई दे रही हैं, एकबार ही चित्तको पतिव्रत—भक्त और दुश्चरित्र—त्यागी बना देती हैं। प्रत्येक चित्रके नीचे चित्रके कथा विषयका संक्षिप्त रीतिसे उल्लेख किया गया है, उससे चित्रका भाव समझनेमें बडी सहायता मिलती है। चित्रोंके ऊपर जो स्थान अवशेष है, उनमें सैकडों स्त्रियोपयोगी शिक्षायें लिखी हैं।

कहा जा सकता है कि इस पाठशालामें अन्य कुछ न पढ़कर केवल उन शिक्षाओंको हृदयमें धारण कर लेनेसे ही प्रत्येक कन्या और स्त्री सुयोग्यगृहणी बन सकती है। अपने पाठक और पाठिकाओंकी प्रसन्नताके लिये उन शिक्षाओंके कुछ वाक्य यहां उद्धृत किये जाते हैं।

१—संसारमें समाजरूपी शकट [गाडी] दुनियान्त्रित पद्धतिसे तब ही चल सकता है, जब उसके पुरुष और स्त्री रूपी दोनों चक्र एक सरीखे सुदृढ़ और सदाचारी होवें।

२—जैसे पुरुषका विद्वान् होना आवश्यक है, उसी प्रकार किंबहुना उससे भी अधिक स्त्रीका विदुषी होना आवश्यक है। क्योंकि स्त्री पुरुषकी जननी है। विदुषी माताका पुत्र अवश्य ही विद्वान् होता है।

३—बालकोंमें अनुकरण करनेकी शक्ति बहुत तीव्र होती है। विदुषी माताका पुत्र अपनी माताके सम्पूर्ण सद्गुणोंका अनुकरण करके जगत्मान्य हो जाता है।

४-गृह [घर] वही है, जिसमें सदाचारिणी और विदुषी गृहिणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[घरवाली] हो, काष्ट मिट्टीके ढेरको गृह नहीं कहते हैं।

५—स्त्रीकी शोभा पातिव्रत है, और उस पातिव्रतकी सच्ची पालना तबतक नहीं हो सकता, जबतक कि, वह सुशिक्षिता विद्यावती न हो। अतएव पतिव्रत धर्मसे सुशोभित होनेके लिये स्त्रीका विद्या पढना मुख्य कर्तव्य है।

६—शीलरत्नको जो स्त्री अपने हृदयमें धारण किये हैं, उसे संसारके अन्य चमकते हुए रत्नोंके आभूषणोंकी आवश्यकता नहीं है।

७—उस रति-रंभाके रूपको जीतनेवाली स्त्रीसे जो कि पर पुरुषरत है, वह कुरूपिनी, दरिद्रा, भिखारिणी हजारगुणी अच्छी है, जो कि अपने पतिको ही अपना सर्वस्व समझती है।

८—विचार दृष्टिसे देखा जावे। तो स्त्रीके लिये पतिसेवाके अतिरिक्त और कोई व्रत उपवासादि महत्फल प्रद नहीं है जो स्त्री पतिव्रता है, उसके संपूर्ण व्रतोंका पालन स्वय होजाता है, परन्तु जो दुराचारिणी है, वह नाना व्रत उपवास करती हुई भी दुर्गतिकी पात्र होती है।

९—स्त्री का परम सुन्दर आभूषण लज्जा है।

१०—सदाचारिणी स्त्रियां स्वतन्त्रताका तिरस्कार करती हैं। वे बालापनमें पिताके, युवावस्थामें पतिके और वृद्धकालमें पुत्रोंके आधीन ही रहती हैं। वह पारतंत्र्य स्त्रियोंके शील रक्षाका अजेय किला है।

११—स्त्रीको एक शरीरसे दो जन्म धारण करने पडते हैं। जिस दिन पतिके घरमें प्रवेश होता है, स्त्रीके द्वितीय जन्मका वही पहला दिन है। पहले जन्मकी शिक्षा दूसरे जन्ममें उसे सुखी और यशस्वी बनाती है। दूसरा जन्म बडी सावधानी से अतिवाहित करना चाहिये।

१२—अपने पतिके प्रत्येक कार्यमें जो मंत्रीका काम देती है, सेवा करनेमें जो दासीके समान है भोजन करानेमें जो माताका भाव धारण करती है। शय्यामें जो रम्भाके तुल्य सुखदायिनी है। पृथ्वीके समान जिसमें क्षमा है और जो सम्पूर्ण गृहको धर्ममार्ग पर चलाती है। वही स्त्री-स्त्री है।

१३—पतिके प्रत्येक आचार, विचार और शरीरकी व्यवस्था जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहस्र नेत्रोंसे देखती है परन्तु परपतिकी ओर देखनेमें जो नेत्रशक्तिहीन है वही स्त्री सदृशी है।

१४—स्त्रियोंके नष्ट होनेके सात द्वार हैं। पिताके घर स्वतंत्रतासे रहना मेलोंमें जाना परपुरुषोंके साथ वार्तालापका सम्बंध रखना पतिक निरन्तर विदेशमें रहना पुंश्चली संगति रखना अक्षरशत्रु रहना और पतिका बुढ़ापा।

१५—द्रोपदी, सीता, अंजनासुन्दरी, मनारमा, सुलोचना आदि जितनी पुराणप्र सिद्ध सच्चरित्र स्त्रियां हुई हैं, वे पढ़ी लिखी पंडिता थीं, अतएव कहा जा सकता है कि, स्त्रियोंको सच्चरित्रा बनानेमें निर्मल विद्या एक कारण है।

१६—जबतक स्त्रियां शास्त्र विहित श्रावक कर्मोंको अर्थात् गृहस्थके आचार विचारोंमें दक्ष नहीं होगी, तब तक पुरुष अपने धर्मकी भली-भांति रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सकते।

१७—स्त्रियां स्वभावतः पंडिता होती हैं। उनके कोमल कमनीय हृदयपर सद्विद्या बहुत शीघ्र अपना अधिकार जमा लती हैं। स्त्रियोंको धर्मशिक्षा देना गृहस्थ धर्मका जीवन है।

१८—स्त्रीका अपने धर्मसे एक वार ही पतित होना असह्य, अक्षम्य, और कुलविप्लवकर है, इसलिये उसे अपने धर्ममें स्थिर रहनेके लिये अपने प्राणोंसे भी अधिक सचेत रहना चाहिये।

१९—क्षणभरके सुखके लिये कामांध होकर जो स्त्रियां पतित हो जाती हैं, वे अपनेको अपने हाथसे एक बडे भारी भयानक समुद्रमें पटक देती है। नरकोंके घर दुखोंमें उन्हे अनेक सागर पडे पडे विल-बिलाना पडता है।

२०—स्त्रीकी पर्याय स्वभावसे ही निंद्य और पामर कही जाती है, परन्तु वह तद्विद्या, सदाचार, और सुशीलतासे जगद्वन्द्य और परमप-वित्र भी मानी गई है। पुराणप्रसिद्ध स्त्रियोंका लोग आज आदर दृष्टिसे नामोच्चारण करते हैं।

मुख्य कक्षाके कमरेमें जो कुछ सजावट है, वह इतनी अच्छी और अधिक है कि उसका वर्णन जितना किया जावे किसी प्रकार अरुचि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर नहीं हो सकता, परन्तु हमारी दृष्टिपर इन शिक्षाओं और सुन्दर दृश्योंके आगे वह सजावट कुछ प्रभाव न जमा सकी।

इस कमरेको अतिवाहित करके आगे चलनेसे एक प्रदर्शनीका कमरा मिलता है, जिसे देखते ही आंखे ठण्डी हो जाती हैं स्त्रियोंके हाथसे बनाये हुए नाना प्रकारके खिलौने, उनके वस्त्र, चित्रकारीके नमूने, यथास्थान रक्खे हुए हैं। स्थान स्थानपर सुन्दर-दर्शनीय वर्णमाला-संगठित हाथकी लिखी हुई पोथियां रक्खी हुई हैं। ये पोथियां भी विद्यार्थिनी बालागणोंकी लिखी हुई हैं, और उनमें विशेषत: पुराण प्रसिद्ध पतिव्रता स्त्रियोंके चरित्र लिखे गये हैं। जिन बालाओंने अपनी लेखनकलामें पारितोषिक प्राप्त किया है, यहां उन्हींकी पोथियोंको स्थान मिला है। एक पोथीके मुखपृष्ठपर लिखे हुए थोड़ेसे वाक्य हमको बहुत प्यारे लगे।

"स्त्रीसे जगत्पूज्य सर्वज्ञदेव उत्पन्न होते हैं। सर्वज्ञदेव तीर्थंकरसे मोक्षमार्गका प्रकाशक परम हितकारी शास्त्र उत्पन्न होता है। शास्त्रसे संसारके पापसमूह नष्ट होते हैं और पापोंके नाश होनेसे बाधारहित सुखकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार परम्परागत मोक्षसुखकी देने-वाली सदाचारिणी कुलीन स्त्रीको पवित्र जानके सज्जन स्वीकार करते हैं।"

प्रदर्शनीके कमरेके आगे एक कमरा पाक-विधि [रसोई] और सामान्यत: कुटुम्बोपयोगी वैद्यक और धात्रीविद्या सिखलानेका है। यहां केवल वे स्त्रियां शिक्षा पाती हैं, जो प्रौढवयकी तथा अनुभवशीला हैं।

इसके आगे अन्य भागोंमें शेष कक्षायें हैं, जिनमें उत्तीर्ण होकर कन्या तथा स्त्रियां उपर्युक्त मुख्य कक्षामें प्रवेश करती हैं। प्रत्येक कक्षामें एक एक अध्यापिका है। अध्यापिकाओंमें कुछ तो कुलीन घरोंकी प्रौढ़वयस्कार स्त्रियां हैं, जो निपत समयके लिये परोपकार बुद्धिसे पढानेको आती है, और कुछ ब्रह्मचारिणी साध्वी स्त्रियां हैं, जो आर्यिकाधर्म स्वीकार करनेके सन्मुख हैं।

श्रीमती सुशीला इसी पाठशालाकी मुख्य कक्षामें पढती हैं और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय मिलनेपर अन्य कक्षाओंकी कन्याओंको पढ़ातीभी है। दिन रात उसका ध्यान इसी पाठशालाकी वृद्धिकी ओर रहता है, पठन-पाठनके अतिरिक्त उसकी स्फटिक तुल्य निर्मल बुद्धिमें अब लों किसीभी दूसरे रंगकी परछाई नहीं पकडी है। लोग कहते हैं, यह कोई देवकन्या है।

इक्कीसवां पर्व।

जगत्प्रकाशक सूर्यदेव अपने समग्र दिनका प्रवास पूर्ण करके अस्ताचलकी गुहाओंमें विश्रांति पानेके प्रयत्नमें थे। जैसे कोई पुरुष प्रयासके परिश्रमसे अत्यन्त व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार चार-पहर अखण्ड प्रवासके श्रमसे पीडित प्रभाकर एक लाल रङ्गके गोलेके समान दिखाई देते थे और संकेतसे संसारी जनोंको उपदेश देते थे, कि जैसे मैं अपने कार्यमें सदैव तत्पर रहके परिश्रम करता हूं, और विश्रांति पाकर पुनः कर्ममें प्रवृत्त हो जाता हूं, उसी प्रकार तुम्हें भी करना चाहिये, अर्थात् आलस्यको छोड देना चाहिये।

इस समय एक प्रौढ़ वयका पुरुष एक वृक्षकी डालसे घोडेको बांधे हुए उसकी छायामें जिनके सहारे बैठा हुआ है। वह पुरुष ५० को उल्लंघन कर चुका है, परंतु उसके सुदृढ शरीर, काले केश और रक्तवर्ण मुखमण्डलको देखकर कह सकते हैं, कि, अभी वह ४० से बहुत पाछे है। उसके साम्हने एक काला हरिण बाणोंसे विद्ध हुआ अचेतन अवस्थामें पडा है, उस बेचारेके मुंहमें घासके कुछ तृण उलझे हुए हैं। बडा विस्तृत जंगल है, बडो बडा पर्वतमालाये सुदूरतक पैर फैलाये पडी हैं, इतस्ततः जंगली जानवर अपने भयानक शब्दोंसे चित्तको उद्विग्न कर रहे हैं।

संध्याकाल पूर्वकी ओरसे दौडा आ रहा था, वृक्षलतापताओं पर शनैः २ उसका अधिकार हो रहा था, कि, उसके साथ ही एक नवयुवक शुभ्रवस्त्र धारण किये हुए आया और उस प्रौढ़ पुरुषके सम्मुख आके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खडा हो गया। इस आगन्तुककी वय अधिकसे अधिक अठारह वर्षकी होगी। मुखपर स्मश्रुओंकी रेखा आ रही थी, उन्नत मस्तक और गम्भीर मुखमुद्रासे जान पडता था कि, यह कोई परम विद्वान् क्षत्रिय-युवा है।

इस युवाको साम्हने खडा देखकर जीनका सहारा छोडके पूर्वोल्लिखित पुरुष बैठ गया और उसने पास ही पडे हुए कम्बल पर बैठनेके लिये युवासे कहा। युवा विनयपूर्वक बैठ गया और बोला, क्या मैं आपका परिचय पा सकता हूं? जान पडता है, आप कोई क्षत्रियश्रेष्ठ हैं। प्रौढ पुरुषने कहा, मैं विलासपुरका राजा हूं। मेरा नाम विक्रमसिंह है। मैं आज विलासपुरसे आखेटके लिये निकला था, परन्तु इस हरिणका पीछा करनेसे सम्पूर्ण साथियोंको छोडकर इस जंगलमें आ फंसा हूं। मार्गका पता नहीं लगता, प्यास के मारे बडी विकलता हो रही है। देखिये! वह घोडा भी जीभ निकाल रहा है। "अब कर्तव्य क्या है" यही सोच रहा था कि, आप अचानक आ पहुंचे।

युवा—(आखेटकी बातसे जो घृणा हुई थी, उसे दबाकर) तो आप थोडी देर यहां ठहरें। पास ही एक जलाशय है, मैं आपके लिये वहांसे जल लिये आता हूं। आपकी विकलतासे मुझे दुःख होता है।

विक्रम—नहीं! आपको कष्ट उठानेकी आवश्यक्ता नहीं है, मैं स्वयं वहां चलूंगा; आपकी इतनी ही सहायता बहुत है कि, जलाशय बतला दें।

ऐसा कहकर विक्रमसिंह वहांसे उठ खडे हुए और घोडेकी बाग पकडके धीरे धीरे आगत युवाके साथ एक ओरको चल पडे, जहांसे कि, वह युवा आया था। थोडी देर चलने पर एक टीलेका उलंघन करते ही कुछ दूरीपर हरियालीकी आभा दिखलाई दी, जिसके दर्शन मात्रसे विक्रमसिंहका चित्त हरा हो गया। आगे वही हरियाली एक सुन्दर बगीचेका रूप धारण करके दिखलाई देने लगी जिसके कि, बीचमें एक छोटासा सुडौल बंगला बना हुआ था। बंगलेके मस्तकपर एक ध्वजा फहरा रही थी जिसमें स्पष्ट और सुन्दर अक्षरोंमें "अहिंसा परमो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म" का सिद्धांत लिखा हुआ था। विक्रमसिंहने उसे बड़े ध्यानसे बांचा, और कुछ संकुचित होके अपने पीछेकी ओर देखा।

बगीचेके द्वारपर पहुचते ही कुछ आगे बढकर युवाने आवाज दी, जिसे सुनते ही दो तीन सेवक आ गये। फाटक खोल दिया गया और इशारा पाकर एकने महाराजके घोडेको थाम लिया, दूसरेने दो तीन कुर्सियां लाकर बाग के बीच में डाल दीं। युवा और विक्रमसिंह दोनों उन पर बैठ गये। नाना प्रकारके सुगन्धित फूलोंका सौरभ ले लेकर बाग का समीर अपने अतिथिका स्वागत करने लगा। एक सेवक आकर पंखा झलने लगा और दूसरा कुछ थोड़ेसे मेवे फल और शीतल जलकी एक झारी सामने रख के चला गया।

युवा—राजन्! आप सब दिनके थके हुए हैं। इस समय यदि एकाएक जल पियेंगे, तो हानि होगी। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि, इस समय थोड़ेसे मेवे और फलादि खाकर ही आप तृप्ति लाभ करें, जलपान पीछे करें।

विक्रम०—इस समयमैं आपका बहुत आभारी हूं, परन्तु इसके पहले कृपा करके यदि कुछ हानि न हो, तो आप अपना परिचय दे देवें।

युवा—हां! राजनीतिके अनुसार तो यह अवश्य है कि, राजा लोग सदा सशंकित—चित्त रहके कार्य करें। क्योंकि "हृदयं च न विश्वास्यं राजभिः किं परो नरः" अर्थात् राजाओंको अपने हृदयपर भी विश्वास नहीं करना चाहिये, दूसरे पुरुषोंकी तो बात ही क्या है? परन्तु यहां आप वह चिन्ता छोड दें। यह स्थान आपके लिये सब प्रकारसे निर्विघ्न है। मैं आपके शुभचिंतक विजयपुर राज्यके एक वणिकका पुत्र हूं। मेरे पिताका नाम श्रीचन्द्र है और लोग मुझसे जयदेव कहा करते हैं। यह बंगला मैंने अपने चित्तको बहलाने और विद्याभ्यास करने के लिये बनवाया है बस! यही मेरा सामान्य परिचय है।

विक्रम०—नहीं! शंकाकी कोई बात नहीं थी। तुम्हारे जैसे सौम्याकृति सुशील पुरुषको देखते ही वह राजनीतिकी बात कोसों दूर भाग गई थी। परन्तु परिचय पाये बिना प्रेमबन्धन दृढ नहीं होते, इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेतु सहज स्वभावसे पूछ लेना ही मैंने योग्य समझा। और अपने उपकारीका परिचय पा लेना, है भी तो उचित। अच्छा तो अब तुम्हें भी इस प्रसादमें मेरा साथ देना चाहिये।

जय०—राजन! आप क्षुधित हैं, तृषित हैं और इस समय मेरे अतिथि हैं, इसलिये आपको इतना संकोच करनेकी आवश्यकता नहीं थी। परन्तु जब आपका आग्रह है, तो मैं उसको अमान्य भी नहीं कर सकता। लीजिये!

ऐसा कहकर जयदेव विक्रमसिंहके साथ थालमेंसे फल उठाके खाने लगा। विक्रमसिंहने प्रसन्नतासे सन्तुष्ट होके फलाहार किया और पश्चात् शीतलजलका पान करके तृप्तिलाभ की।

संध्या हो गई। प्रतीची के मुख मण्डल की रक्तिमा जो कुछ समय के लिये हुई थी, वह भी विलीन हो गई। समीर के धीमे २ परन्तु ठण्डे २ झोके आने लगे। दिन भर के ताप से व्याकुल हुई चिड़ियां चुहचुहाती हुई अपने अपने बसेरे ढूंढने लगीं। अन्धकार ने अपनी काली चादर से समस्त जगत को ढंककर अपना एकाधिपत्य प्रगट किया। यह देख गम्भीराशय आकाश ने उसकी मूर्खता पर मुसकरा दिया। तारागण खिल उठे। एक सेवक ने आके निवेदन किया, क्या आज्ञा होती है। मैं उपस्थित हूं? बैठकखाने में सब प्रबन्ध हो चुका है।

जयदेव—महाराज! यदि इच्छा हो तो, बैठकखाने में चलिये, और कुछ आवश्यक्ता हो तो इस सेवक को आज्ञा दीजिये।

विक्रम०—अच्छा! चलिये। (सेवक से) यहां से अनुमान आधकोस उत्तर की ओर एक हरिण पडा हुआ है, तुम उसे उठा लाओ।

सेवक आश्चर्ययुक्त होके अपने मालिक की ओर देखता हुआ और कुछ सकपकाता हुआ "जो आज्ञा" कहकर वहां से चल दिया। इधर जयदेव उसे सुनते ही एक दीर्घ चिन्ता तथा शोक में निमग्न हो गया, और उसकी आकृति में तत्काल ही बडा भारी परिवर्तन हो गया। यह देख दूरदर्शी राजा एक बड़े विचार में पड गया। बझूझे की वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसा परमो धर्मः वाली ध्वजा उसकी आंखों के सामने फिर लहराने लगी। वह जान गया, दयालु जयदेव के चित्त पर मेरे मृग वधके कृत्य से बडा भारी आघात पहुँचा है। हरिणकी लाश पर जब इसकी दृष्टि पडा थी, तब ही यह दुःखी हुआ था, परन्तु अपनी सज्जनता से घृणा प्रकाश न करके इसने मुझे अपना अतिथि बनाया था। इस समय मेरे उसी मृगयामोह ने उसके हृदय के घाव पर नमक का काम किया है। मैंने बहुत बुरा किया, जो पुनः उस कृत्य को इसके सम्मुख लाने का उद्योग किया। (प्रगट) प्रिय जयदेव! क्या मैं जान सकता हूं कि इस समय आपकी मुद्रापर एकाएक शोक छा जानेका क्या कारण है?

महाराज का उक्त प्रश्न जयदेव ने सर्वथा नहीं सुना वह उस समय इस उधेड बुन में लगा हुआ था कि, "इन आंखों से अब वह उस दीन मृग का कलेवर पुनः कैसे देखा जावेगा? हाय! उसके मुंह में उलझे हुए उन छोटे छोटे तृणों के स्मरण से मुझे रुलाई आती है। यह मुझसे कैसे हो सकेगा, कि, अपने अतिथि से इस विषय में कुछ कटुक व्यवहार करूं और यह भी कैसे हो सकता है कि, मेरा सुकोमल हृदय उस दया के वेग को रोक सके, जो हरिण के देखते ही और भी उत्तेजित हो जावेगा।

"हाय! तो क्या मेरे द्वारा महाराज विक्रमसिंह का जिन्हें कि, मैं बडा मान चुका हूं, अपमान होगा? नहीं मैं उन्हें समझाऊंगा। समझाने में अपमान की कौन सी बात है?" जयदेव की विचार-तरंगें यहां तक पहुंची थीं, कि महाराज ने अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर उसे फिर दुहराया। और उसे सुनते ही जयदेव चौंक पडा। "क्या उत्तर दिया जावे," बडी कठिनता से इसका निश्चय करके उसने कहा, पृथ्वीपाल! आपके मुंहसे हरिण शब्द निकलते ही मेरी मुद्रा पर उस दीन हीन हरिण के दयार्द्र कलेवर का असर हो गया होगा, और कुछ नहीं।

विक्रम०—यदि ऐसा है तो उस सेवक को लौटा लेना चाहिये। जिस कार्य से किसी को कष्ट हो, मैं उसे कभी नहीं करूंगा। (दूसरे सेवक से) अच्छा, तुम उसे दौडकर लौटा लाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जय०—राजन ! क्या आप इस पूज्य वाक्य में दृढ़ प्रतिज्ञ होते हैं कि, "जिस कार्य से किसी (आत्मा) को कष्ट हो, मैं उसे कभी नहीं करूंगा" । अहा कैसा सुन्दर वाक्य है । प्रत्येक मनुष्यका यही धर्म है । और हे पृथ्वीपाल ! आप जब पृथ्वी के पालक हैं, तब आपको कभी यह अधिकार नहीं है कि, किसी के आत्मा को कष्ट दें । अपराध क्षमा हो, महाराज ! जो राजा निरपराधी दीन, हीन स्वेच्छा-विहारी जीवों को विना कारण कष्ट देता है, वह पृथ्वीका रक्षक नहीं किन्तु भक्षक है ।

क्षत्रियोंका धर्म रक्षण करने का है, न कि, भक्षण करनेका । नरनाथ ! किंचित् विचार कीजिये कि सम्पूर्ण प्राणी दुष्टोंसे सन्त्रस्त होकर अपने राजा के द्वार पर जाके पुकार करते हैं, और रक्षा पाते हैं । परन्तु जब राजा ही उनका शत्रु बन जावे, तो वे बेचारे अपनी पुकार किसको जाकर सुनावें । धर्मावतार ! लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि जब कोई दांतोंमें तिनका दबाके किसीके सम्मुख जाता है, तो वह अवश्य ही रक्षा पाता है । परन्तु हाय ! यह बड़े दुःख की बात है कि बेचारे वनवासी हरिण जिनके मुख में निरंतर तृण समूह रहता है, और जो, किसी का कभी कुछ अपराध नहीं करते हैं, वे भी पृथ्वीरक्षक राजाओं के बाणों का निशाना बनते हैं । हाय ! उस झुंड के हरिणों की क्या दशा होती होगी, जिसका एक सरताज अकाल ही में काल के गाल में जा फंसा है ।

महाराज ! मैं आपसे हाथ जोडके पूछता हूं कि क्या इस एक समनस्क पंचेन्द्रिय पशु के सबसे प्यारे प्राणोंका घात करके आपको अपनी एक छोटी सी हवस मारने के अतिरिक्त और कुछ लाभ हुआ है ? आप चाहते, तो उस हवस को और किसी तरह पूर्ण कर लेते । परन्तु न्यायाधीश ! उस बेचारे पशु के प्यारे प्राण अब पुनः लौट आवें इसके लिये संसार में कोई उपाय है ?

विक्रम०—नहीं ! दयालु जयदेव ! बस करो । अब मुझे अधिक लज्जित न करो तुम्हारे वचन बाणों से मेरा हृदय विद्ध हो गया है, और उसमें से दयामृत का प्रवाह निकलकर सारे शरीरको तर कर रहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। यदि विश्वास न हो, तो देखलो, मेरे नेत्रों में से वह परमामृत बाहिर भी निकल रहा है।

जयदेव—जय हो महाराज की! जिनशासन के प्रसाद से आपकी विजय हो भगवति दये! इस पराक्रमी क्षत्रिय के हृदय में तू सतत निवास कर, ऐसा विस्तृत स्थान अब तुम्हें अन्यत्र नहीं मिलेगा। ऐसा कहते कहते जयदेव गद् गद् हो गया, और यह कहते हुए विक्रमसिंह के पैरों पर गिर पडा कि, नरनाथ! आज आप मेरे पूज्य हुए। राजत्व, क्षत्रियत्व, और ईश्वरत्व तीनों को मैं इस समय आप में देख रहा हूं। आपके आने से आज मेरा स्थान पवित्र हो गया।

विक्रमसिंह ने जयदेव को उठाकर छाती से लगा लिया, और प्रेमाश्रु बहाते हुए कहा—प्यारे जयदेव! तुम्हारे माता पिता धन्य है जिनके तुम सरीखा पुत्र है। यदि पुत्र हो, तो तुम्हारे ही ऐसा हो। आज मुझ पर जो तुम्हारा उपकार है, मैं उसे आजन्म नहीं भूल सकता। भूतदया के बिना मनुष्य होकर भी मुझमें मनुष्यत्व नहीं था, जिसे मैंने तुम्हारे प्रताप से पालिया है तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि, मेरा कुलपरंपरागत वही धर्म है, जिससे अधिक जीव दया पालन का दावा करने वाला संसार में दूसरा धर्म नहीं है मेरे सम्पूर्ण कुटुम्ब की श्रद्धा उसी जिन धर्म में ही है। और मैं भी जिन धर्म का उपासक हूं परन्तु कहते हुए लज्जा होती है कि इतने पर भी मैं इस मृगया के दुर्व्यसन का त्यागी नहीं था, जिसे तुमने सहज ही छुडा दिया।

जयदेव—महाराज! इस विषयमें काललब्धि का ही उपकार समझना चाहिये। मैंने दो चार प्रार्थनाओं के अतिरिक्त और किया ही क्या है? अस्तु अब समय हो गया है, भीतर चलके विश्राम कीजिये। क्योंकि आप दिन भर के थके मन्दे हैं। और मुझे आज्ञा दीजिये, मैं संध्यावन्दनादि क्रियाओं से छुट्टी पालूं। महाराज, बहुत अच्छा कहके विश्रामगृह में गये, और जयदेव अपने विद्यागृह की ओर गया।

अनुमान दो घन्टे के पश्चात् जयदेव अपने संध्या कर्म से छुट्टी पाकर विश्राम गृह की ओर गया। देखा तो महाराज जाग रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जयदेव के पांवों की आहट पाकर वे उठ बैठे, और बोले आओ, न जाने क्यों आज निद्रा नहीं आती। कुछ समय तुम्हारे साथ बात चीत करके ही चित्त को प्रसन्न करें। आज्ञा पाकर जयदेव बैठ गया, और दोनों में ज्ञान विषयक चरचा छिड गई। धर्म, न्याय, व्याकरण, साहित्य राजनीति आदि जिन २ विषयों में विक्रमसिंह ने देखा जयदेवको परिपूर्ण पाया। इसके अतिरिक्त जयदेव के सुदृढ पराक्रमी और सुन्दर शरीर, मनोहर लावण्य, तथा स्वाभाविक नम्रतादि विशेष गुणों की भी न्यूनता नहीं थी। इसलिये विक्रमसिंह के हृदयमें प्रेम का संचार होकर एकाएक यह बात प्रतिध्वनित हुई कि सर्वगुण सम्पन्न सुशीला के लिये क्या कोई इससे बढकर वर मिल सकता है? (ग्रन्थकार) नहीं! नहीं! नहीं!

रात्रि अधिक बीत गई थी, इसलिये जयदेवने निद्रा लेनेका प्रस्ताव किया जिसका विक्रमसिंह ने अनुमोदन किया, परन्तु अपने प्रयोजन की सिद्धि असिद्धि जानने के लिये चलते चलते जयदेव से यह पूछ ही लिया कि, अभी तुम्हारा विवाह हुआ है कि नहीं? लज्जित होता हुआ जयदेव 'नही' कहकर अपने शयन गृहको चला गया महाराज विक्रमसिंह ने "सरस्वती कन्याके साथ जयदेव का पाणिग्रहण होना समुचित है कि नहीं।" इसी विचार में उछलते वृदते हुए निद्रादेवी की गोद में सिर रख दिया। इधर जयदेव एक नवीन ही उधेड बुन में लगा। जब तक निद्रा नहीं आई, वह तर्क, अनुमान और युक्तियों से इस बात का निर्णय करने में अपनी बुद्धि को लडाता रहा कि, "तुम्हारा विवाह हुआ है कि, नहीं; यह पूछने में महाराज का क्या अभिप्राय है?" निद्रा आने पर जयदेव ने आज अनेक शुभ स्वप्न देखे।

बाईसवां पर्व।

बसन्तका प्रभात बडा सुहावना होता है। शय्या से उठतेही णमोकार मंत्रका उच्चारण करके "मैं कौन हूं? यह आंख कान, नाकवाला कौन है? मुझ चैतन्यनाथसे इस जडरूप पुद्गलका सम्बन्ध क्यों हुआ? और संसार क्या है!" आदि प्रश्नोंके उत्तर अन्यान्य विचार तरंगों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोककर जब शांतिताके साथ मनन किये जाते हैं, विश्राम पाई हुई निर्मल बुद्धि जब सब ओरसे क्षोभरहित होती है और जब दुःखोत्तप्त संसारकी आंच कुछेक दूर रहती है तब वसन्तका अत्यन्त प्यारा शीतल मलयसमीर अपने मन्द २ प्रवाहसे एक विचित्र ही प्रकारका आनन्दानुभवन कराता है। हतप्रभ होता हुआ चन्द्रमा कहता है—देखो सचेत रहो! मेरे सरीखे श्रीमान्, कान्तिमान् और लोकोपकारीकी भी इस संसारमें यह दुर्दशा हो रही है, तुम किस खेतकी मूली हो? आम्रवृक्षोंके भौरोंपर गुंजार करते हुए भौंरे उपदेश देते हैं—इन्द्रियके विषयोंकी लालसा विषयोंके प्राप्त होनेपर घटती नहीं है, प्रत्युत बढती ही जाती है।

एक कलीका सौरभ लेकर दूसरी पर मंडराये विना हमें चैन ही नहीं पडता। सरोवरोंमें जो कमलपुष्प शांतिताके साथ मुंह छुपाये हुए थे, बड़े भारी जोश खरोशके साथ निकलते हुए अंशूमाली (सूरज) को देखकर हंसते हैं और मानो कहते हैं—अच्छा आपकी भी कला देखें। एक महाशय तो ढाकके पत्तेके समान मुंह बनाये हुए रो ही रहे हैं। अब आप भी अपना होसिला निकाल लीजिये। उधर कोयल अपनी मधुरध्वनिसे सबके चित्तोंको रंजायमान करके इन विरक्तताके सब बिचारों पर हडताल फेरना चाहती है।

कंचनपुरसे ५—६ कोस उत्तरकी ओर एक जङ्गल के बीचोंबीच एक मनोरम सरोवर है। उसके आसपास आम्रादि छायादार वृक्षोंकी श्रेणी लगी हुई है, जहांपर थके हुए पथिक घडी भर लेटके विश्राम पाते हैं, यह स्थान किसी धर्मात्माने पथिकजनोंको आराम पहुँचानेके लिए तैयार कराया था।

रतनचन्द यही पर एक वृक्षकी छाया में एक पत्थरके सहारे बैठा हुआ ऊपर कही हुई वसन्तकी प्राभातिकी शोभासे अपने चित्तको शांत कर रहा है वह इस समय अकेला है। उसके शरीर पर एक सादी अङ्गरखी, पगडी और धोतीके अतिरिक्त कुछ नहीं है।

अभी एक भिक्षुकको अपना घोडा सामान सहित देकर वह अपने सिरका एक बडा भारी भार उतारके यहां आ बैठा है। उसके पास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमानमें शरीर परके कपडों के अतिरिक्त बाह्यपरिग्रहोंमें और कुछ शेष नहीं है। उस समय रात्रिभरके जागरणसे और उसमें शारीरिक तथा मानसिक अश्रान्त परिश्रम करनेसे रतनचन्दकी शिथिल इन्द्रियां विश्रामकी प्रतीक्षा करती थीं, परन्तु चित्तकी अनेकाग्रतासे निद्रा नहीं आ सकी। सैकडों विचारोंका उदय हो होकर उनका अस्त होने लगा।

रामकुंवरि और हीरालाल को पलंगसे जकडे हुए छोडकर वह चला आया था। चलते समय उन्हें जिस प्रकार अपराध-मुक्त कर दिया था, बंधनमुक्त करने का उसे स्मरण नहीं रहा था, इसका स्मरण हो आनेसे रतनचन्दको इस समय बहुत व्याकुलता होने लगी।

वह सोचने लगा, हाय! हतभाग्य दोन जीवोंको मेरे कारणसे व्यर्थ ही कष्ट होगा। कामादि विकारे बेचारे बैसे ही सताये हुए थे और अब मेरे बन्धनों से दुःखी होंगे। जब लोग उन्हें उस अवस्था में देखेंगे, तो अवश्य ही दुष्कर्म करने की उनमें शङ्का करेंगे तब उन्हें कितना हृदयवेदी दुःख न होगा? स्वयं घृणा, लज्जा और मूर्खता के कारण आश्चर्य नहीं कि, बेचारे आत्मघात कर लेवें। ओफ! यह मैंने बहुत बुरा किया। दो युवा मनुष्यों के प्राणों का व्यर्थ ही मेरे द्वारा घात होगा। परन्तु हवेली की चाबियां तो मैं जयदेव को दे आया हूं।

जयदेव ऐसा निर्दय-हृदय नहीं है। वह अवश्य ही उन पर दया करेगा। मुझे निश्चय है कि, दयालु हृदय जयदेव उन्हें अवश्य क्षमा कर देगा। हाय! अब पीछे २ विचार होते हैं, तब निश्चय होता है कि, मैंने एक ही नहीं बहुत सी भूलें की हैं। जब संसार से मुझे सरोकार ही नहीं था, तब हीरालाल, रामकुंवरि और जयदेव को चिट्ठी लिखने की क्या आवश्यकता थी? उन्हें द्रंडार्ह बतलाकर धनसम्पत्ति का स्वामी जयदेव बनाया जावे, यह प्रयत्न भी मैंने क्यों किया? मेरा जयदेव मित्र क्यों और हीरालाल शत्रु क्यों? मुझे को सबको एक दृष्टि से देखना था। परन्तु नहीं देखा, हाय! इस अवस्था में भी मोह मेरा पीछा नहीं छोड़ता।

रामकुंवरि? मैंने नहीं जाना था कि, तू शहदसे भरी हुई तीक्ष्ण छुरी है। तेरे स्त्रीजन-सुलभ हावभावोंमें मुग्ध होकर मैं तुझे सर्वस्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्पण कर चुका था, परन्तु आखिर तू मेरी नहीं हुई यह कैसी बुरीघडी थी, जिस दिन मैंने अपनी ढलती हुई उमर पर शिथिल होती हुई अंग-यष्टि पर और शान्तप्राय होती हुई प्रक्रष्ट विषय वासनाओं पर विचार न करके तेरा पाणिग्रहण किया था। हाय! तेरी धधकती हुई नवीन कामज्वाला शान्त न हो सकी और आज उसने अपने अनर्थसे निर्मल कुलकीर्तिको भस्म कर डाला। यौवन और वृद्धावस्था इन दोनोंके पारस्परिक विरोध पर मैंने कुछ भी बिचार नहीं किया, यह उसी का फल है।

स्त्रियों पर विश्वास करना सचमुच बडी भारी भूल है। वे कपट और कुटिलताकी साक्षात् प्रतिमूर्तियां हैं। एक कविने सच कहा है "कि स्त्रियोंके वचनोंमें, भौंहोंमें, कटाक्षोंमें, गमनमें, और अलकावलियों में जो कुटिलता दिखलाई देती है वह और कुछ नहीं उनके हृदयों की कुटिलता है, जो भीतर न समा सकनेके कारण शरीर के बाहर भी फूट निकली है।" ये स्त्रियां संसाररूपी विषवृक्ष की मूल हैं। इन्द्रायणके फलके समान ये केवल बाहिरसे मनोहर दीखती हैं, परन्तु यथार्थमें इनका आस्वाद बडा भयंकर हैं कामदेवके समान सुन्दर शरीरवाले युवा पुरूषको भी छोडकर ये कुरूप कुकर्मी नोचोंके साथ रमण करती हैं इनकी रूचिका पता पाना बडा कठिन है

जयदेव जैसे सत्यनिष्ठ और जितेंन्द्रिय पुरुषको भी जो स्त्रियां कलंकित कर सकती है उनकी मलिनता कलंकिताका क्या ठिकाना है? रामकुंवरी! तूने अपने चारित्रसे इस बातकी मुझे अच्छी शिक्षा देदी है। इस विषयमें तेरा मुझपर बडा उपकार है।

अहा! अब मैं कैसे अच्छे मार्गपर आरहा हूं, जिसमें एक भी कंटक नहीं है। सम्पूर्ण चिन्ताओं से रहित होकर और सब ओर से अपनी कामनाओं को खींचकर, श्रीगुरु के वचनों के सहारे से जब मैं उस सरल मार्ग पर चलने लगूंगा, आशा है कि, तब आत्मा के अभीष्ट-स्थान की प्राप्ति में अधिक बिलम्ब न होगा।

परन्तु अब मैं यहां निश्चित क्यों पड़ा हुआ हूं। अभी तक कोई महात्मा मुनि के दर्शन नहीं हुए। ये हृदय के नाना संकल्प विकल्प

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो छोड देने पर भी पीछे पड़े हुए हैं, बिना श्रीगुरु का उपदेश पाये नष्ट नहीं होंगे, सो मुझे अब शीघ्र ही उनका अन्वेषण करना चाहिये। और संसार समुद्रसे पार होनेके लिये उनके वचनरूपी जहाजका आश्रय अवश्य लेना चाहिये। यह मोह का सघन अन्धकार जो सब कुछ छोड़ देने पर भी बारबार हृदय पर अपना अधिकार जमा लेता है, श्रीगुरु की वचन किरणों के प्रकाश बिना नष्ट नहीं होगा।

रतनचन्द के मनमें इस प्रकार की अनन्त भावनायें एक के पीछे एक उठ रहीं थीं। परन्तु उनमें नियम का प्रतिबन्ध नहीं था। यह अनियमितता का ही कारण था, जो पहले रामकुंवरि में रागद्वोष छोड कर तटस्थ होने के लिये तत्पर होकर पश्चात् उसी की एक प्रकार से निन्दा करने और अन्त में उपकार मानने में रतनचन्द का वैकल्पिक चित्त कुछ आगा पीछा न सोच सका। अस्तु! थोडी ही देर में पास की एक पगडंडी पर से एक परम निर्ग्रंथ मुनि को जाते हुए देखकर रतनचन्द उठ बैठा, और हर्षोत्फुल्ल होकर दौडता हुआ उनके सन्मुख जाकर चरणों पर गिर पडा।

मुनिराज ने ठहरकर "धर्मवृद्धि" दी और पूछा *रतनचन्द! कुशल तो है? सुनकर आश्चर्यस्फुरित नेत्रों से रतनचन्द ने उत्तर दिया, आपके पुनीत दर्शनों के सन्मुख अकुशल कहां? सब प्रकार से आनन्द है।

मुनिराज—भैया! तुम बड़े भाग्यशाली हो तुम्हारा संसार अब बहुत थोडा अवशेष रहा है। अच्छा किया जो, इस संसार को तुमने पानी के बुदबुदे के समान अनित्य समझा, और उससे मोह छोड दिया। संसार में कहीं भी सुख नहीं है। इन्द्रिय जनित सुख पराधीन, परिणाम में दुःखदाई और केवल अविचारित-रम्य है। सच्चा सुख मोक्ष में है। वह सर्वथा नित्य, शुद्ध और स्वाधीन है। वह आत्मा का स्वभाव है।

---

*एक अपरिचित अदृष्ट-पूर्व मुनि के द्वारा अपना नाम सुनकर रतनचन्द को आश्चर्य हुआ—मुनिराज को अवधिज्ञान प्राप्त हुआ था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार के सम्पूर्ण विभावों को परित्याग करके केवल आत्म-स्वभाव में लवलीन होने से उस अतीन्द्रिय-सुख की प्राप्ति हो सकती है। और ऐसा करने के लिये अर्थात् केवल आत्मस्वभाव में तल्लीन होने के लिये जैनेश्वरी दीक्षा ही एक मात्र साधन है।

यह नित्य-शुद्ध आत्मा अनादिकाल से पुद्गल का सम्बन्ध पाकर मलिन हो रहा है। संसार के मूल भूत आठ कर्मों ने इस तरह ढक रक्खा है कि, उनके कारण इसका असली ज्ञान-दर्शन-स्वभाव प्रगट ही नहीं होने पाता है, और निरन्तर चारों गतियों में नाना स्वांग धारण करके भ्रमण करना पडता है। जैनेश्वरी दीक्षा के अतिरिक्त इन कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से छुडाने के लिये और यह संसार की विडम्बना के लिये और कोई साधन नहीं है।

परन्तु यह जैनेश्वरी-दीक्षा बडी कठिन है। इसको वे ही धारण कर सकते हैं, जिनका संसार से मोह घट गया है, और जिन्हें यथार्थ में विषय सुखों से विरागता आ गई है। इस स्वतन्त्र स्वाधीन और निर्भयवृत्ति को धारण करना अच्छे पुरुष सिहों का कार्य है, न कि इन्द्रियों के आधीन रहने वाले कायर पुरुषों का।

रतनचन्द—(हाथ जोड के) धन्य भगवन्! आज मैं आपके दर्शनों से कृतार्थ हो गया। संसार ज्वाला से व्याकुल हुए मुझ क्षुद्र जीवको जो कि, अपने यथार्थ दर्शन-ज्ञान स्वभावको भूला हुआ दुखी हो रहा है, उस अर्हती-दीक्षा की सघन शीतल छाया में पहुँचा के शान्त कीजिये। हाय! अब मुझसे संसार के वे भयंकर, घृणित, असेवित दृश्य, और दुरंगे दृश्य देखे नहीं जाते हैं। कृपा करके अब मेरी रक्षा कीजिये। मुझे पूरा विश्वास है कि, आपके चरणों के प्रसाद से दुर्धर जिन दीक्षा भी सहज हो जावेगी। मुझे शीघ्र ही उन पुरुष-सिंहों की श्रेणी में विचरने योग्य बना दीजिये, जो भयानक वनों की गह्वर गुफाओं में असह्य शीतोष्णता युक्त पर्वतों के मस्तकों पर सहस्रों हिंस्र जीवोंके समूह में सम्पूर्ण चिन्ताओं से रहित, निर्भय और निष्परिग्रह होकर सिंहनाद वाणी को गर्जना करते हुए स्वच्छन्द विहार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं। और जिन्हें देखते ही परवादि मृग गण थरथर कांपने लगते हैं।

मुनि०—आत्मार्थी रतनचन्द ! तुम्हारे सच्चे उत्साह का देखकर प्रसन्नता होती है। श्रीजैनेन्द्र धर्म के प्रसाद से तुम्हारा अभीष्ट ही सिद्ध होगा। तुम्हें अब संसार सम्बन्धी विकल्प जालों को छोड देना चाहिये। तुम पर जो कुछ बीता है, वह कुछ आश्चर्य नहीं है।

अपावन संसार में इससे भी सहस्र गुणे दुष्कृत्य अहर्निश होते रहते हैं, परन्तु आत्मा ज्ञान से जो लोग कोरे हैं, उन्हें इससे कुछ उद्वेग नहीं होता विष्ठा के कीडों की नाईं वे उस विष्ठा को ही अपना क्रीडा स्थान समझते रहते हैं तुम्हारी काललब्धि निकट आ गई थी, इसलिये उस कृत्य से तुम्हें निर्द्वेग और निर्वेद प्राप्त हो गया, अन्यथा विचार करके देखो ! संसार का कौन सा कृत्य घृणित और वैराग्य का करने वाला नहीं है ? सो अब उस ओर अपने चित्त को सर्वथा मत जाने दो।

तुम्हारा संसार में अब कोई नहीं है, जो है, वह तुम्हारे साथ है। वह तुमसे पृथक् नहीं है, उसी का निरन्तर ध्यान करो। अनन्त दर्शन अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य अनन्तसौख्य जो उसके स्वभाव हैं, देखोगे कि, तुम्हें अति शीघ्र प्राप्त हो जावेंगे।

———

तेइसवां पर्व।

प्रातः काल हुआ। अन्धकार अपने पराक्रमी शत्रु को पूर्व की ओर से उदय होते हुए देख भागा। कौए "वयं काकाः वयं काकाः" कहते हुए लगे गुहार मचाने कि कहीं अन्धकार के धोखे अपने काले रङ्ग के कारण हम लोग न सताये जावें। चिडियां चुहचाहने लगीं। महाराज विक्रमसिंह की आंख खुल गई। वे शय्याका परित्याग करके प्राभाति-की क्रियों से निवृत्त हो शीघ्रही तैयार हो गये। आज्ञा पाकर सेवकोंने घोडा उसके सम्मुख खडा कर दिया। जयदेव भी आ पहुंचे। प्रणाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके बोले,—महाराज ! आपके आगमनसे मैं धन्य हुआ हूं। परन्तु इस थोडे से रात्रि काल के समागम से मैं संतुष्ट नहीं हासका सो कृपा करके आज का आतिथ्य और भी स्वीकार करें।

विक्रम—(प्रेमाश्रु भर के) प्रिय जयदेव ! न जाने तुम्हारी ओर मेरा चित्त इतना आकर्षित क्यों हुआ है। कि तुम्हें छोडनेको स्वयं जी नहीं चाहता और न तुम्हारे सुकोमल वचनालाप से तृप्ति होती है। परन्तु क्या किया जावे, उधर लोग मेरे लिये घबडा रहे होंगे, इसलिये विवश तुमसे विदा लेता हूं, अन्यथा एक दिन क्या तुम्हारे पास अनेक दिन रहने में भी मुझे कोई संकोच नहीं था।

जयदेव—नरनाथ ! मैं बडा सौभाग्यशाली हूं, जो आप जैसे महत्पुरुषों के प्रेम का पात्र हुआ हूं। श्रीजी करे, आपका यह प्रेम इस बालक पर सदा बना रहे। इस समय आप सकारण जाते हैं, इसलिये अब रोकने के लिये अधिक आग्रह नहीं किया जा सकता। परन्तु इसका अवश्य खेद रहेगा कि, मुझसे आपकी कुछ उचित सेवा नहीं हो सकी।

विक्रम०—नहीं जयदेव ! खेद की कोई बात नहीं है। तुम्हारे समागम से मुझे जो सुख हुआ वह असामान्य है। तुमने कल उपदेश देकर मुझ पर जो उपकार किया है, उसके ऋण से मैं कभी मुक्त नहीं हो सकूंगा। अहिंसा का तुम्हारा बतलाया हुआ वह सुन्दर रूप मेरे हृदय पर ज्यों का त्यों अङ्कित है। अब मैं जाता हूं, परन्तु चलते २ एक बात कहे बिना नहीं रह सकता कि, यदि मुझ पर तुम्हारा कुछ भी आन्तरिक स्नेह हो, तो कोई अवस निकाल कर विलासपुर आना और मुझे दर्शन देके सुखी करना।

जयदेव—(नतमस्तक होके) बहुत अच्छा। आपकी आज्ञा को पालना मैं यथा शक्ति प्रयत्न करूंगा।

इसके पीछे परस्पर आलिंगन करके विक्रमसिंह तो घोडे पर सवार हो गये और जयदेव शिष्टाचार की पालना के लिये थोडी दूर तक उनके साथ २ गया परन्तु आगे विक्रमसिंह के आग्रह से लौट आना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पडा। एक पथ दर्शक सेवक के साथ महाराज विलासपुर की ओर रवाना हो गये।

जयदेव लौट के अपने बङ्गले में पहुंचा। वहां जाके देखा, तो एक आराम कुर्सी पर भूपसिंह पडे थे जो कि, इसे देखते ही उठ खड़े हुए। दोनोंके चेहरे खिल उठे, और आनन्दके उद्वेगवेसे दोनों परस्पर लिपट गये। जयदेव के हृदय का दुःख जो कि, विक्रमसिंह के वियोग से हुआ था, आनन्द रूप में परिणत हो गया। पश्चात् कुशल प्रश्न हो चुकने पर इस प्रकार बीतचीत होने लगी—

जय०—यदि आप कुछ समय पहले आ जाते तो अच्छा होता। सहज ही विलासपुर नरेश से भेट हो जाती। मैं उन्हें अभी पहुँचा के आ रहा हूं। बडे सज्जन नरेश हैं।

भूप०—विलासपुर नरेश के दर्शन तो मुझे कभी नहीं हुए। परन्तु पिताजी से उनकी बहुतसी प्रशंसा सुनी है। कहते हैं, बडे उदार-हृदय दृढ-प्रतिज्ञ, और पराक्रमी राजा हैं। खेद है कि, मैं ऐसे अच्छे एकान्त अवसर में उनसे न मिल सका। अस्तु, पर यह तो कहिये कि, आपकी इस एकान्त विद्या- कुटीर में आये कैसे?

जयदेव—कल कुछ दिन रहे, यहां बैठे २ चित्त ऊब जाने से मैं टहलते २ इस पास की पहाडी की तलैटी में समीर-सेवन कर रहा था कि एक झाड के नीचे आप दिखलाई दिये। निकट जाकर पूछने से ज्ञात हुआ कि, आप शिकार के लिये आये हैं. और एक हरिणके कारण मार्ग भूलकर तृषा के मारे वृक्ष की छाया में स्थगित पडे हैं, तब मैं अपने कर्तव्य वश ढाढ़स देकर उन्हें यहां ले आया था।

भूप०—(मुसुकराके) पर दयानिधान! वह तो बतलाइये कि, शिकारकी अभ्यर्थना करके आपने कौनसा पुण्य कमाया?

जय०—वही, जो कि, आपकी मित्रता करके कमा चुका हूं। कहिए स्मरण तो है! महाराज! उपहास न कीजिये, मेरा प्रयत्न निष्फल नहीं हो सकता। आपको सुनकर हर्षित होना चाहिये कि, मृगया प्रेमी विक्रमसिंह सदाके लिये अहिंसाणुव्रतके धारी हो गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूप०-(हंसके) शाबास। मैं तो पहले ही से जानता हूं कि, आप जीते रहेंगे, तो बहादुरीका नाम ही मिटा देगें।

जय०-तो क्या बेचारे निरपराधी वन्य पशुओंको सताना छोडनेसे ही बहादुरी चली जाती है? जान पडता है, अभी आप सूर्यपुरसे हारके आ रहे हैं। इसलिये यह उलटी धुनि समाई है।

भूप०—नहीं मित्र! चिन्ता मत करो। अहिंसा धर्मके प्रसादसे विजयपताका उडाके ही आया हूं, और एक दिन सर्वत्र अहिंसाकी ही विजयपताका उड़ेगी। यह मेरा पक्का विश्वास है। निरपराधी जीवों के घातसे और पराक्रमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि ऐसा न होता तो मृगया प्रेमी निहालसिंह और उसके पुत्र उदयसिंहको मै लीलामात्रमें कैद करके न लाया होता।

जय०—अच्छा तो आप विजयपुर कब आये? और झगडेका फैसला क्या हुआ?

भूप०—मैं कल संध्याको ही लौटके आया हूं। झगडा अब नहीं रहेगा। निहालसिंह हमारी रियासत छोडनेके लिये राजी है। परन्तु मित्र! उस सिलसिलेको न छोड दीजिये। महाराज विक्रमसिंहसे और आपसे कोई विशेष वार्ता हुई हो, तो और सुनाइये?

जयदेव-और तो कुछ नहीं हुई। चलते समय उन्होंने विलासपुर आनेके लिये आग्रह अवश्य किया है, सो अच्छा हुआ। आपकी भी उनसे भेट हो जावेगी।

भूप०—हां! अवश्य, और आपकी सगाई की बातचीत भी तय हो जावेगी। * बडी खुशी की बात है।

जय०—यह क्या जी कहां की सगाई?

भूप०—मानो आप कुछ जानते ही नहीं हैं-बडे भोले हैं।

जय०—कुछ कहोगे भी?

---

* यह बात जयदेव के एक सेवक ने आने के साथ ही भूपसिंह को सुना दी थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूप०—महाशय ! छुपाइये नहीं, क्या आपसे महाराज ने यह नहीं पूछा कि, "तुम्हारा विवाह हुआ है कि नहीं ?" और फिर चलते समय क्या विलासपुर आने का आमत्रंण नहीं दिया ? तो अब इन दोनों को मिलाके समझ लीजिये क्या अभिप्राय निकलता है ? आप तो नैयायिक पंडित हैं।

जय०—भाई ! तुम्हें भी खूब हवाई किले बांधने आता है, कहीं भांग खाके तो नहीं आये हो ?

भूप०—भांग खाके मैं आया हूं, या आप खाए हुए है, यह तो समय पर प्रगट होगा । परन्तु अब यह तो कहिये, कि ससुराल नहीं विलासपुर कब चलियेगा, मैं जरूर आपके साथ चलूंगा ।

जय०—(हंसके) जिस समय आप चलें मैं उसी समय तैयार हूं । इस प्रकार हास्यविनोद की वार्ता करते २ भोजन का समय हो गया। भूपसिंहने अभी तक स्नानादिक नहीं किये थे, इसलिये यह स्नानागारकी ओर गया, और जयदेव विद्या मन्दिर में जाकर तब तक पुस्तकावलोकन में लगा।

\+ \+ \+

उचित होगा, कि, यहां पर जयदेव भूपसिंहादिके विषय में कुछ परिचय देकर पाठकों का सन्देह निवारण कर दिया जावे ।

विलासपुर से दक्षिण की ओर अनुमान २० कोस पर विजयपुर नगर है। विलासपुर के समान यह भी समुद्र तट पर वसा हुआ है, इस कारण विलासपुर से विजयपुर आने के लिये जल तथा स्थल दोनों मार्गों से लोग आ जा सकते हैं। बीच में एक सूर्यपुर छोटा सा राज्य है। सो आने जाने वालों को सूर्यपुर राज्य की सरहद पर से जाना पडता है।

विजयपुर बिलासपुरका मित्र राज्य है। और विस्तार आदिमें प्रायः उसके बराबर है। यहांके राजा रणवीरसिंह बडे प्रतापी तेजस्वी और प्रजावत्सल क्षत्रिय हैं। इस समय उनकी आयु ५० के अनुमान है। कुछ कम १२ वर्ष पहले उनकी महाराणी धारिणी अपने एक मात्र पुत्र भूपसिंहको छोडकर परलोकको कूच कर चुकी थी परन्तु उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पीछे जितेन्द्रिय महाराजने दूसरा विवाह नहीं किया। पुत्रकी शिक्षा दीक्षामें ही उन्होंने तन, मन, धनसे परिश्रम किया। इस समय भूपसिंहकी आयु २४ वर्षके अनुमान है। वह पिताकी शिक्षासे ऐसे सांचेमें ढाला गया है कि श्रेष्ठसे श्रेष्ठ राजाओंमें जो गुण आवश्यक है, वे सब इस समय उसमें वर्तमान हैं। राजनीति, धर्मनीति, युद्धनीति समाजनीति आदि सम्पूर्ण विषयोंमें वह असाधारण ज्ञान रखता है।

इसके अतिरिक्त काव्य, कोष, व्याकरण, न्यायादि विषयोंमें भी उसका अच्छा प्रवेश है। वह इस समय राज्यका कार्य बडी कुशलतासे चलाता है। महाराज रणवीरसिंह उदासीन वृत्ति धारण किये हुए एकान्तवास सेवन करते हैं अभी तक भूपसिंहका विवाह नहीं हुआ है।

विजयपुरमें एक श्रीचन्द्र नामक प्रसिद्ध धनाढ्य हैं। उनके यहां जवाहिरातका व्यापार होता है। कहते हैं, श्रीचन्द्रके पिता एक सिपाहीके वेषमें विजयपुरमें आये थे, और उन्होंने एक जौहरीकी दुकानपर नौकरी की थी। उसी नौकरीमें अपनी ईमानदारी और तीक्ष्ण बुद्धिसे उन्होंने इतनी सफलता प्राप्त की कि थोडे समयमें वे एक अद्वितीय रत्नपरीक्षक हो गये। और उसके द्वारा उन्हें लक्षावधि द्रव्य प्राप्त होगया। श्रीचन्द उन्हीके सुयोग्य पुत्र हैं।

श्रीचन्द्रकी विद्यादेवी नामक सुयोग्य गृहिणीसे जयदेव और विजयदेव नामके दो प्यारे पुत्र उत्पन्न हुए हैं। जयदेवकी आयु २० वर्ष और विजयदेवकी १८ वर्षके अनुमान है। छोटे पुत्र विजयदेवने सामान्य विद्याभ्यास करके व्यापार कार्यकी ओर चित्त लगाया है। परन्तु ज्येष्ठ जयदेव विद्याभ्यासमें अब भी अहर्निश दत्तचित्त रहता है। आजकल वह पाठशालाका अभ्यास पूर्ण करके एकान्तमें पठित विषयोंका मनन करता है। जिस बगलेका वर्णन ऊपर आ चुका है, वह जयदेवने इसी लिये [विद्याभ्यासके लिये] तैयार करवाया है। जयदेवकी राजकुमार भूपसिंहके साथ असाधारण मैत्री है। संसारमें वे एक दूसरेके अनन्य मित्र हैं।

जयदेव जन्मसे ही दयालु-हृदय और शांत-प्रकृति है। विजयपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निवासियोंने उसे कभी किसीसे लडते झगडते अथवा कटुवचन कहते नहीं सुना। किसीको रोते पीटते देखकर उसे बड़ा त्रास होता था। एकबार एक निरपराधी जीवको पिटते देखकर उसे मूर्छा आगई थी। कहते हैं, सुयोग्य महाराज रणवीरसिंहके कान तक जब यह बात गई, तब उन्होंने उसी दिन अपने पुत्र भूपसिंहको जयदेवके साथ रहनेका आदेश दिया।

भूपसिंहको आखेटका शौक था परन्तु क्षत्रिय धर्म किसे कहते हैं? इस विषयपर अवसर पाके जब जयदेवने एक व्याख्यान सुनाया, तब भूपसिंहके टप २ आंसू पडने लगे, सिर नींचेसे ऊपर नहीं किया गया उसी समय उसने निरपराधी जीवोंको न सतानेकी प्रतिज्ञा कर लीं। गुणज्ञ भूपसिंह उसी दिनसे जयदेवको आदरकी दृष्टिसे देखने लगा।

कुछ दिन पहले विजयपुर और सूयपुरके सीमा प्रान्तके कुछ ग्रामोंके विषयमें असमंजस हो गया था, परन्तु सचतुर रणवीरसिंहने अपनी उपेक्षासे, उस समय दबा दिया था। तो भी वह दब न सका। सूर्यपुरके राजकुमार उदयसिंहकी करतूतसे विरोधाग्नि धधक उठी और आखिर भूपसिंहको सूर्यपुर पर चढाई करनी पडी। फल यह हुआ कि, घोर युद्धके पश्चात् उदयसिंह और महाराज निहालसिंह कैद कर लिये गये। इसी लडाईमें विजय पाकर भूपसिंह जयदेवके बंगले पर गया था, जैसा ऊपर कहा जा चुका है।

चौवीसवां पर्व।

जयदेवको देखते ही चित्त कहने लगता है कि, वह कोई क्षत्रिय पुत्र है। उन्नत ललाट, विशाल वक्षःस्थल, प्रलम्ब भुजायें, सुदृढ सुपुष्ट शरीर और प्रफुल्ल मुखमण्डल आदि उसके असाधारण पराक्रमी और प्रतापी होनेके स्पष्ट लक्षण हैं। कैसा ही अनुभवी और चेष्टा परीक्षक क्यों न हो वह एकाएक जयदेवको वणिक पुत्र कहनेमें अचकचा जावेगा इस लिये मुझे उसके वणिक होनेमें विश्वास नहीं होता। जान पडता है कि, उसके जीवनमें किसी कारणसे क्षत्रियत्वका रहस्य गुप्त रक्खा गया है। परन्तु नहीं, वह वणिक ही क्यों न हो, अब तो सुशीलाका भाग्य उसके हाथमें समर्पण किया जावेगा। नीतिमें कहा है कि, अयोग्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वरको कन्या देनेकी अपेक्षा उसे एक कुएमें पटक देना अच्छा है। इसलिये सुयोग्य वरकी अप्राप्तिमें यदि सुशीलाका पाणिग्रहण एक परम सुयोग्य वणिकके साथ जिसमें कि, सम्पूर्ण क्षत्रिय पुत्रोचित लक्षण मिलते हैं, कर दिया जावे, तो कोई अन्याय नहीं होगा। यद्यपि ऐसे सम्बन्धसे लोग विरोध करेंगे, परन्तु पिताके यथार्थ कर्तव्यकी पूर्ति ऐसा किये विना हो नहीं सकता। जयदेव जैसा वर मिले विना मेरी प्राणाधिक प्रिय सुशीला सुखी नहीं हो सकती।

मैं अनेक राजकुमारोंको देख चुका हूं, परन्तु अभी तक उनमेंसे किसीने भी मुझे सन्तोष नहीं पहुंचाया है। उन सबमें बहुत थोडे और विरले गुण पाये गये हैं। परन्तु जयदेवके गुणोंकी गिनती नहीं हो सकती एक दया ही उसके हृदयमें ऐसी शक्तिशालिनी और सुन्दर है कि, अन्य गुणोंकी उसमें अपेक्षा ही नहीं है। वीरपुरुषका उन्नत हृदय ऐसी दयासे शोभायमान रहना चाहिये, जिसका कि, जयदेवने मुझे उपदेश दिया था, और जिसे वह स्वयं अहर्निशि धारण किये रहता है।

उस रात जयदेवके वार्तालापमें तर्क बुद्धिकी प्रखरता, काव्यकी रूचिरता, और व्यवहार-कुशलताके साथ साथ राजनीतिकी जैसी योग्यता प्रकट हुई थी, वैसी योग्यता वर्तमानमें अन्य किसी राजकुमारमें भी प्राप्त होगी, यह कल्पना मात्र है।

ऐसी अवस्थामें मैं अपने विरोधियोंसे पूछ सकता हूं कि, जिस पुरुष पुङ्गवमें सम्पूर्ण क्षात्र-गुण पाये जाते हों, वह वणिक क्षत्रिय क्यों नहीं है? और अनेकान्त-मतके माननेवाले हम लोग क्या एकान्तपूर्वक जन्मसे ही वर्ण मान बैठेंगे, गुणकर्मोंसे नहीं? इसके अतिरिक्त अनेक प्राचीन कथाओंके ऐसे प्रसंग सुने जाते है, जिनमें राजकन्याओंका सुयोग्य वणिकपुत्रोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध हुआ है। फिर मेरे इस कार्यमें ही विरोध क्यों किया जाता है?

परन्तु प्रत्येक कार्य जहांतक हो, लोकको अपने अनुकूल बनाकर ही करना चाहिये। इसलिये इस कार्यमें अभीसे इतनी शीघ्रता करनी ठीक नहीं है। शान्तिताके साथ अपने गुरुजनों और मंत्री सुहृद्गणोंमें यह विषय उठाकर अपना अभिप्राय उन्हें समझाना चाहिये। संभव है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी सुयोग्य युक्तियां उनके चित्तोंपर प्रभाव डालके अपने इष्ट साधनमें समर्थ हो जावें।

इसके अतिरिक्त अभी उस ओरसे भी सर्वथा निराश नहीं होना चाहिये। विजयपुरको जो सवार चिट्ठी लेकर दौडाये गये हैं, क्या आश्चर्य कि, वे ही अपने अभिलषित उत्तरको लेकर आवें और इन नाना चिन्ताओंके स्थानमें आनन्दका स्रोत बहाने लगे।

एक चिन्ता सुशीलाकी माताकी थी, परन्तु अच्छा हुआ कि, वह निवृत्त होगई। मेरा अभिप्राय वे समझ गई, और जयदेवको जामाता बनानेमें राजी हो गई। बेचारी स्त्रियोंकी बुद्धि ही कितनी! नहीं रहा गया, अन्तमें पूछ ही बैठी, कि, जयदेवका पिता कितना बडा धनी है, परन्तु बड़ी खैर हुई कि, जयदेव किसी कंगालका पुत्र नहीं हुआ। अन्यथा यहां बडी कठिनता पडती।

क्या ही अच्छा हो, यदि जयदेव इस समय जैसा कि, उसने स्वीकार किया है, यहां आ जावे, और सब लोग उसे समक्षमें देखकर मेरे विचारोंका तत्व समझ जावें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि, उसके मिलापसे सब ही आप्तवर्ग मेरे अनुमोदक हो जावेंगे, और तब मेरी अभिलाषाके पूर्ण होनेमें कुछ भी विलम्ब न होगा।

अस्तु, अब रात बहुत बीत गई है। आजका सारा दिन इसी प्रकारकी नाना चिन्ताओंमें गत हुआ है। उचित है कि, कुछ विश्राम कर लिया जाय। यदि उदय अच्छा है, तो श्रीजीकी कृपासे कल ही इन सब चिन्ताओंका अवसान हो जावेगा।

इसप्रकार विचारतरंगोका अवरोध करके महाराज विक्रमसिंह उस दिनकी थकावट मिटानेके प्रयत्नमें लगे। उस समय सारा संसार निद्राके यौवन काननमें विहार कर रहा था। निजत्वको तो पहले ही भूला हुआ था। इस समय एक प्रकारसे परत्व-ज्ञानको भी खो चुका था।

दूसरे दिन आठ बजेके अनुमान राजभवनके एक साफ सुन्दर कमरेमें खास बैठककी व्यवस्था की गई। महाराज, उनके वृद्ध और दूरदर्शी काका, मंत्री, पुरोहित और चुने हुए दो चार मुख्य राज्यकर्मचारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि खास २ पुरुष एकत्र हुए। सबके स्वस्थचित्त होकर बैठ जाने पर महाराज विक्रमसिंहने थोड़ेसे शब्दोंमें अपना इस प्रकार अभिप्राय प्रकट किया कि, राजकन्या सुशीला जिसे कि आपलोग सरस्वती कहके पुकारते हैं, व्यवहार प्राप्त हो चुकी है, इसलिये उसका विवाह करना आवश्यक है। विवाह सम्बन्धसे दो प्राणियोंके बहुमूल्य जीवनके सुख-दुःखोंकी डोरी परस्पर जोडो जाती है, इसलिये यह कार्य मेरी समझमें अतिशय विचारणीय तथा उत्तरदायित्वका है। और आप लोग इस विषयमें मेरी अपेक्षा विशेष अनुभवी और दूरदर्शी हैं, इसलिये मैं चाहता हूं कि, इस विषयमें जो कुछ किया जावे, आप लोगोंके विशेष परामर्शसे किया जावे।

सुशीला जैसी सुशीला और विदुषी कन्याके लिये बहुत दिनकी शोधके पश्चात् मैंने एक वर खोजा है, बाहिरी रूपलावण्य वेषविन्यासके समान जिसका अन्तरङ्ग भी अतिशय सुन्दर है। विद्वत्ता शूरता उदारता दूरदर्शिता सहनशीलतादि सब ही लोकोत्तरगुणोंने उसके हृदयको अपना निवासस्थान बनाया है। परन्तु इस प्रकार क्षत्रियोंके योग्य सम्पूर्ण लक्षण होनेपर भी उसने अपनेको वणिकपुत्र बतलाया है, यह एक चिन्तनीय बात उपस्थित हुई है। इसलिये अब आप लोगोंसे सम्मति मांगता हूं कि, यह कार्य कुछ अनुचित तो नहीं होगा ?

पुरोहित—राजन्! वरके गुणोंकी ओर विचार करते हुए यद्यपि आपका विचार अनुचित नहीं जान पडता, परन्तु लोकमर्यादा और आचारग्रन्थोंकी आज्ञासे यह विरुद्ध नहीं है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनोंके अपने वर्णके साथ वर्णानुक्रमसे चार तीन और दो वर्णोंकी कन्याओंके साथ विवाह करनेका अधिकार है। तदनुसार वैश्यपुत्र क्षत्रियकी कन्या नहीं ले सकता

मंत्री—पुरोहितजीका कहना ठीक है, परन्तु जिस कुमारकी महाराजने प्रशंसा की है, वह वणिक् है न कि वैश्य। इसलिये यदि जन्मकी अपेक्षा वर्णव्यवस्था माननी ठीक है, तो वणिकवृत्तिसे उसको वैश्य मान लेना सन्देहसे शून्य नहीं है। और यदि गुणकर्मोंकी अपेक्षा वर्णव्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्था है, तो उस कुमारके क्षत्रिय होनेमें जैसा कि महाराज कहते हैं, कुछ सन्देह ही नहीं है।

पृथ्वीसिंह—[महाराजके वयोवृद्ध काका]—विक्रमसिंह ! इस वादविवादके पहले तुम्हें उस कुमारकारका परिचय देना चाहिये कि, वह कहांका है और किसका पुत्र है ? और यदि उसके वर्णविषयमें तुम्हें सचमुच सन्देह है, तो सेवक भेजकर पहले उसे मिटा लेना चाहिये।

विक्रमसिंह—(हाथ जोडकर) महाराज ! वह विजयपुरके श्रीचन्द्र नामक वणिक्का पुत्र है। बस, इतना ही परिचय मुझे उसके विषयमें मिला है। परन्तु आपकी इच्छानुसार विजयपुरको मैं सेवकोंको भेज चुका हूं। वे लोग आते ही होंगे।

पुरोहित—उनके द्वारा उस कुमारकी जन्मपत्रिका आदि आपने मंगाई ही होगी। क्योंकि विवाह सम्बन्ध में तद्विषयक विचार भी अत्यावश्यक कार्य है। वर और कन्याकी जन्मकुंडलीसे जब तक यथोचित विधि न मिला ली जावे तबतक वह विवाह सम्बन्ध सुखकर नहीं होता।

विक्रमसिंह—परन्तु यह कार्य पीछेका है। मैंने विजयपुर नरेशसे केवल उसके वर्णकुलादि विषयमें पूछा है। वह सचमुच क्षत्रिय-पुत्र है जब तक यह निर्णय न हो ले, तब तक अन्य बातोंकी चर्चा करनी मैंने उचित नहीं समझी।

मंत्री—परन्तु मेरी समझमें इस समय यदि किसी बहानेसे वह कुमार यहां बुला लिया जावे, तो अच्छा होगा। ये सब लोग उसे समक्षमें देखकर आपकी सम्मतिके बहुत कुछ अनुगामी हो जावेंगे।

विक्रमसिंह—ठीक है। कुमारने मुझसे यहां शीघ्र ही आनेका वादा किया है, तथा आज एक सेवक और भी लेनेके लिये भेज दो। शेष विचार पीछे होगा।

मंत्री—जो आज्ञा।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पच्चीसवां पर्व ।

पाठक ! आइये, आज हम आपको एक रमणीय बगीचेकी सैर करावें, जो विलासपुरके पूर्वकी ओर बना हुआ है । इसके आसपास एक सुदृढ परिखा बनी हुई है, जिसे लांघकर वायुका भी साहस भीतर जानेका नहीं पडता । भीतर जानेके लिये केवल एक ही द्वार है, जहांपर शस्त्रधारी सिपाहियोंका सदा पहरा रहता है । किसी परिन्देकी मजाल नहीं, जो विना आज्ञा पर मार जाय । वह द्वार रमणीय पत्थरका बना हुआ है, जिसपर किसी चतुर शिल्पकारने सुन्दर वेले खोदी हैं, जो देखनेमें ऐसी जान पडती हैं, मानो पत्थरके साथ ढालकर निकाली गई हैं । उसमें जो पच्चीकारीके फूल बने हैं, वे ऐसे जान पडते हैं, कि मानो मालीने अभी २ तोडकर लगाये हैं । किवाडों पर भी नक्शागिरीका काम देखनेवालोंको चकित करता है ये किवाड चन्दनके हैं, जिन्हें खोलने पर उद्यानमें प्रवेश होता है । प्रवेश करते ही एक संगमर्मरका बना हुआ विशालप्राङ्गण मिलता है, जो दूरसे ऐसा भासता है, मानो दूधका सरोवर भरा हो । वीच २ में चतुर कारीगरों ने लाल पत्थरके (लालवर्दके) फूल ऐसी खूवीके साथ बनाये हैं, कि उन्हें देखकर असली कमलोंका धोखा हो जाता है आंगनके आसपास करीनेसे छोटी २ हरी दूव जमाई है । जिसके बीच २ में छोटे छोटे वृक्षोंके गमले रक्खे हुए हैं । खिले हुए फूलोंपर रंग बिरंगी मक्खियां उडती बैठती हुई एक अलौकिक छटा उत्पन्न कर रही हैं ।

समीप ही एक तालावसे लाई हुई नहर बह रही है, जिसके दोनों किनारे पक्के बन्धे हुए हैं । और एक प्रकारकी सुन्दर फूल और पत्तेवाली लतासे ढके हुए हैं । सारा बगीचा इसीसे सींचा जाता है । नहरके उस पार बडे बडे मंवेदार वृक्षोंकी श्रेणी है । बगीचेमें घूमनेके लिये जो छोटे छोटे मार्ग हैं, उनके दोनों ओर नन्हीं नन्हीं हरी सुकोमल घास लगाई गई है, और उनके पश्चात् जुही मालती, वेला गुलाव चमेली आदि अनेक प्रकारके सुगंधित फूलोंकी क्यारियां बनी हैं । नहरसे नल लगाकर बगीचेके चारों कोनोंपर चार बडे बडे होज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फव्वारा लगाकर बनाये गये हैं, जिनके किनारों पर सुन्दर संगमर्मरकी बैठके बनी हुई हैं। कभी कभी यहां बैठकर महाराज विक्रमसिंह की प्यारी कन्या सुशीला प्रकृतिकी शोभाको देखती हुई संसारकी विचित्रताका अनुचिंतन करती है। वह किसी भी पुष्प अथवा उसकी कलिकाको हाथमें लेकर विचारसागरमें घण्टों गोते लगाया करती है। वह सोचने लगती है कि, देखो कल जिसे निरी कली देखा था, आज वही अधखिली कलिका है और कल यही फूलकर परसों धराशायी होकर धूलिशात हो जावेगा फिर न कलीका पता लगेगा और न पुष्पका।

सुशीलाके विचार अत्युत्कृष्ट हैं। वह प्रत्येक बातमेंसे जो सिद्धांत शोधके निकालती है, वे कुछ अपूर्व ही होते हैं। वह यद्यपि अभी अविवाहित है, परन्तु विवाहित स्त्रियोंका क्या धर्म है, उसे वह भलीभांति जानती है। कुलीनवंशाद्भव पतिपरायणा स्त्रीयोंके धर्मका उसे खूब परिचय है। क्षमा, शील, सन्तोष प्रभृति धर्मोंने उसके हृदयको अपना विश्रामास्पद बना लिया है। सांसारिक नाना प्रपञ्चोंके समीरने उसके शरीरको कभी स्पर्श भी नहीं किया।

आज वही सरस्वती सुशीला अपनी रेवती आदि सखियोंके साथ इस उद्यानमें क्रीडा करनेको आई है नहरके किनारे टहलते टहलते रेवतीने चन्द्रिकासे कहा, चन्द्रिके! इस पारावतकी जोडीको तो देख, प्रमोदमग्न हुई कैसा नृत्यसा करती है और कुछ अस्पष्ट शब्दोंके कहने को गला फुला रही है।

चन्द्रिका—सखी! क्या तू नहीं जानती, वह अपनी जीवनमूर्ति सुशीलाको वधाई देनेके लिये उत्सुक और प्रफुल्लित हो रही है।

सुशीला—क्या कहा चन्द्रिके! कैसी वधाई?

रेवती-(बात काटके) इधर देखिए इधर! यह दूसरी जोडी आपके आगमनकी मानों प्रतीक्षामें है।

सुशीला-भला वह पक्षी जातिके सीधे साधे जीव मेरे आगमनकी प्रतीक्षा क्यों करने लगे?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रिका—(रेवती से) सखी ! रहने भी दे, अभी इनके दूध के दांत भी तो नहीं गिरे हैं। फिर ये भला इस मर्मको क्या जानें ?

सुशीला—(मुसुकुराकर) चन्द्रिके ! तुझे मेरी शपथ है। सच सच बतला, मैं कुछ नहीं समझी।

चन्द्रिका—हां ! आप क्यों समझने चलीं ? अब जब हम लोगों के भाग्य से पारितोषिक के मिलने का समय आया, तब आप स्वयं ही अनसमझ बनेंगी।

सुशीला—(रेवती से) भला सखी ! तू यह बता दे, यह चन्द्रिका क्या बक रही है ?

रेवती—वही कलकी बात ! बक क्या रही है, जिसे सरकार भी सुनकर मन ही मन खिल चुकी हैं।

सुशीला—(समझकर और कुछ रूखा-सा मुंह बनाकर) चल रहने दे, तुझे सदा हंसी ही सूझा करती है।

रेवती—क्यों क्यों सरकार ! क्या यों खफा होकर ही हमें टालना चाहती हो ? उसमें मेरा भी हक है।

चन्द्रिका—और मेरा ?

सुशीला इसका और कुछ उत्तर न दे सकी। लज्जा से उसका सिर नीचा हो गया। परन्तु मुख मण्डल पर एक मन्द मुसक्यान की रेखा झलक आई।

सुशीला ने सोचा था, कि अब इतने में ही चुक जाऊंगी। परन्तु सखियां कब मानने वालीं थीं, उन्होंने हंसी का दूसरा ढंग निकाला। रेवती जासूसी के कामों में बडी चतुर है और चन्द्रिका भी कुछ कम नहीं है। परन्तु चन्द्रिका रेवती से ठठोलपन में दो कदम आगे है।

बेचारी भोलीभाली सुशीला एक कुसुममयी बनलतिका के समीप खडी २ पीले २ पत्ते चुन रही थी कि अचानक साम्हने से चन्द्रिका को थोडा सा घूंघट निकाले मुसुकुराते हुए आते देखा। सुशीला ने पूछा, क्यों क्या है ?

चन्द्रिका—वाह सरकार ! क्या देखती नहीं हो, विजयपुर वाले शेठजी आ रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुशीला ने जो लौटकर पीछे देखा, तो एक नवयुवक को आते देखा। सिर पर छोटी सी कुसुमानी पगडी है, जिसमें मोतियों की सुन्दर कलङ्गी लगी हुई है। चमका हुआ जरदोजी के कामका रेशमी अङ्गरखा और उस पर खासी महाजनी चाल का दुपट्टा पडा हुआ है। अंगूठे को छूनेवाली नीची धोती सीधे जूता पहिने हाथ में एक फूलों का गुच्छा लिये हुए है। सुशीला देखते ही सहम गई। शरीर पसीने २ हो गया। थोडी देर अवाक् सी हो रही। पश्चात् कुछ रूखी सी पडके पुकारकर बोली, रेवती! रेवती! देख तो यह कौन ढीठ पुरुष इधर चला आ रहा है। एक अज्ञात पुरुष को यहां आने का कैसे साहस हुआ? और भला यह आया ही किस मार्ग से होगा? ठहरो, पिताजी से आज द्वाररक्षकों को कैसा इनाम दिलाती हूं कि, वे भी याद करैं।

जब रेवती का न तो उत्तर मिला और न वह इधर उधर दिखाई दी, और उस पुरुष को बराबर आगे बढते हुए देखा, तब तो सुशीला डरके चन्द्रिका के पास दौडी। चन्द्रिका बोली—हैं! हैं! ऐसी भाग भागकर कब तक रहोगी? यों भागती हो कि, आदर स्वागत करके अपने अतिथि को प्रसन्न करती हों। सुशीला क्रोध करके बोली—चन्द्रिका! चुप रह। ये तेरी हंसी का समय नहीं है, रेवती को बुला, वह कहां गई? इस असमसाहसी पुरुष को उसकी ढीठता का मजा चखावें और द्वार रक्षकों को बुला दे कि, इसे पकड कर पिता के पास ले जावें। चन्द्रिका बोली—हैं! हैं! चुप भी रहो। ये मुझे विजयपुर वाले जैसे लगते हैं। कदाचित् पिताजीकी आज्ञा से ही यहां आये होंगे अन्यथा किस की मजाल थी, जो यहां आता। अब जी खोलकर बातें कर लो, और खोटा खरा भी परख लो जिससे पीछे पछताना नहीं पडे।

यों चन्द्रिका बराबर छेडती जाती थी और सुशीलाका भय बढता जाता था। उसे एक बडा भारी भय यह लगा था, कि, कहीं उदयसिंह कोई चालाकी न करे। साथ ही रेवती के कथनानुसार बलवन्तसिंह के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नौकर होकर विलासपुर में रहने का भय उसे कम न था। सुकुमार-हृदय सुशीला के हृदय में अनेक संकल्प विकल्प उठकर उसे डरा रहे थे कि, वह अज्ञात पुरुष पास ही आखडा हुआ और बोला,—

देवकन्याओं! आज्ञा हो तो (हाथ से इशारा करके) इस लता-मण्डप के नीचे कुछ समय ठहरकर विश्राम ले लूं। यह सुनके सुशीला तो मुंह फेरकर बैठ गई। उसका हृदय धकधक करने लगा मुख मंडल पर स्वेदबिन्दु झलक आये, पाषाण हृदय चन्द्रिका को उसकी इस दशा पर कुछ भी दया न आई बोली,—हां हां पथिक! चैनसे विश्राम लो। पर यह तो कहो कि, आपका आगमन कहां से हुआ?

आगन्तुक—विजयपुर से।

चन्द्रिका—आपके नाम का परिचय क्या हम लोग पा सकती हैं?

आग०—मेरा नाम जयदेव है। मैं वणिक पुत्र हूं। मार्ग भूलके यहां आ निकला हूं। मुझे विलासपुर के महाराज के निकट जाना है। यहां थोडी देर ठहर के अपनी राह लगूंगा कृपा करके आप लोग भी अपना परिचय मुझे देगीं।

चन्द्रिका—(हंसी को रोक के) हो तो बड़े भाग्यवान्! आपका शकुन अच्छा हुआ। जिसे आप मार्ग भूलना कहते हो, सो देवने हाथ पकड के आपको अभीष्ट स्थान तक पहुंचा दिया है। यह उद्यान उन्हीं महाराज की कन्या का है कि, जिनके पाहुने आप आये हैं। (सुशीला से) सखी! रेवती जब तक आवे, तब तक इनका तू और नहीं तो वचनों से ही सत्कार कर।

सुशीला—(खीजकर) चन्द्रिका! देख, आज मैं माता से कहकर तुझे और रेवती को कैसा दण्ड दिलाती हूं। एक सर्वथा अपरचित पर-पुरुष जान पडता है, तू या रेवती ही बुला आई होगी।

चन्द्रिका—लो भला! अपनी बलाय पराये सर। तुम्हारे पिता ही बेचारे को बुला आये हैं और दंड दिलानेकी धमकी मुझ पर! अच्छा खैर विजयपुर पहुंचने पर तुम्हें आज की बात का उत्तर मिलेगा।

आगन्तुक—क्यों ये तुम्हारी कौन हैं, जो पीठ दिये बैठी हैं। क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरे यहां आ निकलने से उन्हें कुछ खेद पहुंचा है ?

चन्द्रिका—महाशय ! यह विलासपुर नरेश की कन्या हैं । नाम इनका सुशीला "यथा नाम तथा गुणाः" है । और मैं इनकी दासी हूं । माता की आज्ञा से यहां घूमने आई हैं ।

आगन्तुक—इनके पिता तो बडे उदार हैं, पर यहां तो संकीर्णता की पराकाष्टा है, जो एक गरीब मुसाफिर पर इतनी रुष्टता दिखला रही हैं ।

इतना सुनकर सुशीला अत्यन्त रुष्ट होकर कुछ कहना ही चाहती थी कि, उस नवयुवक ने अपने ऊपर का लिबास उतारकर फेंक दिया । जिसके फेंकते ही हंसता हुआ एक स्त्री का रूप निकल आया । और पास आके सुशीला के पैरों पर पड गया । सुशीला आश्चर्यविस्फारित नेत्रों से उसको देखने लगी ।

पाठक ! यह स्त्री और कोई नहीं, वही रेवती थी, जो किसी कार्य का बहाना करके वहां से चली गई थी, और फिर जयदेव का रूप धारण करके आई थी ।

इसके पश्चात् वे तीनों हंसती हुई वहां से उठ खडी हुई ।

छव्वींसवां पर्व ।

संध्या हुई । वरुणदिशा के पास सूर्यदेव आये । देखते ही उसके गालों पर ललाई दौड आई । बड़े प्रेम से उसने उनकी गुलाल से अभ्यर्थना की । क्षितिजमंडल पर दूर दूर तक गुलाल ही गुलाल नजर आने लगी ।

अस्ताचल पर्वत सूर्य देव को मस्तक पर धारण करके संसार को समझाने लगा कि, जो निरन्तर परोपकार करने में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे क्षीणपुण्यी होकर भी महत्पुरुषों के द्वारा पूजे जाते हैं ।

इस समय विलासपुर से नैऋर्त की ओर एक टीले पर कोई युवा खडा होकर विलासपुर की ओर अनिमिष नेत्रों से देख रहा है । जान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nariya, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पडता है किसी के आने की प्रतीक्षा कर रहा है। उसके हाथ में एक घोड़े की बागडोर है, जो पास ही कसा कसाया खडा है। ओर अपने मालिक का अनुकरण कर रहा है।

पूर्व दिशा की ओर से अन्धकारको दौडे हुए आते देखकर सूर्यदेव यह कहकर अस्त हो गये कि मैं अपने रहते हुए इस संसार को इस मलिनात्मा से दुःखी नहीं देख सकता प्रकाश लुप्त हो गया। पक्षीगण शोर मचाने लगे। मानों प्राणपति दिवानाथ के वियोग में दिगङ्गनाये रोने लगीं।

युवा को खड़े खड़े बहुत समय हो गया। अतएव वह थककर यह कहता हुआ बैठ गया कि, चलो थोडी देर और राह देख लूं कहीं ऐसा न हो कि, मैं यहां से जाऊं और पीछे बलवन्त आकर मेरे लिये दुःखी हो। वह अवश्य ही आता होगा। किसी कारण विशेष से ही अभी तक नहीं आ सका है।

थोड़े ही समय में अन्धकार ने सम्पूर्ण संसार को अपने रङ्ग रूप जैसा बनाकर स्पष्ट कर दिया "गुणदोषाः सदसत्प्रसङ्गजाः" अर्थात् गुण दोष सज्जन और दुर्जनों के प्रसंग से ही होते हैं।

इतने ही में किसी ने पीछे से आकर उस युवाके नेत्र अपने दोनों हाथों से बन्द कर दिये और एक बड़े जोर की हंसी हंसकर कहा "लो, मैं तुम्हारी इच्छा का पूर्ण करने वाला आ गया। अधीर मत होओ।" युवाने समझा बलवन्त आ गया परन्तु बलवन्तकी और इसकी आवाज में तो जमीन आसमान का फर्क है। तो क्या कोई दुश्मन मेरा भेद जानकर प्रतारणा के लिये आया है? इस प्रकार के विचार ने युवा को अधीर कर दिया। उसने बडे बलके साथ उस पुरुष के हाथोंको झटका देकर अलग कर दिया और सम्मुख होकर कहा—कौन बलवन्त?

आगत पुरुष ने हंस करके कहा, हां।

अन्धकारके आने के पश्चात् ही तारागण ऐसे दिखलाई देने लगे, मानों मित्र (सूर्य) वियोग के दारुण दुःख से आकाश मण्डल से आसुओं के चमकते हुए बिन्दु झड रहे हैं। उन्होंने अन्धकारमय संसार में थोड़ा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा प्रकाश कर दिया। युवा ने तारागणों के प्रकाश में देखा, हां करने वाला बलवन्त नहीं है, एक विकटाकार पुरुष है, जिसकी हाथ भर की लम्बी सफेद दाढ़ी लटक रही है। सिर पर एक बडा भारी सफेद फैटा बन्धा हुआ है। सारा शरीर नीचेसे ऊपर तक एक सफेद चादरसे ढंका हुआ है। युवा विस्मित होकर उसकी ओर ज्यों २ घूर के देखता था, त्यों त्यों वह सफेद पोश उसे चिढ़ाने के लिये बार २ हंसता था। आखिर युवा ने तलवार खींच ली और कडकके कहा, सच सच बता तू कौन है ? नहीं तो तेरी ढिठाईका तुझे अभी मजा चखाता हूं।

सफेदपोश—(निडर होकर) मजा चखोगे तो आप मैं तो यों ही उल्टी सीधी सुनू गा और मेहनत करूंगा।

युवा—(गुस्से) तो क्या तू मुझे मजा चखावेगा ?

सफेदपोश (मुसुकुराते हुए) जी हां !

युवा—आखिर तेरा नाम क्या है ?

सफेदपोश—वही, जो आपने लिया था !

युवा—मैं तुझ जैसे पिशाच का नाम क्यों लेने लगा ?

सफेदपोश—एक बार क्या आप तो नित्य हजार बार लेते हैं ?

युवा—मुझे मालूम पडता है, धोखा देकर तू बलवन्त बनना चाहता है। परन्तु पहले जरा अपनी शकल तो देख तब यह हौंसला करना।

सफे०—मैं अपनी शकल तो देखता हूं, परन्तु हुजूर भी तो जरा अपनी ओर होश सम्हाल के देखें।

युवाने घबडा कर आश्चर्य से ज्यों ही अपनी ओर देखा, त्यों ही वह विकट पुरुष अपने ऊपरके चादर और फैंटा फैंकके खडा हो गया। फैटे के साथ ही दाढी भी न जाने कहां चली गई। युवाने फिर से, देखा तो उसके साम्हने उसका मित्र बलवतसिंह खडा हुआ मुसुकुरा रहा है। युवा आश्चर्यान्वित होकर बोला हैं ! बलवन्त ! तुम कहां थे, मैं तो तुम्हारे लिये बडा व्यग्र हो रहा था।

बलवन्त—मैं तो हुजूर के साम्हने कभी का खडा हूं, परन्तु मेरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे एक बुड्ढा खडा था इससे शायद आपकी नजर मुझ पर नहीं पडी होगी। देखिये! अब मैंने उस बुड्ढे की क्या दशा की है, वह जमीन पर पडा हुआ सिसक रहा है। आपसे गुस्ताखी करने का मजा उसे मिल चुका है।

युवा—(लज्जित होकर, हंसते हुए) भाई बलवन्त! तुम्हारी छोटेपन की शरारत अभी तक नहीं गई। आज तो तुमने मुझे खूब ही छकाया। परन्तु तारीफ है, मैं बिलकुल नहीं पहिचान सका। वाह! उस वक्त तुम बोली भी क्या विचित्र प्रकार की बोले थे। पर यह तो कहो कि तुम अभी कहां से आ रहे हो? मैं तो विलासपुर की ओर न जाने कब से टकटकी लगाये बैठा हूं।

बलवन्त—ठीक है आप विलासपुर की ओर टकटकी न लगायेंगे सुशीला देवी का ध्यान न करेंगे, तो भक्त पुरुषों की श्रेणी में से आप का नाम ही न निकाल दिया जावेगा? मैं विलासपुर की ओर से ही आ रहा हूं, परन्तु सीधा मार्ग छोडकर जिसमें कोई पहिचान न सके, यहां टीले के नीचे से आपको दखकर मुझे आपको छकाने की सूझ आई, इससे चक्कर लगाकर पीछे की ओर से आ खडा हुआ था। पर आपका ध्यान भङ्ग नहीं हुआ।

युवा—(प्रसन्न होकर) अस्तु। अब यह कहो, तुमने इतने दिन विलासपुर में रहके क्या किया, और अभी अपनी इष्ट सिद्धि में क्या विलम्ब है?

बलवन्त—यह तो आप मेरी चिट्ठी से जान ही चुके हैं कि मैं विक्रमसिंहका अत्यन्त विश्वासपात्र नौकर हो चुका हूं, और उनके दरबार में निरन्तर रहता हूं, तब से अब तक मैं अहर्निशि इसी प्रयत्न में रहा हूं, किसी प्रकारसे आपकी प्यारी सुशीला गायब करदी जावे परन्तु इस तरह से, कि महाराज को किसी प्रकार से हम लोगों पर सन्देह न हो कि, यह शरारत उदयसिंह की है। नहीं तो वे सूर्यपर राज्य को गारत कर डालेंगे। सूर्यपुर राज्य में अभी इतना बल नहीं है कि, वह विलासपुर से विरोध कर सके। सिवाय इसके यदि आपके पिता को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(निहालसिंह को) आपका यह चरित्र मालूम हो जावेगा, तो और बडी विपत्ति आवेगी। इन सब बातोंको सोचकर मैंने अनेक प्रयत्न किये और वे सिद्ध भी होजाते, परन्तु अफसोस है, उस हरामजादी रेवतीके मारे सब पर पानी फिर गया। विलासपुरमें एक रेवती ही ऐसी है, जो मुझसे चौकन्ना रहती है। और जानती है कि, यह कुछ दगा करेगा! अन्य सब ही मुझे राज्यका सच्चा शुभचिन्तक समझते हैं। और तो क्या आपकी प्राणप्यारी सुशीला भी मुझे विश्वस्त समझती है, और रेवतीको मेरी ओरसे सशंकित रहते देख उसे चिढाया करती है। यदि रेवतीको मैं अपने हाथमें ले पाऊं, तो समझिये 'पौबारह' हैं। वह ऐसी विचित्र जासूस है कि, पत्तेके खडकनेसे भी चौकन्ना हो जाती है। उस दिन मैंने हरिहरको आपके पास एक चिट्ठी लेकर भेजा था कि, उसने रास्तेमें ही गिरफ्तार कर लिया। न जाने उसे उसपर क्यों सन्देह हो गया। बडी खैर हुई कि, वह चिट्ठी उसके हाथ नहीं पडी। हरिहर अपनी चतुराईसे उसे स्वयं निगल गया और बडी सफाईके साथ बच गया। इस तरह अपने मार्गमें एक वही कांटा बन रही है। पर क्या चिन्ता है, मैं रेवतीकी सब चालाकियोंका बदला एक ही दिनमें चुका दूंगा।

उदयसिंह—(एक दीर्घनिःस्वास लेकर) अफसोस, बलवन्त! न जाने तुम कब बदला चुकाओगे। मैं अभीतक तुम्हारे ढाढससे ही जी रहा हूं। आज मुझे बडी उम्मेद थी कि, तुम कोई ऐसी बात सुनाओगे, जिससे मैं फूला अंग नहीं समाऊंगा। परन्तु तुम्हारी बातोंसे तो उलटे मेरे हाथ पैर टूट गये। हाय! अब निश्चय हो गया कि, प्यारी सुशीलाके सौंदर्य—यज्ञमें मेरा निःसन्देह हवन होगा। अब ये प्राण अपनी प्यारीका वियोग अधिक समय तक सहन नहीं कर सकेंगे। अब तो एक एक दिन कल्पकाल जैसा बीतता है। "हा! हन्त प्रमदा-वियोग समयः कल्पान्तकालायते" कहांतक धैर्य्य धारण किया जावे। (आंखों-में आंसू लाकर) हाय! सुशीले! तुम्हारी उस दिनकी दोलाक्रीडावाली छवि यद्यपि सुहावनी और मनोहरी थी, और इसलिये वह हृदयमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धारणकी गई थी, परन्तु उससे चित्तको शान्तिता मिलनेके बदले उत्ताप मिला रहा है ! यदि मैं यह जानता कि, तुम्हारे जगन्मनोहारी रूपामृतका पान करनेसे आनन्दके स्थानमें दाह उत्पन्न होगी, तो मैं उस उद्यानमें एक क्षणभर भी खडा नहीं रहता। यदि कामदेव तुम्हारी रूपराशिका सचमुच रक्षक हुआ है, और मैंने उस रूपराशिको अपने हृदयसे लगानेकी इच्छा की थी, इस कारण वह कुपित होकर अपने पंचबाणोंसे मेरे हृदयको जर्जर कर रहा है, तो अब कृपा करके उसे रोक दें। मैं उन बाणोंको सहनेके योग्य नहीं हूं। मेरा जीना अब कठिन है। इस संसारमें अब मेरा कोई सहायक नहीं है। प्यारे बलवन्त ! एक तुमसे आशा थी, परन्तु अफसोस ! तुमसे भी कुछ नहीं हुआ। बस, मेरा डेरा कूच है। जब प्यारी सुशीला ही नहीं मिली, तो अब संसारमें जी कर क्या करना है ?

बल०—(हाथ पकडकर) उदयसिंहजी ! आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं ? मेरे जीते जी आपको इसप्रकार दुर्दशाके चक्करमें नहीं पडना होगा। आप शीघ्र ही अपनी प्यारीको पाकर प्रसन्न होंगे। बहुत करके इसी महीनेमें उसका विवाह हो जावेगा, और वह अपनी ससुराल्को विजयपुर चली जावेगी। फिर वहां (विजयपुरमें) हम बडी सरलतासे अपना काम कर सकेंगे।

उदय०—[एक और बडी आह खींचकर] हाय ! तो क्या अब सुशीला किसी दूसरेकी हो जावेगी ? बलवन्त ! पत्थर पडे, तुम्हारी समझपर। तुम्हें ऐसी दशामें भी आशा नहीं छोडती ? अफसोस !

बलवन्त०—अच्छा, तो मैं आशासे पीछा छुडाये लेता हूं, अर्थात् निराश हुआ जाता हूं। चलिये आप भी अपने घर चलकर आनन्द कीजिये। सुशीला तो दूसरेकी होती ही है।

उदय०—प्यारे मित्र ! इस तरह ताने मारकर मुझे दुःखी मत करो अभी मैं इस योग्य नहीं हूं। इस समय ऐसी सलाह दो, जिससे मेरे सन्तप्त चित्तको कुछ शांतिता मिले। क्या विवाह मुहूर्तके पहले हम लोगोंके लिये कोई ऐसा प्रयत्न नहीं हो सकता कि, वह दुःखकर विवाह ही न होवे। अथवा जैसा तुम कहते हो, विवाह होनेपर क्या विजयपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi .

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से हम अपने मनोरथको सफल कर सकेंगे, ऐसी पूर्ण आशा है ?

बलवन्त०—मित्रवर ! परिश्रम करनेसे जो कुछ होगा, उसमें तो किसी प्रकारकी कमी की नहीं जावेगी, यथासाध्य करूँगा ही । तौ भी विलासपुरके रङ्ग ढङ्ग देखकर सफलताकी आशा नहीं की जा सकती । परन्तु विजयपुर पहुचनेपर तो निश्चय ही समझिये । वहांपर मैंने एक ऐसे मौकेकी बात सोच रक्खी है कि, उसमें कोई विघ्न ही नहीं आ सकता । सुशीला आपके घर आ जावेगी, और किसीको गुमान भी नहीं होगा, कि वह कहां गई । फिर क्या है, आपको विहारके लिये इन्द्रकानन मिलेगा मुझे धन्यवादोंका ढेर ।

उदय०—(प्रसन्नतासे बलवन्तको हृदयसे लगाकर) प्यारे मित्र ! क्या वह दिन मुझे इस जीवनमें प्राप्त होगा ?

बलवन्त०—अवश्य ही होगा, बहुत शीघ्र होगा । (कुछ सोचकर) अच्छा तो अब मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये । क्योंकि मैं किसीसे कुछ बिना कहे सुने ही चला आया हूं । ऐसा न हो कि, मेरी ओरसे किसी को कुछ सन्देह करनेका अवकाश मिल जावे । हां ! एक बात आपसे पूछनेको रह गई । मैंने सुना था कि, आपको विजयपुर नरेशने कैद कर लिया था । क्या यह सच है ?

उदय०—हां ! वहां सीमा प्रांतका झगडा उठ खडा हुआ था । आखिर उसका निवटारा हो गया । दूसरे दिनही संधिपत्र पर हस्ताक्षर करके हम लोग सूर्यपुर लौट आये थे । किन्तु मित्र ! यदि जीते रहे, तो भूपसिंहसे इस कैदका बदला अवश्य ही चुकावेंगे । बड़े धोखेसे उसने हमको कैद किया था, नहीं तो बेचारेकी क्या ताकत थी, जो मेरे साम्हने आता । अस्तु, इस विषयमें तुमसे बहुत कुछ बातचीत करना है, जो कभी समयपर करूंगा । अभी तुम्हें समय नहीं है । जाओ । परन्तु अब आगे कब और कहां मिलोगे, इसकी प्रतिज्ञा किये जाओ । तुमसे मिलनेसे मुझे बहुत कुछ धीजर बंध जाता है ।

बलवन्त०—अच्छा तो लीजिये जुहारु, मैं जाता हूं । इसी टीलेपर फिर मिलूंगा । समयकी सूचना और उस ओरके सब समाचार आपको हरिहरके द्वारा ही मिला करेंगे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके पश्चात् दोनों मित्र एक दूसरेसे विदा हुए। कृष्ण तृतीयाका चन्द्रमा पूर्व दिशाकी ओरसे आरक्तवर्ण धारण किये हुए निकल आया दोनों पापी और-मलिनात्माओंके साथ २ अन्धकार भी वहांसे खिसकनेकी तैयारीमें लगा।

सत्ताइसवां पर्व।

दिनके ११ बज चुके हैं।। विलासपुर नरेशका दरबार भरा हुआ है। सब लोग यथास्थान बैठे हुए अपने २ कार्योंमें लग रहे हैं। इतनेमें एक सेवकने आकर महाराजके हाथमें अदबके साथ एक पत्र दिया। महाराजने उसपर विजयपुर नरेशकी मुहर देखकर उत्कण्ठासे मंत्रीके हाथमें देकर उच्च स्वरसे पढ़नेको कहा। आज्ञा पाकर मंत्रीने इस प्रकार पढना प्रारंभ किया :—

नमः श्रीगणधर देवाय।

स्वस्तिश्री विविधवैभवसम्पन्न विलासपुर मनोज्ञराजधान्यां विराजमान सकलकलाकुशल न्यायमूर्ति धीरवीर महाराज विक्रमसिंहप्रति, विजयपुर भूपाल रणवीरसिंहका प्रेमपुरस्सर 'जुहारु' प्रवेश हो। शमुभयत्रापि। अपरंच——

बहुकालके पश्चात् भवदीय पत्र प्राप्त हुआ। उत्तरमें निवेदन है कि, हमारे यहांके श्रीचन्द्र जौहरी एक प्रसिद्ध व्यवसायी हैं। इनके पिता एक क्षत्रियकुलके वीर थे, और विजयपुरमें नौकरीके लिये आये थे। एक जौहरीकी नौकरीमें उनके भाग्यका सितारा ऐसा चमका कि, थोडे ही दिनोंमें वे लक्षावधि द्रव्यके स्वामी होकर प्रसिद्ध रत्नपरीक्षक हो गये। समय ऐसा पलटा कि, आज बहुत थोड़े लोग इस बातको जानते हैं कि श्रीचन्द्र वणिक है, अथवा क्षत्रीपुत्र।

श्रीचन्द्रका पुत्र जयदेव हमारे राज्यका एक आभूषण है, यदि उस पर किसी सम्बंधके अभिप्रायसे आपकी दृष्टि गई है तो कहना होगा कि, आप भी एक सच्चे रत्नपरीक्षक हैं। विज्ञेष्वलमिति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्रके सुनते ही सब लोगोंका हृदय आनन्दसे उछलने लगा महाराजके नेत्रोंमेंसे प्रेमाश्रु निकल पडे। इतनेमें ही द्वारपालने आकर निवेदन किया कि, द्वारपर दो सैनिक खडे हुए भीतर आनेकी आज्ञा चाहते हैं। कहते हैं, हमको महाराजसे मिलना है। आज्ञा हुई कि उन्हें आने दो। थोडे समयमें दो नवयुवक सैनिक वेषमें आते हुए दिखलाई दिये जिन्हे देखते ही महाराज प्रफुल्लित होकर अपने आसनसे उठ बैठे और यह कहते हुए आगे जाकर उन्होंने एक युवाका हाथ पकड लिया "प्रिय जयदेव! तुम आगये? अच्छा हुआ।" दोनों युवाओंने पूज्यदृष्टिसे महाराजको मस्तक नवाया। महाराजने आशीर्वाद देकर अपना आसन ग्रहण किया; और पास ही दोनों युवाओंको बैठने का अनुरोध किया। युवा विनयपूर्वक बैठ गये।

महाराज—जयदेव। सबसे पहले मैं यह जानना चाहता हूं कि, ये तुम्हारे साथ कौन महाशय हैं?

जयदेव—(नम्रतासे) ये विजयपुरनरेश महाराज रणवीरसिंहके पुत्र और मेरे परम मित्र भूपसिंहकुमार हैं। आपके दर्शनोंकी अभिलाषासे ये भी मेरे साथ चले आये हैं।

महाराज—(भूपसिंहकी ओर स्नेहदृष्टिसे देखकर) तब तो मेरे अहोभाग्य समझना चाहिए, जो आज मेरे परममित्र महाराज रणवीरसिंहके सर्वकलाकुशल और शूरवीर पुत्र भूपसिंह अतिथि हुये हैं।

भूपसिंह—मैं तो आपका पुत्र स्थानीय सेवक हूं। मेरे अहोभाग्य है, जो आज आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं।

महा०—परन्तु तुम जैसे सत्पुत्रोंकी सेवकाई पानाभी तो अहोभाग्य है।

इसके पश्चात् कुशलप्रश्न हो चुकनेपर महाराजने मन्त्रीको इशारा किया कि, समय अधिक होगया है, ये बाहरसे थके हुए आ रहे हैं। शीघ्र ही इनके ठहरनेका राज्योचित प्रबंन्ध करो। मंत्री दोनों कुमारोंको लेकर दरबारसे उठ खडे हुए और एक सुन्दर सजे सजाये महलमें जिसमें अनेक दास दासियां सेवकाईके लिये प्रस्तुत थीं, ले जाकर उन्हें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठहरा दिया। उस समय भूपसिंहने मुसुकुराकर जयदेवसे कहा—मित्रवर मेरे अनुमानमें सन्देह नहीं है बस "पौ बारह" हैं।

कुमारोंके चले जानेपर महाराजने अपने वयोवृद्ध काका महाराज पृथ्वीसिंहसे हाथ जोडके कहा—महाराज! यही जयदेव सुशीलाका भावी पति हो, ऐसी मेरी इच्छा है। यह क्षत्रियपुत्र है, यह तो आप विजयपुरकी चिट्ठीसे जान ही चुके हैं। प्रत्यक्षदर्शन शेष था, सो भी आज हो गया। अब कृपाकरके सम्मति दीजिये कि, यह सम्बन्ध किया जाये या नहीं? यदि इस विषयमें और भी कुछ अन्वेषण करनेकी आवश्यकता हो तो वह भी कहिये।

पृथ्वीसिंह—विक्रम! मेरी तुष्टि हो चुकी। कुल और वर दोनों देख लिये, दोनों ही उत्कृष्ट और सुन्दर हैं। वरकी विद्वत्ताकी प्रशंसा जो तुम्हारे द्वारा पहिले बहुत कुछ सुनी जा चुकी है, वह वरकी मुखमुद्रा से स्पष्ट प्रकट होती है। अब इससे अधिक छानबीन करना ही क्या है? बस, मेरी आज्ञा है कि, अब विलम्ब मत करो, शीघ्र ही विवाहका मुहूर्त निश्चित कराओ। इस भाग्यशाली जोडीकी कुण्डली हम समझते हैं, विधाताने पहले ही से मिलाके रक्खी होगी। पुरोहितजीको अधिक कष्ट नहीं उठाना पडेगा।

पुरोहित—महाराज! मेरा भी ऐसा ही अनुभव है। प्रायः जब एकसे रूप गुणसम्पन्न वर कन्याओंके सम्बन्ध होते हैं, तब जन्मकुण्डली स्वयं मिल जाती है।

विक्रम०—(पृथ्वीसिंहसे) और वरके पितासे आज्ञा लेनेके लिये क्या करना होगा?

पृथ्वीसिंह—दशपांच सेवकोंके साथ पुरोहितजीको विजयपुर भेज देना होगा। बस यह ही सब कार्य सिद्ध कर लावेंगे। मेरी समझमें श्रीचन्द इस सम्बन्धको अतिशय प्रसन्नतासे स्वीकार करेंगे। तबतक यहां विवाहकी तैयारियां होनी चहिये। और विवाहकी खुशीमें अपने राज्यमें स्थान स्थान पर सदावर्त और औषधालय खोल देना चाहिये, तथा बंदीगृहके सम्पूर्ण कैदियोंको छोड देना चाहिये। सम्पूर्ण जिनमन्दिरोंमें भगवज्जिनदेवके पंचकल्याणक महोत्सव होना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋषि मुनि और श्रावक श्राविकाओंको शास्त्रकार्यालयमेंसे नवीन ग्रन्थ लिखवा लिखवाकर अथवा छपवा छपवाकर दान करना चाहिये।

विक्रम०—ऐसा ही किया जावेगा।

इसके पश्चात् दरबार बरखास्त हुआ सब लोग आपसमें आनन्द-वार्ता करते हुए अपने अपने स्थानपर गये। दरबारी लोग अनेक दिनों की छुट्टी और नानाप्रकारके पारितोषिक मिलनेके स्वप्न देखने लगे। थोडे ही समयमें सुशीला और जयदेवके विवाह समाचार नगर भरमें फैल गये।

महाराज विक्रमसिंहके आनन्दकी कुछ सीमा नहीं रही। विजयपुर से इच्छितपत्रका आना, तत्काल ही जयदेव और भूपसिंहके दर्शन होना, साथ ही वृद्ध काकाकी सम्मति मिल जाना, इस प्रकार एकसे एक अधिक हर्षके विषय एकपर एक उपस्थित होनेसे हर्षोत्फुल्ल होकर वे अपने आपको भूल गये। महाराजके इस हर्षका अनुभव वही कर सकते हैं, जिन्हें ऐसे अवसर एकपर एक प्राप्त हुए हैं। संसारमें अभीप्सित विषयोंके मिलनेपर किसको हर्ष नहीं होता ? महाराजकी एक अघटनीय इच्छा आज पूर्ण हो गई, अतः उनके हर्षका पता लगाना सचमुच कठिन है।

अट्ठाईसवाँ पर्व।

विलासपुरमें विद्युद्वेगसे चारों ओर यह खबर फैल गई कि, महाराज की कन्या सुशीलाका विवाह विजयपुरके श्रीचन्द्र जौहरीके पुत्र जयदेवके साथ होंना निश्चय हो गया है और जयदेव अपने मित्रके साथ विलासपुर आये हुए हैं। बस इस बातकी चर्चा घर घर होने लगी। युवा पुरुषों में वरकन्या के रूप और गुणोंकी तुलना होने लगी, बहुदर्शियोंमें दोनों कुलोंके इतिहासकी छिडी, और विद्वानोंमें दोनोंकी विद्याविलासिता सम्बन्धी वादविवाद होने लागी। परन्तु एक और मूर्ख स्त्री समाजमें जो आलोचनाका स्टीम चला वह सर्वोपरि था।

सुशीलाका पिता कितना धनी है, सुशीलाके शरीरपर कितने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आभूषण है, महाराज विक्रमसिंह अपने जमाईको कितना दहेज देंगे, अमुक राजकुमारी सरीखा विवाह अब काहेको किसीका होता है, श्रीचन्द्र एक साधारण बनिया है, वह महाराजकी होड कैसे कर सकेगा ? बहिन ! सुशीला पढी लिखी है तो क्या हुआ, पर उसका भाग्य अच्छा नहीं निकला। राजकुमारी होकर बेचारी एक बनियेके घर पर जावेगी।

बीचमें एक दूसरी बुद्धिमतीने उत्तर दिया—वाह ! तू भी बावली हुई है। महाराजके अब दूसरा है ही कौन ? जयदेवके ही घर जमाई बना लगे, फिर सुशीलाको दुःख ही क्या होगा ? दूसरीने कहा—वाह ! ऐसा क्या श्रीचन्द कङ्गाल है जो अपने बेटेको दूसरेका कर देगा ? वह भी तो एक जौहरी है, जौहरीके धनका क्या पार है ? इस प्रकार जगह २ मनोरथोंके घोडे दौडने लगे ।

जयदेव अपने मित्र भूपसिंह सहित एक स्वतंत्र राजभवनमें ठहराये गये थे। दूसरे ही दिनसे दर्शकोंकी आलोचकोंकी और परीक्षकोंकी असीम भीड उनके निकट रहने लगी। जितने लोग आते थे, सब ही इन कुमारोंसे मिलकर प्रसन्न होते थे । जो जिस स्वभावका पुरुष आता था, ये दोनों उसीके अनुकूल हो जाते थे। बडे बडे विद्वानोंके मुखसे द्वारपर लौटते हुए साधु ! साधु ! शब्द ही सुनाई पडता था। काव्य, अलंकार, व्याकरण, न्यायादि सब विषयोंको प्रासंगिक आलोचनासे सबहीको उनके पास आनन्द प्राप्त होता था ।

तीसरे दोन पुरोहित महाशय विजयपुरसे विवाहकी स्वीकारता लेकर वापिस आ गये। अर्थात श्रीचन्द्रजीने यह सम्बन्ध प्रसन्नता पूर्वक स्वीकर कर लिया। थोडासा सन्देह था वह भी दूर हो गया, इससे महाराज विक्रमसिंहको सीमार्विक आनन्द हुआ। चारों ओर आनन्द के बाजेये बजने लगे, विवाहकी तैयारियां होने लगीं। वैशाख शुक्ला २ के शुभ मुहूर्तमें पाणिग्रहणका निश्चय हुआ। जयदेव और भूपसिंहकी विदाई की गई, बडे ठाठवाटसे वे विजयपुर पहुंचाये गये।

❀ ❀ ❀

अब यहांपर हम दोनों ओरकी विविध तैयारियोंका हाल लिखकर पाठकोंका समय नष्ट नहीं करना चाहते हैं। पाठक स्वयं विचार लेवें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि, एक पराक्रमी नरेश और दूसरे एक धनुकुवेर जौहरीने इस कार्यमें कितनी उदारता न दिखलाई होगी ? विजयपुरसे बडी प्रभावशाली बारात आई। विजयपुरके नरेश स्वयं महाराज रणवीरसिंह जिस बारात में आये, फिर उस बारातमें त्रुटि ही किस बातको होगी ?

जिस प्रकार महाराज विक्रमसिंहकी उदारतासे उनके राज्यमें चारों ओर आनन्द ही आनन्द की मूर्तियां दृष्टिगोचर होती थीं, उसी प्रकार श्रीचन्द्र की उदारता से विजपुर राज्य हराभरा हो गया था। यों तो श्रीचन्द्र की ओर से विजयपुर राज्य में पहले से अनेक सदावर्त चलते हैं, परन्तु इस पुत्र विवाह की खुशी में उन्होंने धनको पानी से भी हलका बना दिया था।

शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में ऋषिप्रणीत वैवाहिक विधि के अनुसार पाणिग्रहण हुआ। कन्या के माता पितादिक ने जिस समय कहा, कि हे कुमार ! यह कन्या हम लोग आपको चरण सेवा के लिये देते हैं, इसको ग्रहण कीजिये और इसकी धर्म पूर्वक पालना कीजिये, और उत्तर में लज्जावनत मस्तक जयदेव ने "वृणेहम्" कहकर "धर्मणार्थेन कामेन पालयामि" यह वाक्य कहे, उस समय प्रायः सभी दर्शकों के नेत्रों से दो २ चार २ प्रेमाश्रु झड पड़े।

आहा ! दोनों ही ओर के कैसे सुन्दर वाक्य थे, जिनसे आर्यकुल के पुरुष स्त्रियों का कर्तव्य क्या है, सर्वथा स्पष्ट हो जाता था। स्त्री का धर्म है कि, वह अपने पति की चरण सेवा करके अपना जीवन व्यतीत करे और पुरुष का कर्तव्य है कि, धर्म, अर्थ और काम पूर्वक उसका पालन करे। जो स्त्री और जो पुरुष विवाह-समय में कहे हुए उपर्युक्त वाक्यों का स्मरण नहीं रखते हैं, वे न केवल अपनी प्रतिज्ञा का ही घात करते हैं, वरन् भगवद्वाक्यों का निरादर करके पापोपार्जन भी करते हैं। क्योंकि भगवान् का शासन यही है कि, गृहस्थ जीवन में पुरुष और स्त्रियोंको एक दूसरे का सहायक होकर कालक्षेप करना चाहिये। गृहवासियों का यही धर्म है और इसीमें उनका कल्याण है।

विवाह कार्य समाप्त हो गया। श्रीचन्द्र ने महाराज विक्रमसिंह के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृदय से लगकर विदाई मांगी। उस समय विक्रमसिंह ने महाराज रणधीरसिंह से और श्रीचन्द्र से अतिशय नम्र होकर यह प्रार्थना की कि, आप लोग कृपा करके अपने दोनों पुत्रों को थोडे दिनके लिये यहां और छोड जावे, तो वहुत अच्छा हो, अन्तःपुर की ओर से इस विषय का विशेष आग्रह हो रहा है। मैं बहुत शीघ्र ही उनके भेजने का प्रबन्ध कर दूंगा। महाराज की प्रार्थना अस्वीकर नहीं हो सकी, बडे स्नेह से दोनों ओर से सम्बन्धी गण गले लगकर मिले और पीछे विदा हुए। धूमधाम के साथ बारात विजयपुरकी ओर लौटी।

जयदेव और भूपसिंह स्वतंत्र राजभवनमेंठ हराये गये। सुशीला की समवयस्क सहेलियों ने दोनों कुमारों से आमोद प्रमोद की मीठी २ छेडछाड शुरूकी। रेवती ने एक दिन बागमें टहलते हुए सुशीला से कहा, क्यों सरस्वतीजी! अब तो आप विजयपुर के सेठजी के नाम से नहीं चिढोगी, यदि आज्ञा हो, तो उस दिनकी बात सेठजीको बुलाकर कह दूं। सुशीला ने इसके उत्तर में मुसुकुराकर रेवती के गाल पर एक चपत जमा दी। सबकी सब सखियां खिलखिलाकर हंस पडी।

उनतीसवां पर्व

जयदेव और भूपसिंह एक महीने विलासपुर में रहे। ऐसा न समझना चाहिये कि, दोनोंने ये दिन केवल आमोद प्रमोद में ही खो दिये। इस बीचमें उन्होंने विलासपुरके नामी २ पण्डितों, राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों से खूब परिचय कर लिया। उनसे वार्तालाप करके उन्होंने अपरिचित कीर्तिका सम्पादन किया।

राज्य मन्त्रियों से, सेनापतियों से और विविध कार्याध्यक्षों से मिलकर उन्होंने राज्यव्यवस्थाकी खूब ही पर्यालोचना की और जो जो त्रुटियां राज्य कार्यों में जान पडीं उन्हें बडी सरलता से मंत्रियोंको समझा दी। सरस्वती पाठशाला का दो बार निरीक्षण किया और प्रसन्न होकर बालिकाओं को पारितोषिक दिये। तीसरी बार पाठशाला में फिर जाने की इच्छा थी, परन्तु एक दिन बगीचे में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टहलते समय सुशीला की सखी चन्द्रिका जयदेव से छेड बैठी कि, कुंवरजी ! सरस्वती (पाठशाला) के देखने के लिये बार २ आप इतने अधीर क्यों होते हैं, अब वह किसी दूसरे की थोडे ही हो जावेगी। बस, जयदेव फिर सरस्वती पाठशाला को देखनेके लिये नहीं गये।

एक महीना बीत चुका, भूपसिंह ने महाराज से विदाई की प्रार्थना की और कहा—महाराज ! यद्यपि हम लोग यहां आपकी सेवा में रह कर अपने माता-पिता के लाड चावको भूल गये हैं, तथापि बहुत दिन हो चुके हैं, वहां के लोग भी उत्सुक हो रहे होंगे, इसलिये अब हम लोगों को जानेकी आज्ञा दीजिये। महाराज ने आत्मभाव से कुमारों की इच्छा रोकना ठीक नहीं समझा, इसलिये उन्होंने दूसरे ही दिन महाराणी की सम्मति पूर्वक विदाई का दिन निश्चित कर दिया।

विदाई का समय आ पहुंचा। महाराणी मदनवेगा ने सम्पूर्ण सौभाग्यालङ्कारों से सुसज्जित सुशीला को अपने पास बिठाया और गले से लगाकर कहा—प्यारी बेटी ! लोकरीति के अनुसार मुझे अपने प्राण को आज अपने से अलग करना पडता है। तुझे अब एक नवीन संसार में जाकर अपना जीवन व्यतीत करना होगा। यदि लोकरीति दुर्निवार न होती, तो बेटी ! तुझे मैं अपनी आंखों के सामने से कभी नहीं टलने देती, परन्तु क्या करूं, कुछ वश नहीं है। अब तू जाती है, अतः इस समय माता का जो धर्म है, उसके अनुसार मेरा कर्तव्य है कि तुझे कुछ उपदेश दूं। परन्तु यथार्थ में तुझे समझाने की कुछ आवश्यकता नहीं है क्योंकि तू स्वयं पंडित है।

माता को सबसे बडी चिन्ता इस बातकी रहती है कि मेरी लडकी अपने ससुराल में न जाने किस तरहसे रहेगी, परन्तु सरस्वती बेटी ! मुझे इसकी सर्वथा चिन्ता नहीं है। तुझ जैसी सुशिक्षित पुत्री से दोनों ही कुल शोभायमान होंगे, यह मैं अच्छी तरह से जानती हूं। तेरे दूरदर्शी पिताने जिस प्रकार तुझे सब प्रकार से पढा लिखाकर विदुषी बनाया है, और निर्दोष संगति में रखकर जिस प्रकार सदाचार के सांचे में तुझे ढाला है सौभाग्य की बात है कि उसी प्रकार का बल्कि उससे बढकर विद्वान् और निष्कलङ्क पति भी तुझे मिला है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री जिनेन्द्रदेव के प्रसाद से तेरे आगामी संसार में मुझे किसी प्रकार की त्रुटि नहीं दिखाई देती है। गृहस्थ जीवन की सफलता पति की अनुकूलता, गृहकार्यों में सुदक्षता, गुरुजनों की सेवा और देव गुरु शास्त्र की सच्ची भक्ति में है।

सासारिक दृष्टि से स्त्रीका मुख्य प्राण पति है और पति का मुख्य प्राण पतिप्राणा स्त्री है। जहा ये दोनों भाव नहीं हैं, वहां सुख नहीं है। स्त्रीकी अन्वर्थ संज्ञा गृहिणी है, और उसे गृहणी तभी कह सकते हैं, जब वह गृहकार्यों में दक्ष होकर गृह की अधिकारिणी हो। गुरुजनों की सेवा करना स्त्री का परमधर्म है, क्योंकि सेवा से वे प्रसन्न होते हैं उनकी प्रसन्नता प्रत्येक व्यक्ति को आशीर्वाद स्वरूप होती है। जो स्त्री गुरुजनों की सेवा नहीं जानती है, वह अतिशय कृतघ्नी है।

सच्चा सुख मोक्षमें है, और उसकी प्राप्तिका एक मात्र उपाय देव गुरु और शास्त्रकी भक्ति है। गृहस्थ धर्ममें इस भक्तिकी पालना करनेसे परंपरारूप मोक्षमार्गकी प्राप्ति होती है। सुशीलाबेटी! बस, यही मेरा उपदेश है। अब तू जा और आजसे अपने पतिको अपने प्राणोंका स्वामी समझ। अपने माता पिताके स्थानमें अपने सास ससुरको नवीन माता पिता समझकर उनकी आज्ञाकारिणी होकर रहे।

इसके पश्चात् महाराणीका गला भर आया, अधिक नहीं बोला गया। सुशीलाने अपनी माताके गोदमें सिर रख दिया। इतनेमें महाराजने आकर सुशीलाको उठा लिया और समझाकर कहा—बेटी! मूर्खा लडकियोंके समान क्या तू भी रोती है? छिः!. रोनेसे अमंगल होता है। इस समय तो हम लोगोंका आशीर्वाद लेकर तुझे अतिशय प्रसन्नमुख होकर जाना चाहिये।

यह सुनते ही सुशीला सन्न हो गई। आंसुओंको पोंछकर उसने माताके चरणोंको छुआ। माताने भी महाराजके भयसे आंसुओंका संवरण करके आशीर्वाद दिया। पश्चात् सुशीलाने पिताको नमस्कार किया। पिताने कहा—बेटी! तू बुद्धिमती है, जो बुद्धि तूने प्राप्त की है, उसका यथोचित उपयोग करके पतिपरायणा होवे, मेरा यही आशीर्वचन है। इसके पश्चात् अन्य सम्पूर्ण गुरुजनोंकी आशीष पा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चुकने पर सुशीलाको रेवती आदि सखियां बाहर लाई और वहां एक सजे सजाये रथपर सवार कराके आप भी उसीमें बैठ गई।

इसके पश्चात दोनों कुमारोंने आकर महाराजको नमस्कार किया और आज्ञा चाही। महाराजने आशीर्वाद दिया और कहा कि, जिन-धर्मके प्रसादसे आप लोगोंमें पराक्रम, साहस, धैर्य्य, और विद्या, कला, कुशलताओंकी दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो। आपलोग जाते हैं, और मुझे इच्छा न रहते भी आपलोगोंसे अलग होना पडता है यह खेद है।

अस्तु, मैं अपने गृहका प्राणोंसे प्यारा एक अमूल्य रत्न आपकी सेवाके लिये आपके साथ भेजता हूं। यह रत्न ही नहीं किन्तु मेरा एक प्राण है। अब इसकी रक्षा पालना करना आपका धर्म है। बस, अब मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहता हूं, विलम्ब होरहा है, इसलिये आपलोग जाईये। परन्तु स्नेह बनाये रखिये।

इसके पश्चात ही रथ हांक दिया गया। दोनों कुमार भी अपने घोडोंपर सवार होके चलने लगे। नगरके हजारों मनुष्य और राज्यके अनेक कार्यकर्तागण बहुत दूर तक पहुंचाने गये। दहेजका माल असबाब पीछेसे गाडियोंपर लदवा दिया गया, और उसको निर्विघ्न पहुंचानेके लिये बलवन्तसिंह गाडियोंके साथ गया।

तीसवां पर्व।

सूर्यपुर राज्यकी सरहदमें एक छोटासा ग्राम है उसके निकट एक बगीचा है, जिसमें आम और बड़के अनेक सघन वृक्ष लगे हैं। यहांसे विजयपुर चार पांच कोस दूर है। आज यहीं पर भूपसिंह जयदेव आदिका डेरा पडा हुआ है।

रात्रिके १२ बजनेमें १०–५ मिनटकी देर होगी। दिनभरके थके मन्दे लोग आनन्दसे नींदके खुर्राटे लगा रहे हैं। यद्यपि शुक्ल पक्षकी रात्रि है, परन्तु आकाशको बादलोंने घेर रक्खा है इससे चन्द्रमा कहां है इसका ठीक ठीक निश्चय नहीं हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रीष्मकालकी ऊष्माके मारे लोग पसीनेमें तर हो जाते हैं, जिससे बीच बीच में नींद भी खुल जाती है, परन्तु ज्यों ही सामुद्रिक हवाका एकाध झोका आता है कि, फिर ध्यानस्थ हो जाते हैं। पहरा देनेवाले सिपाही भी निद्रासे झुक झुक जाते हैं। कभी कभी अचेतताके कारण उनके हाथोंमेंसे बन्दूकें गिरकर लोगोंको चौंका देती हैं।

इसी समय बलवन्तसिंहने भूपसिंहके तम्बूमें जाकर उन्हें जगाया और कहा कि, सवेरा होने में अब बहुत थोडा विलम्ब है। यदि सामुद्रिक यात्राकी इच्छा हो तो चलिये, मैं किनारे पर जाकर सब बन्दोबस्त कर आया हूं। यहांसे सिर्फ एक मीलपर समुद्र किनारा है वहांपर एक छोटा सा जहाज उपस्थित है मल्लाहोंसे मैं उसका किराया वगैरह ठहरा आया हूं। वे लोग कहते हैं कि, सबेरे ७–८ बजे तक आप लोग विजयपुर खुशीसे पहुंच जावेंगे।

भूपसिंह बलवन्तकी बातोंमें आ गये, उन्होंने जयदेवको भी जगवाया और एक सम्मति होकर घोडे कसवा लिये। सुशीलाके लिये रथ तैयार हो गया, रेवतीको भी साथ चलनेको कहा, परंतु वह कोई विशेष कारण बतलाके समुद्र यात्राके लिये राजी नहीं हुई।

आखिर एक सखी और आठ दश सेवकोंको लेकर जयदेव आदि तीनों व्यक्ति किनारेपर पहुंचे, वहां मल्लाह लोग बाट देख रहे थे। दो तीन सेवकोंको घोडे और रथके साथ वापिस भेजकर बाकी सेवकोंके साथ वे जहाजपर सवारहो गये। बलबन्तसिंहके प्रयत्नसे जहाज अच्छी तरहसे सजाया गया था, बैठनेके लिये गद्दे वगैरह बिछा दिये गये थे जिनसे बैठनेमें कष्ट न हो। सुशीलाके लिये एक पृथक बैठक बनाई गई थी, उसमें सुशीला और उसकी सखी चन्द्रिका बैठ गई।

इसके बाद ही जहाज छोड दिया गया! सामुद्रिक वायुके शीतल झोकोंसे निद्रादेवीका पुनराह्वानन होने लगा। सब लोग सिर झुका झुकाकर उसका सत्कार करने लगे। थोडी देरमें बादलोंके बिखरनेसे चांदनी निकल आईतब मालूम हुआ कि अभी अधीरात ही हुई हैं। भूपसिंहने चौंककर कहा, अरे! बलवन्त तो कहता था कि सबेरा होना ही चाहता है!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाठकगण ! इसके बाद क्या हुआ सो आप पहले पर्वमें पढ़ ही चुके हैं कि, थोडी देरमें मेघ गरजने लगे, आंधी चलने लगी और जहाज एक छोटी चट्टानस टकराकर डूब गया। परन्तु शायद आप यह नहीं जानते है कि एक छोटीसी चट्टानसे टकराकर जहाज इतनी जल्दी क्यों डूब गया ! इसलिये यहां प्रगट कर दिया जाता है कि यथार्थ इसमें एक गुप्त रहस्य था, वह यह कि जब उस दिन जयदेवादि विलासपुरसे चले थे उस समय इतनी गर्मी हो रहीं थी कि वह सहन नही हो सकती थी।

पृथ्वीने पजावेका रूप धारण किया था। इसलिये उससे व्याकुल होकर जयदेव और भूपसिंहने प्रस्ताव किया था, अवशेष यात्रा यदि समुद्रसे की जावे, तो इस कष्टसे बच सकते हैं। अन्यथा कल फिर भी यही व्यथा भोगनी पडेगी। दो घण्टे रात शेष रहनेपर कूच कर दिया जावेगा, तो जलमार्गसे सवेरे ही ७–८ बजे तक विजयपुर पहुँच जावेगे। यह प्रस्ताव कई सेवकोंके द्वारा अनुमोदित होनेपर यह निश्चय किया गया था कि बलवन्तसिंह किनारेपर जाकर जहाज वगैरहका बन्दोबस्त कर आवे, और दो घंटा रात्रि शेष रहने पर सबको जगा देवे।

ऐसा ही हुआ। बलवंतसिंहने किनारे पर जाकर जहाजको किराये पर ठहराया और पापीने उन्हें दस दस बीस बीस रुपये देकर मार्ग में जहाज डुबा देनेकी बात भी पक्की कर ली। वह समुद्र किनारा सूर्यपुर राज्यमे ही था, और बलवन्तसिंह सूर्यपुरके महाराज का नोकर था, इसलिये मल्लाहोंने उस समय बिलकुल आना कानी नहीं की, और आखिर बादलोंके घिर आने और आंधी चलनेका अच्छा मौका देखकर उन्होंने सर्वनाश कर दिया।

रेवती इस कारणसे सुशीलाके साथ साथ जहाज पर नहीं गई कि यदि मैं बलवंतका साथ छोड दूंगी, तो यह मार्गमें जो जो गुप्त मंत्रणायें करेगा, वे मुझे मालूम नहीं होगी, जिनके न मालूम होने से आपत्ति आनेकी संभावना है, परन्तु रेवती चूक गई और बलवन्ताक उपाय काम कर गया। अफसोस।

पूर्वार्द्ध समाप्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुशीला उपन्यास।

उत्तरार्द्ध।

---:) ०-❀-० (:--

पहिला पर्व।

कर्मोंकी गति बडी विचित्र है। जिन बातोंकी कल्पना भी किसीके हृदयमें उत्पन्न नही हो सकती, वे बातें हम कर्मोंकी कृपासे प्रतिदिन होती हुई देखते हैं। राजासे रंक बनाना और रंकसे छत्रधारी बनाना कर्मोंका ही कृत्य है। कर्मोंकी दृष्टिमें धनवान्, दरिद्री, विद्वान्, मूर्ख, बलवान् और शक्तिहीन सब एक हैं। वे सबके ही गलेमें एक एक रस्सी डालकर नृत्य कराते हैं। कोई इस नृत्यसे सुखी हो अथवा दुखी हो इसकी उन्हें परवाह नहीं है। उनका कार्य एक क्षणभर भी बंद नहीं होता।

सूर्यपुरके एकान्त बागके बंगलेमें सुशीला मूर्छित पडी है। दो तीन दासियां उसको सचेत करनेको चिन्तामें लगी हुई हैं। कोई पंखा झलती है, कोई गुलाबजल छिडकती है, कोई उसके बिखरे हुए केश-कलापको सम्हालकर, मुखमंडलपरके मोतीसे चमकते हुए पसीनेके बिन्दुओंको रूमालसे साफ करती है।

साम्हने खडा हुआ उदयसिंह विषाद किन्तु हर्षोन्मीलित अनिमिष नेत्रोंसे उसकी ओर देख रहा है। परन्तु सुशीलाके जगजयी रूपको देखते हुए उसके नेत्र तृप्त नहीं होते। शरीर कंटकित हो रहा है, पैर स्तंभित हो रहे हैं और वाकशक्ति पलायमान् हो गई है। ऐसा जान पडता है, मानों एक जडमूर्ति ही वहां स्थिर हो रही है।

थोडी देरमें सुशीलाने आंख खोली, परन्तु उदयसिंहकी ओर एक घृणायुक्त दृष्टि डालकर बन्द कर ली। मूर्छित होनेके पहले उसे जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भय हुआ था, उस भयसे बचनेका अपने सामर्थ्यके सिवाय अब दूसरा उपाय नहीं है, वह इसीका विचार करने लगी। उदयसिहकी जडमूर्ति में चेतनता आई। दासियां अलग हो गईं। उदयसिहने कोमल स्वरसे कहा–प्रिये! अब वियोग नहीं सहा जाता। इस दासपर और कुछ नहीं तो इस समय एक प्रेमकटाक्षकी ही कृपा करो।

सुशीलाने फिर आंख खोली और एक तिरस्कार भरी हुई दृष्टि उदयसिहपर डालकर बंद कर ली। अबकीवार उदयसिहने यह कहकर कि, "हृदयेश्वरी! अब यह प्रेमसमाधि कबतक लगाये रहोगी? मुझसे कुछ अपराध हो, तो क्षमा करो। इन तीखे कटाक्षोंके सहन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है" अपना हाथ साहस करके सुशीलाकी ओर बढाया, परन्तु वह हाथ उस दिव्यमूर्तिसे निकलती हुई पुण्यप्रभाको भेद करके आगे न जा सका। सुशीला चमककें उठ बैठी और बोली:—

उदयसिंह, मुझे निश्चय हो गया है कि तुम्हारे मित्र बलवंतसिहने तुम्हारे लिये ही ये सब चक्र चलाये थे। तुम समझते होंगे कि, ऐसा करनेसे मेरी इष्टसिद्धि हो जावेगी, और दोनों कुमारोंके न रहनेसे मेरे सुखमें कोई कांटा नहीं रहेगा। परन्तु यह सब तुम्हारी भूल है। पापियोंको कभी सुख नहीं मिलता और पापमें सुख नहीं है।

यद्यपि मैं इस समय अबला हूं, असहाय हूं, इस समय मेरा कोई रक्षक नहीं है, परंतु स्मरण रखो कि, स्त्रीको अपने सतीत्वकी रक्षा कर लेना कोई कठिन कार्य नहीं है। स्त्रीके पास एक ऐसा विषम शस्त्र है कि, उसके आगे तुम्हारे जैसे कामार्त्त पुरुषोंका कोई बल नहीं चल सकता है। तुम्हारी सब विडम्बनायें व्यर्थ हैं। तुमने जो पापविचार किया है, उसकी पूर्ति सर्वथा असम्भव है। व्यर्थ ही तुम एक भ्रममें पड़े हुए कर्मबन्ध कर रहे हो, जिसका परिपाक बहुत बुरा होगा।

राजा निहालसिंह जैसे सदाचारी और धर्मज्ञ पुरुष रत्नके पुत्र होकर ऐसा दुराचारों और पाप कार्योंमें प्रवृत्त होते हुए तुम्हें लज्जा आनी चाहिये। तुम मेरे भाईके समान हो इसलिये समझाती हूं कि,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अबभी इस पापवासनाको छोड दो, और मुझे जहांकी तहां पहुंचा दो। तुम्हारा इसीमें कल्याण है।

उदयसिंह—वाह! वाह! आखिर सरस्वती हो तो ठहरीं। क्यों न हो? अहा! कैसा बढिया व्याख्यान हुआ है। परन्तु जान पडता है कि, व्याख्यात्री महाशयाने अभी प्रेमशास्त्रका अध्ययन नहीं किया है। यही कारण है कि, आप प्रेमको पापवासना समझती हैं, और उसका परिपाक बुरा बतलाती हैं। परन्तु यथार्थमें प्रेम एक स्वर्गीय पदार्थ है वह तभीतक बुरा जान पडता है, जबतक कि अनुभवमें आ न जावे।

प्रेमका आस्वादन करनेपर समस्त संसार प्रेम ही प्रेममय दिखलाई देता है। और सच पूछो तो प्रेमके विना संसारका कोई काम ही नहीं हो सकता। इसलिये मैं प्रेमपूर्वक प्रार्थना करता हूं कि, आप प्रेम करना और सीख लें, जिसमें आपकी पढी हुई विद्या परिपूर्ण तथा सफल हो जावे। देखिये! जरा मेरी ओर दृष्टिपात कीजिये। मुझमें आपको प्रेमके साक्षात् दर्शन होंगे।

सुशीला—उदयसिंह! जान पडता है कि, इस उन्मत्तताकी दशामें तुम्हारे हृदयपर मेरी बातोंका कुछ भी असर न होगा। तुम उपदेशके पात्र नहीं हो। मोहने तुम्हें अन्धा कर दिया है। यही कारण है, कि भाई! भाई! कहनेवालो इस भगनीको भी तुम पापवासनासे देख रहे हो। और अधमकी नाईं उसके आगे भी प्रेम! प्रेम! बकते हुए नहीं लजाते। छिः! छिः!! धिक्कार है, तुम्हें हजार बार धिक्कार है। मैं अब भी कहती हूं, कि, तुम विवेकको सर्वथा तिलांजुली मत दे दो और अपने हित और अहितका कुछ विचार करो।

उदयः—प्यारी! मैं अपना हित खूब विचार चुका हूं। तुम चाहें मेरा तिरस्कार करो, चाहे धिक्कार दो। मुझे अविवेकी कहो, हिताहित-विचार-शून्य कहो, और चाहें जो कहो, परन्तु मैंने अपना कल्याण एक तुम्हारे प्रेममें ही समझा है। तुम्हारा प्रेम ही मेरा जीवन है। तुम्हारा प्रेम ही मेरे प्राण हैं और तुम्हारा प्रेमही मेरे सुखकी पराकाष्ठा है। आज तक जो कुछ मैंने बिरहदुःख सहें हैं, वे सब एक तुम्हारे प्रेमके लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहे हैं। अपने हृदयमन्दिर में तुम्हारी इस मनोमोहिनी मूर्तिकी स्थापना मैंने इसी प्रेमफलके लिये की है। तबसे अबतक मैं प्रतिदिन चार चार छह छह घंटे नेत्र बन्द किये हुए अविश्रान्त आंसुओंसे तुम्हारा अभिषेक किया करता हूं।

पाषाणकी मूर्तियां सुनते हैं कि सेवकजनोंकी अर्चासे प्रसन्न होकर उनके अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करती हैं। परन्तु हाय ! तुम्हारी यह सजीव सदयहृदय मूर्ति उस पाषाणसे भी कठोर हो रही है, जो अपने इस अनन्य भक्तपर तनिक भी दया नहीं करती है। मेरा हृदय तुम्हारी वियोगाग्निसे जल रहा है, दया करके अब भी उसे अपने प्रेमवारिसे सिंचन करके शान्त करो, नहीं तो ये प्राण नहीं बचेंगे।

सुशीला—देखो उदयसिंह ! मैं एकबार फिर कहती हूं कि, तुम अभीतक समझ जाओ और ये पागलों जैसी बातें छोड दो। इन चाटुकारोंसे मेरे द्वारा तुम्हारी इष्टसिद्धि कदापि नहीं हो सकती। सूर्य पूर्वसे पश्चिममें ऊग सकता है, अग्नि शीतल हो सकती है, पानीपर पत्थर तैर सकते हैं और समुद्र अपनी मर्यादा छोड सकता है, परन्तु वीरकुलशिरोमणि महाराज विक्रमसिंहकी पुत्री और पंडितमुकुट श्री जयदेवकी सहधर्मिणी सुशीलाके जीते जी उसका पातिव्रतपूर्ण शरीर कोई स्पर्श नहीं कर सकता है। जो शरीर अपने आराध्य देव जयदेवके लिये समर्पित हो चुका है, संसारमें उस निर्माल्य द्रव्यके पानेका कोई अधिकारी नहीं है।

उदयसिंह—बस ! बस ! अब यह नखरे रहने दीजिये। तुम्हारी इस ज्ञान गुदडीको फिर कभी देखूंगा। इस समय तो केवल प्रेमकी पिपासा है, सो एकवार अपने अधरामृतका पान करके उसको शान्त करने दीजिये।

यह कहकर उदयसिंहने अपना बाहुपाश सुशीलाकी ओर ज्यों ही बढाया, त्योंही सुशीलाने उसे झिडककर उच्चे स्वरसे कहा—मूर्ख कामान्ध ! खबरदार। मुझे स्पर्श नहीं करना।

यह कठोर कंठस्वर तीक्ष्णधारवाले बानकी तरह उदयसिंहकी छातीपर जाके लगा कि उदयसिंह उस क्रोध-प्रज्वलित मूर्तिके आगेसे कांपते कांपते दो तीन हाथ पीछे हट गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुशीलाने भृकुटिसंचालन करते हुए कहा, कि, चांडाल ! तेरे घर जो माता है; मैं तेरी वही माता हूं, तेरी जो कन्या है, मैं तेरी वही कन्या हूं और तेरी जो बहिन है, मैं तेरी वही बहिन हूं ? क्या अपनी माता, कन्या और बहिनसे तू प्रणयकी याचना करता है ? छिः पापी ! मुझे जहांकी तहां पहुंचा दे और अपने पापका प्रायश्चित्त कर।

उदय०—ओह ! क्या श्रीमतीजी रुष्ट होगई हैं। हां ! हां ! मानिनी हुई हैं। अच्छा, तो मैं हाथ जोड़ता हूं, पांव पडता हूं, मेरी धृष्टता क्षमा कीजिये और आलिङ्गन दे।.....

सुशीला बीचमें रोककर बोली;—रे पशु ! मैं तेरी माता हूं अपनी जिह्वाको रोक।

उस समय सुशीलाकी अवस्था दर्शनीय थी। क्रोधकी प्रचण्ड ज्वाला लज्जालु, कोमल, सरल और सदय मूर्तिको कैसा बना देती है, सुशीला उसका उदाहरण थी। उसके आकर्ण-विस्फारित नेत्र नीलकमलकी उपमाको छोड रक्तकमल बन रहे थे, बिम्बाफलसे फडक रहे थे भृकुटियां खाचे हुए धनुषकी तरह वक्र हो रही थी, और सारे शरीरमेंसे एक प्रकारकी तेजःप्रभा निकल रही थी।

"अब चाटुकार और अनुनयोंसे कार्यसिद्धि होनी कठिन है, स्त्रीजाति विना थोडे बहुत भयके वशमें नहीं आती।" उदयसिंहने यह सोचकर दासियोंको पुकार कर कहा कि, इसके दोनों हाथ पकड लो क्योंकि ऐसा किये बिना अब यह प्रसन्न होती नही दिखती। आज्ञाके साथ ही दो दासियां दौडीं आईं और सुशीलाकी ओर पकडनेके लिये झपटीं। परन्तु उस समय सुशीलाके सुकोमल शरीरमें अमानुषीय बल आ गया। उसने हाथ लगानेके साथ ही ऐसा झपटा दिया कि, दोनों दासियां चार चार हाथके अन्तर पर जा पडीं।

उनके पडनेपर सुशीलाने चोट खाई हुई भुजङ्गनीके समान चंचल होकर और उदयसिंहकी ओर तर्जनी उठाकर कहा—पापात्मन् ! अब क्या तू मुझे भय दिखलाकर वशमें करनेका स्वप्न देख रहा है ? छिः एकवार साक्षात् यमराज भी मेरे सन्मुख आ जावे तो उससे डरनेवाली नहीं हूं, तुझ नरकीटकी तो बात ही क्या है ? जिस सच्चे पतिव्रतको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रावण जैसा पराक्रमी और प्रचंड पृथ्वीपति भङ्ग नहीं कर सका, जिस स्त्री मर्यादाको दुर्योधन जैसा वैभवशाली तोड नहीं सका है और जिस शीलरत्नके लेनेके लिये अनेकानेक राजा अपनी सम्पूर्ण राज्य-लक्ष्मी नष्ट कर देनेपर भी नहीं पा सके हैं, छिः उस पातिव्रत, मर्यादा और शीलरत्नका तेरे जैसे कायर कापुरुष, और रंक क्या विगाड सकते हैं ? तू किस खेतकी मूली है ?

जिस पुण्यकर्मने सीता, द्रौपदी, मनोरमा, गुणमाला, आदि नारी-रत्नोंकी रक्षा की थी पापी ! तेरे हाथसे वही पुण्य आज मेरी भी रक्षा करेगा। तू समझता होगा कि- इस समय सुशीला मेरे अधिकारमें है, मैं भय दिखाकर चाहे जो कर सकता हूं, परन्तु मूर्ख जरा विचारके देख कि, पहरेदारों और दासदासियोंसे घिरे हुए इस एकान्त भवनमें जिस तरह तू मेरे शरीरको कैद रख सकता है क्या उस तरह मेरे इस अदृ-श्यभूत अन्तरात्मा पर भी तू कुछ बल चला सकता है ? नहीं, मेरा निष्पाप और निर्लेप आत्मा सब प्रकारसे स्वतंत्र है उसपर किसीका अधिकार नहीं है।

तेरे पापपंकलित घृणित शरीरके स्पर्श होनेके पहले ही मेरे प्राण कूच कर देंगे। फिर पिशाच ! खूब प्रेमसे इस रक्त मांस और हड्डियोंके पिंडको श्वानकी तरह चाट चाटके प्रसन्न होना ! तू यह न जानना कि, प्राण निकलना कोई असम्भव कार्य है। नहीं, देखते ही देखते केवल एक ही उच्चोश्वासमें यह शरीर प्राणहीन हो जावेगा। तुझ जैसे नराधमोंको सन्मुख देखनेकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है। हजार वार अच्छा है।

उदयसिंह सन्न हो गया। सुशीलाकी रुद्रमूर्ति और साहस देखकर वह हक्काबक्कासा हो गया। फिर उसका साहस नहीं हुआ कि कुछ अधिक कहे। उसी समय बंगलेसे उतरकर नीचे बागमें आया और एक लतामंडपके नीचे पडी हुई बेंतकी आरामकुर्सीपर सिरपर हाथ रखके लेट गया। फूलोंकी भीनी हुई सुगंधित पवनने कोमल कोमल थपकियां देकर बहुत चाहा कि उसे सुला दूं, परंतु फल उलटा हुआ। उसकी कामाग्नि और भी सुलगने लगी। उसके मुंहसे रह रहके निकलती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुई गरम उश्वासोंसे कामाग्निका अनुमान अच्छी तरहसे होता था। इस समय रातके १० बज चुके थे।

दूसरा पर्व।

जहां तक नजर उठाकर देखते हैं, पानी ही पानी दिखलाई देता है। विस्तृत समुद्र लहरा रहा है। अपने ज्वारको बढाता हुआ और घर घर शब्द करता हुआ जान पडता है कि वह अपने मार्गके रोकनेवाले किनारेपर बडबडाता हुआ क्रोधका उबाल निकाल रहा है। मल्लाहोंके छोटे छोटे लडके आनन्दक्रीडा कर रहे हैं। कोई २ छोटी २ डोंगियोंपर चढकर उन्हें अपना भरपूर जोर लगाकर यहां वहां फिरा रहे हैं। कोइ २ यों हीं उथले पानीमें अपनी तरणचातुरी दिखला रहे है।

वे ज्यों हीं कुछ भीतर प्रवेश करते हैं कि समुद्र उन्हें उछालकर बाहर फेंक देता है। तब वेचारे हतप्रभ होकर भी फिर भीतरको दौडते हैं, परंतु फिर वैसे ही उछाल दिये जाते हैं। कोई २ लडके किनारेकी कोमल रेतमें खूब उछलकूद मचाकर व्यायाम कर रहे हैं, और कोई २ शान्तमूर्ति और कुछ नहीं है तो मुट्ठी भर भर रेत हीं एक दूसरे पर उछाल कर फागकी धुलैडीका दर्श दिखला रहें हैं। परन्तु जो लडके चतुर और उद्योगी हैं, वे यहां वहां घूमते हुए शंख, शुक्ति, अभ्रक प्रबालादि पदार्थोंका अन्वेषण कर रहे हैं।

किनारे पर पानीसे ३०—३५ गजके फासले पर कुछ ऊंची जगह पर १०—१२ फूसकी झोपडियां बनी हुई हैं। इनमें मल्लाह लोग रहते हैं। अनेक झोपडियोंके द्वारोंपर चारपाइयां पडी हुई हैं। उनपर दो २ चार २ मल्लाह बैठे हुए बातचीत कर रहे हैं। मल्लाहोंकी स्त्रियां गृहसंबन्धी कामकाजोंमें लगीं हुईं हैं। चमकते हुए उज्वल शंख शुक्ति आदिके गहने उनके श्यामवर्ण शरीर पर बडे सुहावने जान पडते हैं।

संध्या निकट आ रही है। सूर्यकी बिदाईका समय समीप जानकर प्राची (पूर्वदिशा) विवर्ण होकर शोक करने लगी। पुत्रस्नेह ऐसा ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपूर्व होता है। प्राची दिशा सूर्यकी जननी है, इसी कारण उसको इतना दुःख हुआ अन्यथा और दिशाओंको भी होना चाहिये था। सचमुच संसारमें माताके स्वर्गीय स्नेहकी समता करनेवाला दूसरा प्रेम नहीं है।

सूर्यका अरुणवर्ण प्रतिबिम्ब समुद्रकी उछलती हुई जल कल्लोलोंमें तितर वितर होता हुआ ऐसे भ्रमको उत्पन्न करता है, मानों तपाये हुए सुवर्णकी धाराऐं ही लहरा रही हैं।

थोडा देर पीछे विधाता रूपी सुनारने अपने संसारका एक आभूषण बनानेके लिये सूर्यरूपी गोलेको किरणरूपी संडासीसे पकडे हुए समुद्रके पानीमें डाल दिया। आकाशमें एकके पीछे एक इधर उधर चमकते हुए तारागण ऐसे जान पडने लगे, मानो सूर्य समुद्रमें डुबकी लगाकर नाना प्रकारके प्रकाशक रत्नोंको पाकर बाहर फेंक रहा है।

अन्धकारको सम्पूर्ण संसारके राज्यका चार्ज मिला। जान पडता था कि, अब कुछ समय आपके ही अनबूझ राज्यमें सबको रहना होगा परन्तु सर्वथा ऐसा नहीं हुआ। थोडी ही देरमें लाल पीले होते हुए चन्द्रदेव निकलते दिखलाई दिये जिससे बेचारे अन्धकारको यहां वहां छुपनेके प्रयत्नमें लगना पडा। इस समय दो साधु मल्लाहोंकी ओर आये। दोनोंके सिर पर बडी २ भारी जटायें थी शरीर पीले वस्त्रोंसे ढका हुआ था। बगलमें एक २ भृगछाला थी। हाथमें एक एक लोहेका चिमटा, तथा कमंडलु था।

एक साधुके कंधेपर एक झोला भी था, जिसमें कुछ आवश्यक सामान जान पडता था। यह साधु दूसरे साधुको अपना गुरु मानता था। साधुओंको देखकर मल्लाहोंने उठकर प्रणाम किया। साधुओंने आशीर्वाद देकर इच्छा प्रगट की, कि आज रातभर टिककर हम लोग सवेरे यहांसे कूच कर देगे। मल्लाहोंने भक्तिपूर्वक उनके ठहरनेके लिये चबूतरे पर कम्बल बिछा दिया एक ओर धूनी लगा दी। और भी जिन २ पदार्थोंकी आवश्यकता थी, लाके रख दिये। एक मल्लाह एक थालीमें सीदा लेकर आया और हाथ जोडके बोला–महाराज! इसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वीकार कीजिये। परन्तु साधुओंने अनिच्छा प्रगट करके उसे स्वीकार नहीं किया, कहा—हमारे भगवत्का भोग दिनमें एक ही बार लगता है, तुम लोग कुछ चिन्ता मत करो। हम तुम्हारी सुश्रूषासे सन्तुष्ट हुए हैं। मल्लाहगण चबूतरेपर साधुओंकी धूनीके पास घेरकर इधर उधर बैठ गये। एक साधु कूपमेंसे कमण्डलु भरकर लाया। उससे गुरु महाराज ने हाथ पैर मुखमार्जन करके मृगछाला पर आसन जमाके ध्यान लगा दिया। चेलाजी मल्लाहोंको गप्पशास्त्रका अध्ययन कराने लगे।

यहां वहाकी जमीन आसमानके कुलावे मिलानेवाली बातोंका कांड पूरा होनेपर गुरु माहात्म्यका आल्हा शुरू हुआ। एक मल्लाहने पूछा—जब आपके गुरुजी ऐसे २ मंत्रतंत्रोंके जाननेवाले है, तब वे भविष्यकी तथा दूसरोंके मनकी बातें भी जानते होंगे?

चेला—अजी! एक भविष्य ही क्या चीज है, वे सर्वज्ञ हैं। सब संसार उनकी हथेलीपर रक्खा हुआ है। इस समय ध्यानमें वे और करते ही क्या है? नेत्र बंद करके सब जगत्को हस्तामलंकवत् देखते हैं। उसी जगत्में उन्हें आनंदकन्द भगवत्का दर्शन होता है, जो परम दुर्लभ है। मुझे बारह वर्ष सेवा करते हो गये, परंतु अबतक भी मेरी वैसी विशददृष्टि नहीं हुई है।

एक मल्लाह—हम लोगोंको कैसे विश्वास हो कि गुरु महाराज सब कुछ जानते देखते हैं?

चेला—कोई बात पूछ कर देख लो, चट विश्वास हो जायगा। करकंगनको आरसीकी क्या जरूरत है?

एक म०—परन्तु आगेकी बातपर विश्वास कैसे हो सकता है? क्या तबतक आप यहां बने रहेंगे?

चेला—साधु सन्यासी एक जगह कहीं नहीं रह सकते। नदीका पानी एक स्थानमें ठहर कर जैसे गंदला होजाता है, एक स्थानमें रहनेसे साधुओंका चारित्र भी वैसा ही गंदला होजाता है। और हम लोग तो संसारको एक दृष्टिसे देखते हैं, किसीपर न्यूनाधिक मोह नहीं रखते। यदि एक स्थान पर ठहर जावें, तो दूसरे स्थानके लोगोंका उपकार कैसे हो? यदि इतना अविश्वास है और परीक्षा करना ही है, तो क्या हर्ज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। कोई पिछली बात पूछ लो, जो बीत चुकी हो। और मत पूछो तो उन्हें कुछ इसकी गरज भी नहीं है! उन्हें अपनी प्रशंसा बिलकुल ही नहीं भाती है, जाने दो।

दूसरा मल्लाह–हां महाराज! आप ठीक कहते हैं। साधुओंको इन संसारी झगडोंसे प्रथोजन ही क्या है? उन्हें भगवद्भजनसे काम है। गरज तो हम लोगोंकी है। सो हम महाराजसे अवश्य ही कुछ पूछेंगे।

चेला–हां पूछना। परन्तु इतना ख्याल रखना कि, महाराज दो चार प्रश्नोंका ही उत्तर देते हैं, जबतक उनकी मौज रहती है। और सो भी तभी जब उनका ध्यान खुलता है। पीछे हजार प्रश्न करनेपर भी वे कुछ नहीं कहते। उनकी लाला ऐसी विचित्र है।

एक मल्लाह––क्या हर्ज है एक दोके पूछनेसे ही विश्वास दृढ हो जावेगा।

अनुमान दो घंटेमें महाराजकी समाधि पूर्ण हुई। मल्लाह उत्सुक होकर उनके सन्मुख हुए। डरते डरते एक मल्लाहने हाथ जोडके कहा, गुरु महाराज! हम लोग कुछ पूछना चाहते है।

गुरु०—(आंख उठाकर) पूछो! क्या पूछते हो?

मल्लाह—हम लोगोंपर जो बीत चुकी हो, ऐसी कोई बात बतलाइये

गुरु०–अच्छा, बतलाते हैं! बोलो, नवीन बतलावें या पुरानी!

मल्लाह–जो आपकी इच्छा हो।

गुरु०—(उदासीनतासे) हमारी इच्छा कुछ भी नहीं है, जाओ।

मल्लाह–नहीं, महाराज। हम सब लोग बहुत उत्कण्ठित हो रहे हैं कुछ तो बतलाइये?

गुरु०–जो तुम लोग पूछो वही बतलावें।

मल्लाह–[एक दूसरेके कानके पास कुछ गुनगुनाकर मस्तक हिलाते हुए] अच्छा, आज हम लोग समुद्रमें किस ओर गये थे?

गुरु०–[नेत्र बन्द करके] दक्षिणकी ओर।

मल्लाह–(मुसुकुराते हुए और एक दूसरेके मुंहकी ओर देखते हुए) हम लोगोंके हाथ आज कुछ शिकार लगी या नहीं?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरु—हां ! बहुत ही ।

मल्लाह—कितनी

गुरु०—खूब मुट्ठी भर भर ।

इस उत्तरको सुनकर मल्लाहगण बहुत सिटपटाये । अनेक लोगोंको भय होने लगा कि कहीं हम पर इस बातके प्रकाशित होनेसे कोई विपत्ति न आवे । परन्तु जो मुखिया लोग थे, उन्होने एक बार गुरु महाराजकी ओर कड़ी दृष्टि डालकर देखा । परन्तु उनकी चेष्टा निर्विकार दीख पडी, इससे सबको अपनी भावभंगीसे समझा दिया कि कोई डरनेकी बात नहीं है । तब एकने और प्रश्न किया कि, आज हमारे जहाजपर कितने आदमी थे ?

गुरु०–(उंगलियां गिनकर) तुम्हारे सिवाय दो स्त्रियां दश पुरुष

मल्लाह–वे यहां से कहां जानेवाले थे ?

गुरु०–(आंख बन्द करके) जहन्नुमको ।

मल्लाह–[परस्पर देखते हुए] महाराज ! जहन्नुम कहां है ?

गुरु०—बस, तुम्हारे बहुत प्रश्न हो चुके । अब हम नहीं बतलावेंगे ।

मल्लाह—(सब मिलके)–फिर हमको विश्वास कैसे होगा ?

गुरु०—न हो, हमको परवाह नही है ।

चेला–बस, अब महाराज कुछ नहीं बोलेगे । बडा भाग्य समझो कि तुम्हारे कई प्रश्न उन्होंने बतला दिये । इतना बातचीत वे किसीसे भी नहीं करते हैं । भगवद्भजन ही उन्हें सबसे प्यारा है ।

इसके पश्चात् मल्लाह लोग ब्यालूकी आज्ञा लेकर अपनी अपनी झोंपडियोंमें चले गये । एकांत पाकर गुरु चेलाकी बहुत देर तक गुप्त बातचीत होती रही ।

तीसरा पर्व ।

विजयपुरके जौहरीबाजारमें सेठ श्रीचन्द्र अपनी दूकान पर तकियेके सहारे बैठे हुए हैं । साम्हनेकी ओर उनका पुत्र विजयदेव किसी हिसाबकी बही में अपने चित्तको जमाये हुए हैं । मुनीम गुमाश्ते लोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने अपने कामोंमें लगे हुए हैं। ग्राहकगण भावकी पूछताछ कर रहे हैं।

झाड, फानूस, हांडी, आइने, आदि सामानोंसे दूकानकी खूब सजावट हो रही है। छोटी छोटी किन्तु चौडी चौकियोंपर जिनपर लाल मखमल और गोटेकी किनारी सिली हुई हैं, मोती, माणिक, हीरा, पन्ना नीलम आदि नाना प्रकारके रत्न ढेर के ढेर शोभायमान हो रहे हैं। उनकी शीतल प्रभासे दर्शकोंके नेत्र तर हो जाते हैं।

एक ओर अनेक कारीगर रेशम और कलाबत्तूसे हार गूंथ रहे हैं दूसरी ओर जवाहिरातके सुन्दर सुवर्णमयी जडाऊ जेवर तैयार हो रहे हैं। कहीं २ अनाजकी तरह चलनियोंमें मोती चलाये जा रहे हैं, और कही कहीं बडे बडे ढेरोंमेंसे एक एक जातिके रत्नोंका चुनाव हो रहा है एक ओर अनेक परीक्षक चुने हुए रत्नोंपर एकटक दृष्टि लगाये हुए उनकी कांति और पानीकी परीक्षासे अन्तिम चुनाव कर रहे हैं।

इस समय दिनके ग्यारह बजे होंगे। सेठजी अपनी बायीं आंख फडकनेकी चिन्तामें मग्न थे कि इतनेहीमें एक उदासीनमुख आदमीने आकर उन्हें प्रणाम किया और एक बन्द चिट्ठी शेठजीके हाथमें दी, जिसपर शेठजीका सिरनामा किया हुआ था। शेठजीने आतुरतासे चिट्ठी खोलकर विजयदेवको पढनेके लिये दी। वह इस प्रकार पढ़ने लगा :-

पूज्यवर श्रेष्ठि श्रीचन्द्रजी,

बडा धोखा हुआ। बलवन्त सर्पने, जिसका जिकर आपने सुना होगा, आखिर काट ही खाया। कल रात्रिको हम सब लोग-बगीचेमें ठहरे हुए थे। दिनकी ऊष्मासे विकल होकर एकाएक कुमारोंका विचार हुआ कि, स्थलकी अपेक्षा जलमार्गसे जाना सुखकर होगा। बलवन्तने अपने प्रयोजन सिद्धिकी आशासे इस विचारकी पुष्टि की और वह स्वयं किनारे पर जहाजका प्रबन्ध करनेके लिये गया। पीछे उसकी सम्मतिसे दोनों कुमार सुशीला चन्द्रिका और आठ दश सेवक आधी रातके अनुमान जहाजपर सवार हो गये। शेष आदमी सामानकी गाडियोंके साथ रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं बलवन्तकी ओरसे सदा सशंकित रहती थी, इसलिये उसपर कडी दृष्टि रखनेके लिये मैंने उसका साथ छोडना ठीक नहीं समझा। परन्तु यथार्थमें वह गलती हुई। जहाजका प्रबंध करते समय वह कुछ दुष्टता करेगा इसका मुझे ख्याल भी नहीं हुआ। कुमारोंको पहूंचाकर हमलोग डेरेमें आकर सो रहे। सवेरे मालूम हुआ कि, बलवंत पाखाना जाने का बहाना करके जाकर वापिस नहीं लौटा।

बस, मेरा माथा ठनक उठा कि, कुमारोंके साथ अवश्य ही धोखा हुआ। मुझे पूर्ण बिश्वास है कि, आपके कुमार सकुशल विजयपुर नहीं पहुँचे। उनके ऊपर अवश्य ही कोई बडी भारी विपत्ति आई है। आपके कुमार वीर क्षत्रिय पुरुष हैं, इसलिये चिंता होनेपर भी उनका इतना खटका नहीं है, जितना कोमलांगी सुशीलाका है। इस समयकी एक २ घडी उसके लिये बडी जोखिमकी है। इसलिये मैं आपके पास तक नहीं आकर यहींसे सुशीलाकी रक्षाके लिये जाती हूं। आप विचारशील और दूरदर्शी हैं। चिंता न करें, श्री जिनेन्द्रदेवकी कृपासे शीघ्र ही इस विपत्तिका अन्त आवेगा।

उचित समझें तो महाराज रणवीरसिंहजीको भी इसकी खबर करा दें। परन्तु इतना स्मरण रक्खें कि यद्यपि ये सब कर्म सूर्यपुरके राजकुमार उदयसिंहके हैं, परन्तु सूर्यपुर नरेश महाराज निहालसिंहको इसकी कुछ भी खबर नहीं है। इसलिये कहीं ऐसा न हो कि, सूर्यपुर राज्यपर महाराजका क्रोध उबल उठे, और चढाई कर दी जावे। ऐसा करनेसे आपकी पुत्रवधूकी जान जोखिममें आ जावेगी। "मरता क्या न करता" इस लोकोक्तिके अनुसार दुष्टहृदय उदयसिंह न जाने उस समय क्या कर डालेगा। इसलिये जो कुछ प्रयत्न किया जावे, गुप्त रीतिसे किया जावे।

आपकी पुत्रवधूकी दासी—रेवती।

\+ \+ \+ \+

चिट्ठी सुनते २ श्रीचन्द्रकी अजीब हालत हो गई। वे इसके सिवाय कि जयदेवादि भयंकर आपत्तिमें फंस गये हैं और कुछ न समझ सके पुत्रशोकके असीम उद्रेकसे उन्हें मूर्छा आ गई। सब लोग घबडा उठे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क, इन्हें यह क्या हो गया ? विजयदेव पिता ! पिता ! कहकर चिल्लाने लगा, पर कुछ उत्तर नही मिला । आखिर वह घबडाकर रोने लगा । हाय हाय यह क्या हुआ ? आजका सुखमय दिन घोर दुःखरूप होगया न जाने अब प्यारे बंधुओंके दर्शन कब होंगे वह दुष्ट उदयसिंह न जाने मेरी सुकुमार भावजके साथ कैसा क्रूर वर्ताव करेगा, इत्यादि । वडा कोलाहल मचा । दुकानके सब ही लोग हाय ! हाय ! करने लगे ।

कोई २ श्रीचन्द्रको मूर्छामुक्त करनेके लिये शीतोपचार करने लगे किसीने अन्तःपुरमें जाकर भी यह दुःखद वार्ता सुना दी । विद्यादेवी पछाड़ खाके गिर पडी । सिरमें चोट लगनेसे खून बहने लगा । दासियां घबडा गईं इधर किसीने महाराज रणवीरसिंह को भी जाकर यह समाचार निवेदन किये । उनके हृदयपर भी इसकी बडी भारी चोट लगी । परन्तु वे घबडाये नहीं । उसी समय अपने गुप्तचरोंको सूर्यपुर की ओर जयदेवादिका अनुसंधान करनेके लिये भेजकर आप श्रीचन्द्र जौहरीकी दूकान पर दौडे हुए आये ।

देखा, तो श्रीचन्द्र तकियेके सहारे पडे हैं, आंखोंसे आंसूओंकी अविरल धारा बह रही है । अभीतक उन्हें अपनी सुधि नहीं है । विजयदेव भी रो रहा है । महाराजके पहुँचते ही सब लोग उठ खडे हुए, कोलाहल यकायक शांत होगया । महाराजने श्रीचन्द्रको सचेत करके समझाया । शोक करनेका यह कोई समय नहीं है अपने पुत्र जीते जागते बहुत जल्दी आकर मिलेंगे । हमें शोककी जगह उनके पता लगानेका प्रबन्ध करना चाहिए एक साधारण कष्टके सिवाय विपत्तिके सिवाय उनके प्राणोंका भय सर्वथा नही करना चाहिये क्योंकि वे क्षत्रियपुत्र हैं उदयसिंहका बल उनके सामने कोई चीज नहीं है । हां ! यदि चिन्ता है तो आपकी बहूकी है । सो उसकी रक्षाके लिये मैं कई गुप्तचर भेजके आ रहा हूं । और भी जो आप कहें प्रबन्ध किया जावे । सिवाय इसके रेवती बडी चतुर दासी है, वह सुशीलाकी रक्षाके लिये कोई भी उपाय शेष नहीं रक्खेगी । श्रीचन्द्रने कहा-महाराज मेरा हृदय कोमल है वह एक सामान्य दुखसे ही छिन्न हो जाता है यह तो असह्य शोक है । क्या करना चाहिए और क्या नहीं यह सब आप ही सोच सकते हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं तो अब कर्तव्यविमूढ हो गया हूं। जिस तरह और जितनी जल्दी होसके जयदेव भूपसिंहको लाकर मेरे हृदयसे लगा दीजिए नहीं तो मेरे प्राण अब नहीं बचेगें। इतना कहते कहते श्रीचन्द्रका गला भर आया महाराजने उनका हाथ पकड लिया और फिर यथाशक्ति समझाया। बडी कठिनाईसे श्रीचन्द्रका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ। फिर महाराज बहुतसा आश्वसन देकर राजमहलकी ओर गये और श्रीचन्द्र दूकानसे उठकर अन्तःपुरकी ओर।

विजयपुरमें घर घर जयदेव भूपसिंहकी शोकवार्ता होने लगी। जिसने सुना, उसीने शोक किया। कीर्तिमान् पुरुषोंके वियोगका शोक किसको नहीं होता?

चौथा पर्व।

घंटेभर पीछे धीरे २ एकके पश्चात् एक इस तरह सब मल्लाह धूनीपर आ जमें। नशा पानीकी उडने लगी। साथ ही चेला महाशयके साथ फिर गप्पोंका बाजार गरम हुआ। गुरु महाराजका बकध्यान लगा हुआ था। एक थैलीमें पडी हुई बड़े २ गुरियोंकी माला ऊंगलियोंके सहारेसे चक्कर खा रही थी।

एक बजेके अनुमान झोंपडियोंकी बगलसे जो पगडंडी आई है, उस परसे जाता हुआ एक सिपाही दिखलाई दिया। बडे ऊंचे कदका आदमी था। सिरपर बडा ऊंचा पंजाबी फेंटा बंधा था, जिससे ऊंचाई और भी ज्यादा दिखलाई देती थी। रंग गेंहूआं था, बडी २ मूछों और दाढीसे चेहरा भरा हुआ था। उसके हाथमें बरछी, बगलमें तलवार और कंधेपर एक बटुआ लटक रहा था। कपडे पसीनेसे भींग गये थे, जान पडता था, बडी लम्बी सफर करके आ रहा है। चाल ढालसे बडा जवांमर्द जान पडता था। एक झोपडीके साम्हने आकर उसने एक भारी आवाजसे मल्लाहको पुकारा।

सुनते ही धूनी पर जो मल्लाह बैठे थे, उनमेंसे दो तीन मल्लाह उस ओरको दोडे। जो धूनी पर रहे, उन्होंने वहीं बैठे २ अपनी दृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और कान उस ओरको दौडाये। बकव्रती गुरुजीके कान उसके निकट पहलेहीसे पहुंच गये थे। इसलिये उनके मुंहसे अचानक निकल पडा, "हरी! हर!" मल्लाहोंने समझा, महाराज भगवान्का नाम ले रहें हैं, पर चेलाजी सुनते ही सिपाहीकी ओर यह कहते हुए झपटे कि, देखें तो सही कौन आया है? वहां जाके देखा, तो सिपाहीसे इस प्रकार वार्ता हो रही थी।

सिपाही—महाराज निहालसिंहकी आज्ञासे मैं बलवन्तसिंहकी खोजके लिये आया हूं। तुम्हें उसका पता जरूर मालूम होगा, जल्दी बतलाओ। मुझे उससे मिलकर वापिस सूर्यपुर पहुंचना है।

एक मल्लाह—(सकपकाता हुआ) बलवन्त कल रातको यहीं थे परन्तु कहां गये, हमको मालुम नहीं है। कहते थे, एक कामके लिये विलासपुर जाना है। सो बहुत करके वे वहीं गये होंगे। परन्तु अब रात थोडी रह गई है, थक भी गये होंगे, इसलिये हमारी समझसे दो घंटे यहां विश्राम करके सवेरे ४ बजेके पहले कूच कर देना। आगे बहुत दूर तक इससे अच्छा स्थान आपको नहीं मिलेगा। सिपाहीको आशा थी कि, बलवन्तसिंह यहां अवश्य मिल जायगा अथवा उसका ठीक २ पता लग जावेगा। परन्तु यह कुछ भी नहीं हुआ, इससे कुछ उदास सा हो गया। परन्तु क्या करता? पासकी पडी हुई एक चारपाई पर मल्लाहोंकी बात मान कर बैठ गया। पश्चात् कपडे वगैरह खोलकर थोडासा जल मंगाकर हाथ मुंह धो सफेद चादर तानकर सो गया। थक बहुत गया था, चांदनी खिली हुई थी। सामुद्रिक हवाके झोकोंने पडते ही मुरदेका जोडीदार बना दिया।

चेला महाशय आगत मनुष्यको खूब बारीकीसे देखकर और उसकी बातोंको ध्यानपूर्वक, सुनकर लौट आये। आते आते एक जमुहाई ली और जोरसे कहा, "हरी हर नाम सच्चा है।" गुरुजी महाराज यह सुनकर मुसुकरा दिये। धूनी परसे बहुतसे मल्लाह धीरे २ खिसक गये थे, जो रहे सहे थे वे भी भोजनके नशेमें झूम रहे थे।

चेलारामने कहा—भाई! अब तुम सो जाओ, रात बहुत थोडी रह गई है, हम लोगोंके साथ कहांतक जागोगे? हम तो रात दिनको एक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही सा समझते हैं, जितना भगवद्भजन हो सके, उतना हो अच्छा है। बस, मल्लाह लोग तो यह चाहते ही थे, मनकी कह दी, प्रणाम दंडवत करके वे अपने २ शयनस्थानमें गये। विलम्ब हो जानेसे अनेक युवतियोंने बडे उलाहने दिये। किसी २ को तो रूसी हुई लद्दिमयोंके मानमोचनके लिये विनय अनुनयोंकी चक्की चलाते चलाते ही सवेरा हो गया।

दोकी घण्टी हुए कुछ ही देर हुई होगी। सब लोग निद्राकी एकान्त उपासनामें दोन दुनियांकी खबर भूले हुए थे। एक आदमी काले कम्बलसे अपने शरीरको छुपाये हुए सिपाहीकी चारपाईके पास खडा हुआ, उसके कपडे लत्ते टटोल रहा था। वह यहां वहां नजर फैकता हुआ बडी सावधानीसे यह कामकर रहा था। बहुत देरके पीछे उसे सिपाहीके झोलेमें एक कागज मिला, जिसे लेकर वह साधुओंकी धूनीके पास आया, और आगके उजालेमें उक्त चिट्ठीको पढकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसमें लिखा हुआ था :—

"प्यारे मित्र! तुम्हारी तारीफ मैं किस मुंहसे करूं। संसारमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे देकर मैं तुम्हारे ऋणसे ऊऋण हो सकूंगा। तुमने मेरे लिये अपनी जानपर खेलकर जो परिश्रम किया है वह वर्णनातीत है। परन्तु मेरे सुख दुखके साथी बन्धु! मैं अभागा इतने पर भी सुखी नहीं हुआ। प्राणप्यारी सुशीला हजार समझानेपर भी मेरी ओर नजर नहीं उठाती। मैं गिडगिडाता हूं, वह घृणा करती है। मैं भय दिखलाता हूं, वह जान देनेको तैयार है। मैं बलत्कारका उपक्रम करता हूं, वह वीररूप धारण करती है। और मैं प्रार्थना करता हूं तो वह धर्मोपदेश करती है। इस तरह कुछ भी वश नहीं चलता है जबसे आई है, अन्न पानीकी ओर देखा भी नहीं है। क्या करूं, कुछ समझमें नहीं आता। मेरे दुःखका कुछ ठिकाना नहीं है। तुमसे साक्षात् करनेको बहुत अभिलाषा है। मुझसे एकबार मिलो, तो कुछ सम्मति-पूर्वक उपाय निश्चित किया जाय।

पिताजीकी वर्तमानमें इस ओर कुछ कडी नजर जान पडती है, इससे बडा भय रहता है। यदि उन्हें इस बातका पता लगेगा, तो बडी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कठिनाई होगी। वर्तमान में सुशीलाको बगीचेवाले बंगलेमें रख छोडा है। विशेष सन्मुख कहूंगा। मेरा मस्तिक बिगड रहा है। यदि मुझे सकुशल देखा चाहते हो, तो शीघ्र आकर मिलो।

तुम्हारा कृतज्ञ मित्र–उदय।

\+ \+ \+

इस चिट्ठीको उसने सन्मुख रखकर शीघ्र ही एक दूसरे कागजमें नकल करली और फिर असली चिट्ठीको जहांकी तहां रख आया। ऐसी सावधानीसे कि किसीको झोलेके खोले जानेका गुमान भी न हो।

प्रातःकाल समीप हुआ। पक्षियोंका कलरव सुनाई पडने लगा। चन्द्रमाका प्रकाश मन्द हो गया। तारें एक एक करके विदा लेने लगे। गुरु महाराजने सिपाहीकी चारपाईकी ओर देखकर एक प्रभाती गाई—

हे नर ! भ्रम नींद क्यों न, छांडत दुखदाई।
सोचत चिरकाल सोंज, आपनी ठगाई॥ हे नर०॥

प्रभातीके पूरे होते २ सिपाही जाग उठा। देखा उजेला होगया था। चटसे उठ बैठा और "आज बडी नींद आई। बडी मुश्किल हुई विलासपुर बहुत दूर है, वहां जाकर आज ही सूर्यपुर पहुँचना है।" इस तरह बडबडाता हुआ कपडे लत्ते सम्हालकर विलासपुरकी ओर चल पडा और थोडी ही देरमें अदृष्ट होगया।

इधर गुरुदेव भी उठ बैठे और चेलेको सम्बोधन करके बोले–बच्चा गोवर्धनदास ! रात भर सोया तो भी पेट नहीं भरा क्या ? अरे ! क्या इसी तरह भगवद्भजन करेगा ? त्रिलोकीनाथ क्या इसी तरह सोते २ मिल जावेंगे ? संसार–समुद्रमें आकंठ निमग्न हुए गृहस्थ लोग भी इस समय राम नामका जप कर रहे हैं। देख, तो कैसा अमूल्य समय जा रहा है ? इस समयको जो लोक नींदके खुर्राटे लगाते हुए खो देते हैं, वे बडे मूर्ख हैं। वे अपना आत्म कल्याण कभी नहीं कर सकते। चेलाराम राम नामकी झडी लगाते हुए छटपटाकर उठ बैठे।

कमंडलुमें रक्खे हुए पानीसे हाथ मुंह धोकर गुरु महाराजको साष्टांग नमस्कार किया। उन्होंने आशीर्वाद देकर कहा–देखो, गोव–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्धर्न ! अब विलम्ब मत करो, आगे धूप हो जावेगी, तो कष्ट होगा चलनेके लिये यही समय अच्छा है। यह सुनकर गावद्धर्न दंड, कमंडलु चोमटा वगैरह उठाकर आगे हो गया और बोला, चलिये। गुरु महाराज भी उठकर साथ हो लिये। इतनेमें कई मल्लाह दौडे हुए आये और हाथ जोडकर बोले—महाराज ! कहते हैं कि साधुओंकी सब पर सदा कृपा रहती है परन्तु आप हम लोगोंके यहां एक दिन भी न ठहरे इससे हम लोग क्या समझें ? यदि आप चले जावेंगे, तो हमको बडा दुःख होगा।

गुरुजीने कहा:—भाइयों ! हमारी सबपर एकसी ही कृपा रहती है तुम लोगोंसे हम बहुत प्रसन्न हैं। परन्तु हमका रामेश्वर भगवान्के दर्शनकी बडी उत्कंठा है इससे ठहर नहीं सकते हैं। और एक स्थान पर एक रात्रिसे अधिक रहना साधुओंका धर्म भी नहीं है। तुम सबको हमारा आशीर्वाद है कि, खुश रहो। परन्तु हमको रोको मत। यह सुनकर मल्लाह चुप रहे, और गुरु चेला सूर्यपुरकी राह लग गये।

पांचवां पर्व।

सुवर्णपुरसे अनुमान दो मील ईशानकी ओर एक सुन्दर सरोवर है। चारों ओर साफ और सुव्यवस्थित सडक बनी हुई है। सरोवरका किनारा कहीं कहीं कच्चा और कहीं कहीं पक्का बंधा हुआ है। और किनारेके बीचमें चारों ओर जो थोडीसी जगह है, उसमें एक साधारण फुलवारी लगी हुई है। फुलवारी नाना प्रकारके सुन्दर सुन्दर फूलोंके गमलों, लहलही लताएं, हरे भरे खूबसूरत वृक्षों और हरी दूबसे बहुत भली जान पडती है। स्थान स्थान पर छूटते हुए अनेक हरी फव्वारोंसे तो उसकी श्री और भी द्विगुणित हो रही है।

सडकके दूसरी ओर आम्र, बकुल, अर्जुन, जामुन, निम्ब आदि बडे २ वृक्षोंकी एक श्रेणी है, जो इस मनोहर स्थानकी रक्षा करनेवाली सन्नद्ध सेना सी जान पडती है। यह रम्य सरोवर और उसकी चतुर्दिग्वर्ती सम्पत्ति महाराज विजयसिंहकी स्थापित की हुई है। जो बह-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लाने और समीरसेवन करनेके लिये सुवर्णपुरमें इसके अतिरिक्त दूसरा अच्छा स्थान नहीं है।

आज सूर्य अस्त होनेके कुछ पहले हम राजकुमार भूपसिंहको यहां पर टहलते हुए देखते हैं। यद्यपि अभी तक ग्रीष्मकी उष्मा समाप्ति नहीं हुई है, और ग्रीष्मकाल भी अवशेष हो है, तथापि दो तीन दिन लगातार पानी वरसनेसे इस समय उस रातदिन वरसनेवाली प्रचण्ड अग्निसे, पिंड छूटा हुआ जान पड़ता है।

समस्त पशु पक्षी प्रसन्न-चित्त दिखलाई देते हैं। सूखे पडे हुए मेढ़कोंके शरीरमें जीव आगये हैं। वे इधर उधर उछलते हुए बडे वडे बक्किर्योंके मदको मात कर रहे हैं। सारस, हंस, मयूर आदि पक्षी चैनसे क्रीडा कर रहे हैं। पानीके बहुत ही समीप बकगणोंका ध्यान लग रहा है। पांवके नीचे कोई जीव न मर जावे इसलिये धीरे धीरे पांव रखते हुए वे वाह्य दृश्यसे ईर्यापथ शोधके चलनेवाले मुनियोंका भी नम्बर ले रहे हैं। परन्तु उनका यह बकव्रत तब ही तक रहता हैं जब तक कोई मछली साम्हने नहीं आजाती।

एक साथ चलते हुए एक साथ मधुर शब्द करते हुए और एक साथ उडते हुए स्नेह मय सारसके सरस जोडोंको देखकर भूपसिंहके हृदयमें शीघ्र ही प्राप्त होनेवाले दाम्पत्य प्रेमकी मीठी कल्पनायें उठने लगी, कोकिलाके कोमलालापसे चित्त उत्कंठित होने लगा और मयूरोंके आनन्द नृत्यसे मुखपर स्वेद झलकने लगा। आगे चलनेको जी नहीं हुआ, शरीर स्तब्ध सा हो गया। इसलिये वे टहलनेसे विरक्त होकर तालावकी एक सीढी पर जा बैठे। विचारा था कि, यहां जी बहला लेंगे और पूर्व विचारोंको भुला देंगे। परन्तु चक्रवाकके जोडोंको एक दूसरेके समागमके लिये व्याकुल देखकर और भी उत्तेजना हुई।

उस समय वीर पुङ्गव भूपसिंहका हृदय डगमागाने लगा। पाणिग्रहणके समयकी मदनमालतीकी प्रतिमा साम्हने आ गई। रूपामृतका पान करनेके लिये उन्होंने नेत्र बंद कर लिये। उस समय ऐसा जान पडा मदनमालती हाथ जोडके कह रही है, "प्राणनाथ, बहुत विलम्ब तक वाट देखी, पर आपके दर्शन न हुए। इसलिये विरहसन्तापके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहन करनेमें असमर्थ होकर यह दासी स्वयं आई है।" भूपसिंह इसका कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि, कोयलकी कूकसे आंखे खुल गई। देखा, सूर्य अस्त होगया है, और सबके सब कमल जो थोडी देर पहले खिले हुए थे संकुचित होकर प्रभाहीन होगये हैं। भूपसिंह विचारने लगे, मित्र (सूर्य) के वियोगमें जो उदासीन और हतप्रभ हो जाते हैं, वही सच्चे मित्र हैं। धिक्कार है मुझे, जो एक सर्वश्रेष्ठ मित्रको खोकर विषयवासनाओंकी कल्पनाओंमें उलझा हूं।

हाय ! जयदेव जैसे मित्रको भूलनेवाला मुझ जैसा कृतघ्न और कौन होगा। वह देखो हंसता हुआ चन्द्रमा गगनमंडलमें आ विराजा है। अहो पामर चन्द्र ? तुम्हे सहस्रवार धिक्कार है जो अपने मित्र (सूर्य) के अस्त होनेपर प्रफुल्लित होते हो। और उदय होनेपर हतप्रभ होजाते हो। लोग कहते हैं, तुम मित्रके प्रतापसे चमकते हो और मित्रकी कृपासे तुममें प्रकाश है, इतने पर भी मित्रके साथ तुम्हारा ऐसा निंद्य वर्ताव है ? अतएव कृतघ्नी चन्द्र ! तुम्हे लाख वार धिक्कार है। अस्ताचल पर्वतकी गव्हर गुफाओंमें मित्र (सूर्य) पर न जानें कैसी बीती होगी इसका कुछ भी सोच न करके तुम अपनी ज्योत्स्ना प्रिया के साथ क्रीडा कर रहे हो, एवं कुमोदनीको मुदित कर रहे हो, अतः कलङ्की चन्द्र ? तुम्हे अनन्तवार धिक्कार है। तुम्हारे इन गुणोंके कारण ही कदाचित तुम्हारे निर्मल शरीरमें ये कलंकके चिन्ह दिखलाई दे रहे हैं।

परम अहिंसा धर्मके उपदेशक प्यारे जयदेव ! सुशीला जयदेव ! विद्वान् जयदेव ! न जाने इस पापीको तुम्हारे दर्शन कब होंगे ! तुम्हारा वियोग असह्य हो उठा है क्या करूं, कहां जाऊं, तुम्हे कहां ढूढूं, तुम्हारे लिये अब मैं सब कुछ परित्याग कर सक्ता हूं। मेरा अपराध क्षमा करो। न जाने मुझे क्या हुआ था जो मैंने तुम्हे सर्वथा भुला दिया। हाय ! तुम्हारी कोमलांगी सुशीला पर न जाने क्या २ विपत्तियां पडी होगी, और न जाने बेचारी अपने शरीरकी रक्षा किस तरहसे कर रही होगी। तुम्हारी ऐसी विपत्तिमें भी यदि मैं कुछ सहायता न कर सका तो मेरा यह शरीर और किस काममें आवेगा ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बस ! अब मैं इस सुवर्णपुरमें एक क्षणभर भी नही ठहर सकता। तुम्हारे लिये मैं अपना जीवन उत्सर्ग करनेको प्रस्तुत हूं ! मनकी गति बडी विचित्र है। कुछ क्षण पहले जो मन मदनमालतीके समागम संकल्पोंमें मग्न हो रहा था, जिसे प्रहर दो प्रहरका वियोग भी असह्य हो उठा था और जो अपनी पियाके रूपामृतका पान करके सुखी हो रहा था वही मन चिरकालके लिये बन बन भटकनेको तैयार है कष्ट सहनेको प्रस्तुत है और सब सुखोंको तिलांजुली देनेको उद्यत है। इसके पश्चात भूपसिंहने खीसेमेंसे कागज कलम निकालकर निम्नलिखित चिट्ठी लिखी:—

"प्रिय मदनमालती ! यहां सरोवर पर बैठे हुए अचानक मुझे अपने मित्रका स्मरण हो आया है। मेरे मित्र किसी विपत्तिमें फंसे हैं उनकी सहायता करना मेरा परम धर्म है। इसलिये मैं तुमसे विना मिले ही उनकी खोजमें जाता हूं। आजके सुहाग रात्रि जैसे सुखके समयमें मेरे वियोगसे तुम्हें दुःख अवश्य होगा। परन्तु क्या किया जाय, विवश हूं। मित्रका जबतक पता न लगा लूंगा तबतक सुखोंकी और देखूंगा भी नहीं यह मेरी प्रतिज्ञा है। इसीलिये जाता हूं। कहां जाऊंगा कह नहीं सकता। परन्तु मित्रके दर्शन करके जितनी जल्दी हो सकेगा तुमसे आकर मिलूंगा। तुम्हें मैं जीसे चाहता हूं। इस हृदयका अधिकारी तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं है। व्याकुल नहीं होना धैर्य्यसे समय व्यतीत करना। अधिक क्या लिखूं तुम स्वयं बुद्धिमती हो।"

चिट्ठी बन्द करके भूपसिंहने मदनमालतीका सिरनामा किया और सडक पर आकर अपने सेवकके हाथमें देकर जो कि घोडेकी बागडोर पकडे हुए खडा था, कहा—भवानी इस चिट्ठीको तुम महलोंमें पहुंचा देना। मैं किसी कामके लिये पासहीके इस गांवको जाता हूं। घोडेको भी तुम लिये जाओ, क्योंकि मेरी इच्छा पैदल जानेकी है। बहुत जल्दी मैं वहांसे लौट आऊंगा। बेचारा सेवक हक्काबक्कासा हो गया। कुछ पूछना चाहता था, परन्तु भूपसिंहके रौबके मारे कुछ न पूछ सका और "जो आज्ञा !" कहकर सुवर्णपुरकी ओर चल पडा। इधर भूपसिंह भी उसके चले जाने पर एक ओरको चल दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छट्ठा पर्व।

हीरालाल और रामकुंवरिको पलंगसे जकडे हुए छोडे बहुत दिन हो गये, पाठकोंको अब उनकी भी खबर लेनी चाहिये। जयदेवने पूछा--हीरालाल तुम लोगोंको इस दशामें देखकर मैं अवाक् हूं। कुछ अनुमान नहीं कर सकता कि, तुम्हें इस तरह विवश किसने किया? जल्दी कहो, तुम्हारे साथ यह अत्याचार किसने किया? हीरालालने मुखकी चेष्टा बदलकर कहा-"हाय! हाय! हम लोग चिल्ला चिल्ला कर मर गये पर किसीने कुछ नहीं सुना। डाकुओंने हमारी बडी दुर्दशा की मारा पीटा और जकडके बांध दिया।"

इतनेमें रामकुवरिने आंखोंसे आंसू बहाते हुए कहा—और हाय! मेरा तो सर्वस्व ही लूट लिया। वे (रतनचन्द) खेटपुरसे रातको लौट आये थे, सो उन्हें तो वे दुष्ट बांध ही ले गये। मैं जीती ही मर गई अब इस संसारमें किसका मुंह देखके जीऊंगी। हाय! हाय!! वे दुष्ट न जाने उनकी क्या दुर्दशा करेंगे। यह सुनकर जयदेवने पूछा हीरालाल क्या यह सच है कि, वे सब डाकू थे?

हीरालाल-हां वे डाकू ही थे।

जयदेव-यदि वे डाकू थे, तो उन्होंने चोरी भी अवश्य की होगी?

हीरालाल-हां! तिजोरीके कोठेमें वे बहुत देर तक घुसे रहे थे। न जाने वहांसे क्या ले गये और क्या छोड गये?

जयदेव—परन्तु तुम्हारी चाचीके शरीर पर जो कीमती जेवर हैं, उसको वे क्यों नहीं ले गये? और तुम्हारे गलेमें जो यह जड़ाऊ गोप और रत्नोंकी माला है, क्यों छोड गये?

रामकुवरी-नहीं जी। वे डाकू नहीं थे। कोई वस्तोंके ही दुश्मन थे उन्हें चोरीसे मतलब नहीं था। हम लोगोंको तकलीफ देने और सेठजीको ले जानेके अभिप्रायसे ही वे आये थे। सो पापियोंकी इच्छा पूर्ण हो गई। अब सेठजीकी जान बचना कठिन है। हाय! यदि तुमसे कुछ हो सके तो उन्हें बचाओ। (रोती है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जयदेव–परन्तु जब शेठजी सवेरे खेटपुरको चले गये थे, तब डाकुओंको यह मालुम कैसे हो गया कि, वे आगये हैं ! और मैं देखता आया हूं कि, घुडशालामें घोडा नहीं है। यदि सेठजी रातको आ गये होते, तो घोडा अवश्य होता। यदि कहो कि, वे लोग ले गये होंगे, तो जब वे चोरी करनेके अभिप्रायसे नहीं आये थे, तब अकेले घोडेको ही क्यों ले जाते ? और वस्तीमें घोडेकी चोरी छुप नहीं सकती, इतना क्या उन लोगोंको ज्ञान नहीं होगा।

इसके सिवाय इस बातपर भी तो सर्वथा विश्वास नहीं होता कि, सेठ रत्तनचन्दजीके इस वस्तीमें क्या इस संसारमें भी कोई दुश्मन हो, मैं उनके स्वभावको भली भांति जानता हूं। उनके दुश्मनोंका अस्तित्व बतलाना, एक प्रकारसे उनको गालियां देना है। और यह तो बताओ, तुम दोनोंको उन्होंने इकट्ठा एक पलङ्गपर एक साथ क्यों बांधा। तथा ये दो चिट्ठियां कौन लिखके डाल गया है यह कहकर जयदेवने वे चिट्ठियां उठा लीं और वांचकर अपने प्रश्नोंका उत्तर पानेके लिये उन दोनों पापियोंकी ओर देखा। परन्तु उन्हें अधोवदन और सर्वथा मौन-युक्त पाया। आखिर झूठ झूठ है और सच सच है। काठकी हांडी बहुत देर तक नही चढती। अन्तमें पोल खुल ही जाती है। हीरालाल शायद पलंगसे जकडे जानेका कुछ उलटा सीधा उत्तर दे देता, परन्तु चिट्ठीकी बातपर तो मौनके सिवाय कोई रास्ता ही नहीं था। प्रत्यक्षके लिये प्रमाणकी जरूरत ही नहीं रही। उन्हें इस प्रकार निःशब्द देखकर जयदेवने कहा–कहो कहो हीरालाल ! चुप क्यों हो गये ? और भी कुछ झूठ बोलो ? रामकुंवरिसे भी कुछ मदद मांगो। एक महापाप कर चुके हो अब उसको छुपानेके लिये और भी पाप करो।

अरे पापियों ! क्या तुम मुझे अन्धा समझते हो ! जो इस तरह वे सिर पैरकी बातें सुनाकर भुलाना चाहते हो। शायद अब भी तुम्हें पवित्र पुण्यात्मा बनने का होसला है। परन्तु जरा दर्पण लेकर अपना मलिन मुख तो देखो, वह क्या कह रहा है ? याद रक्खो, तुम्हारे सब पाप प्रगट हो चुके हैं, तुम्हारे हृदयकी कालिमा बाहिर निकल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आई है, अब वह छुपानेसे नहीं छुपेगी ! सच कहो, क्या तुमने इन चिट्ठियोंको नहीं पढा है। और क्या तुम लोग यह नहीं जानते कि, तुम लोगोंके घोर नारकी कर्मको देखकर सेठ रतनचन्दजी संसार से वैराग्य को प्राप्त हो गये हैं।

अरे नारकियों ! सेठ रतनचन्दजी तो वैसे ही सौम्य प्रकृतिके संवेगी सज्जन थे, यदि कोई पाषाणहृदय दीर्घमोही पुरुष भी तुम्हारी अयोग्य, अघट, और अश्रुतपूर्व नारकी लीलाको देखता, तो संसारसे भयभीत हो जाता। हाय ! दुर्लभ मनुष्य जन्मका तुमने ऐसा दुरुपयोग किया है, जिसका प्रायश्चित्त नहीं है ! नराधमो ! जिस शरीरमें देवदुर्लभ संयमकी पालना होती है, उससे तुमने पशुओंसे भी नीचतर कर्म किया है। काकके उडानेके लिये तुमने अमूल्य रत्न खोकर यह दीनातिदीन अवस्था प्राप्त की है जिसे देखकर दया उत्पन्न होती है।

शोक है कि, मैंने दूसरों जैसा क्रूर और कठिन हृदय नहीं पाया, नहीं तो तुम्हारे पापके प्रायश्चित्तका फैसला यहीं कर देता। सचमुच तुम्हारा अपराध अक्षम्य और असह्य है। परन्तु शायद तुम्हे अपने जीवनमें और भी कुछ पुण्य कमाना है, इसलिये मेरे हृदयमें ग्लानि तथा विरक्तिके सिवाय क्रोधका अंश भी उद्भावित नहीं होता।

यदि मैं सेठ रतनचन्दजीको पूज्य बुद्धिसे नहीं मानता और उनके आदेशकी पालना अपना कर्तव्य नहीं समझता, तो तुम्हारा मुंह देखे विना ही आज इस नगरको छोड देता। क्योंकि तुम जैसे नरपिशाचोंके दर्शनसे अपरिमित दुःख होता है। परन्तु क्या करूं अपने हितचिन्तकके अनुरोधकी अवहेलना करते नहीं बनती। शायद तुम्हें भरोसा नहीं होगा, कि तुम्हारी सम्पूर्ण सम्पत्तिका एक मात्र अधिकारी मैं बनाया गया हूं, इसलिये एक वार तुम दोनों इस वसीयतनामेको पढ लो, और देख लो तुम्हें तुम्हारे पापोंका फल मिलना प्रारम्भ हो गया है।

ऐसा कहकर जयदेव ने उसी बेवशी की हालत में उन दोनों के साम्हने यह वसीयतनामा रख दिया। उसके बांचते समय उन पापियों के हृदयकी जो दशा थी, उसका चित्र इस लेखनीसे नहीं खींचा जा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता पाठकगण अनुमानसे जानलें। एकतो वे अपने पापोंका भण्डा-फोर होनेसे वैसे ही सूख रहे थे, दूसरे वसीयतनामेकी सूरत देखकर तो वेचारे अधमरे हो गये। कर्तव्य विमूढ होकर चित्र लिखेसे रह गये।

जयदेवने वसीयतनामेको अपने खींसेमें सम्हालके रख लिया और उन दोनोंको वेबशीसे मुक्त करके कहा—तुम लोग यह मत समझो कि, तुम्हारी इस सम्पत्तिका मैं उपभोग करूंगा। नहीं, मैं इससे सर्वथा पृथक् रहूंगा। मुझे इसकी जरूरत भी नहीं है। परन्तु तुम जैसे दुराचारियोंके हाथ इसे न लगने दूंगा। किसी सत्कार्यमें लगाकर महानुभाव रतनचन्दजीके परिश्रमको सफल करूंगा। हां! तुम लोग यदि अपने आचारोंको सुधार सको, अपने पापोंका प्राय-श्चित्त कर सको, अपने मनुष्य जन्मके गौरवको समझ सको और सत्कार्योंके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करके संसारमें कीर्ति सम्पादन कर सको तो मैं सच कहता हूं, इस सम्पूर्ण सम्पत्तिके अधिकारी तुम्हीं हो।

एक बात और है। वह यह कि तुम अपने मलीन जीवनसे निराश न हो जाओ और यश प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेमें उत्साह दिखलाते रहो। इसलिये सिवाय मेरे तुम्हारे इस दुष्कृत्यको कोई भी नहीं जान सकेगा।

प्रायः ऐसा देखा गया है कि, जिनका पापकर्म एक बार संसारमें प्रगट होजाता है, वे निर्लज्ज होकर उससे भी अधिक घोर कर्म करने लगते हैं। इसी विचारसे तुम पर यह दया की जाती है। आशा है कि, तुम अपने चारित्र दिन पर दिन उन्नत करके इस कलंकको धोकर उज्वल बननेका प्रयत्न करोगे। जाओ और आज ही से पश्चात्ताप आदिसे अपने पापोंका प्रायश्चित्त करना प्रारम्भ कर दो। लोगोंको किसी प्रकारका सन्देह न हो, इसलिये मैं इस समय तुम्हारे रहनेके स्थानादिका परिवर्तन नहीं कर सकता। जिस तरह पहले रहते थे, उसी प्रकारसे रहो। दूकानकी सम्पूर्ण व्यवस्था मैं अपने हाथ में रक्खूंगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके पश्चात जयदेवने तिजोरी बगैरहकी सम्पूर्ण सम्पत्ति सम्भालकर उसकी एक फेहिरिस्त तैयार की, और ताले आदिकी सब व्यवस्था करके दूकानकी राह ली। उस दिन रामकुंवरि और हीरालालने शोक सन्तापमें भोजन नही किया।

सातवां पर्व।

हीरालाल और रामकुंवरि की इस घटनाको बहुत दिन हो गये। जयदेवको आशा थी कि, ये सुधर जावेगे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। हीरालालने दुराचार नहीं छोडे। कदाचित् सस्त्रोक रहनेसे यह सम्हल जावेगा ऐसा विचार कर जयदेवने पीहरसे हीरालालकी बहूको भी बुलबा दिया। परन्तु नीम न मीठी होय खावे गुड घीसे के अनुसार वह ज्योंका त्यों बना रहा। हीरालालकी स्त्री सुभद्रा बडी सुशीला और बुद्धिमती थी। उसने अपने पतिको सदाचारी बनानेके लिये शक्तिभर प्रयत्न किये। मन वचन कायसे सेवा की, नानारूपमें प्रार्थनायें की, परस्त्रियोंकी, वेश्याओंकी निन्दा की, उनके समागमके दोष बतलाये तज्जनित पापोंके नरक निगोदादि फल बतलाये, और लोकोपवादका भय बतलाया, परन्तु यह सब चिकने घड़े परका पानी हुआ। हीरालाल का वज्र हृदय किसी प्रकारसे नरम नहीं हुआ। उस बेचारीको उलटा अपमानित और तिरस्कृत होना पडा।

रामकुंवरि भी यद्यपि प्रगट रूपमें पतिव्रता बनी रहती थी, परन्तु दुराचार सेवनकी ओर उसकी प्रवृत्ति पहलेकी अपेक्षा कईगुनी अधिक होगई थी। हीरालालसे भी उसका सम्बन्ध नही छूटा था। यद्यपि रामकुंवरि और हीरालाल जानते थे, कि हमारे दुराचारोंको जाननेवाला कोई नहीं परन्तु जयदेव उसके कृत्योंको रत्ती २ जानता था।

एक दिन जब विश्वस्तमार्गसे यह मालूम हुआ कि, हीरालाल और उसके सहचारी इस बातकी गुप्तमंत्रणा कर रहे हैं कि जयदेवको किसी प्रकारसे खपा डालना। तब जयदेवको बहुत दुःख हुआ। यद्यपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसे यह आशा बहुत कम थी कि, हीरालाल और रामकुबरिके चरित्र अच्छे हो जावेंगे। तो भी उसे यह स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था कि मुझे उस चिरस्मरणीय अपरिमित उपकारका बदला पापियोंकी ओरसे इस रूपमें मिलेगा।

उस दिन इन्हीं सब बातोंका बिचार करता हुआ और दुःखरूप संसारका भयानक चित्र देखता हुआ जयदेव सो गया। आख लगते ही वह देखता क्या है कि एक विकटाकार पुरुष सुशीलाका आंचल पकडके खींच रहा है, जिससे उसका आधा शरीर उघड गया है। और आधेको वह अपने हाथसे बडी कठिनाईसे सम्भाले हुये है बाल खुले है। आंखोंसे आंसुओंकी अविरल धारा बह रही है। जोर २ से चिल्लाकर कह रही है—नाथ। मुझे बचाओ। देखो, तुम्हारे देखते हुये यह दुष्ट मेरी लज्जा हरण कर रहा है।

हाय! हाय! तुम्हारा पुरुषत्व, तुम्हारा क्षत्रीधर्म आज क्या लुप्त होगया, जो मेरी ओर देखते भी नहीं हो। हाय! आप जैसे जगच्छिरोमणि विद्वान वीररत्न की पत्नी क्या मैं इसीलिये हुई थी कि मेरा सतीत्व संकटमें आ पडेगा, और कोई सहायता नहीं करेगा। हे प्राणेश्वर! क्या मुझ वीरबालाको अब यह समझकर कि, संसारमें क्षत्रीयोंका पराक्रम विदा ले चुका है। स्वयं अपने प्राणोत्सर्ग कर देना चाहिये।

अच्छा, जीवनाधार! तुम कुछ उत्तर नहीं देते हो, तो लो मैं चली, हो सकेगा, और अटल प्रेम कुछ सहायता करेगा, तो दूसरे जन्ममें आपसे मिलूंगी। नहीं तो·····इतना कहते २ उस कल्पना मूर्तिने अपने आन्तरीय वस्त्रमें से एक तीक्ष्ण छुरी निकाली और चाहा कि, पेटमें पेराकर पार हो जाऊं कि जयदेव चिल्लाकर उठ खडा हुआ और छुरी पकडनेके लिये साम्हनेकी ओर उसने हाथ फैलाये। परन्तु वहां था क्या, जो पकड लेता। पहरेपर टहलते हुए सिपाहीका हाथ पकड लिया। वह घबडाकर बोला, मुनीमजी। आप यह क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर रहे हैं ? यह तो मैं आपका सिपाही हूं। जान पडता है, इस समय आप कोई स्वप्न देखकर बहक गये हैं। सचेत होकर अपनेको सम्भालिये।

जयदेवने आंख खोलकर देखा तो सचमुच सिपाहीका हाथ उनके हाथमें है। और कमरेमें चिराग चल रहा है जिसमें वहांकी सब चीजें साफ २ दिखलाई दे रही हैं। न सुशीला है, न विकटाकार पुरुष है और न वह स्थान है। जयदेव इससे कुछेक लज्जित होकर सिपाहीका हाथ छोडकर बैठ गया और हाथ मुंह धोकर चादर ओढकर फिर लेट गया। परन्तु बहुत समय तक नींद नहीं आई। स्वप्नके ध्यानसे वह विकल होने लगा।

सुशीलाकी बेबशी उसके हृदयके टुकडे २ करने लगी। उसकी अत्यन्त करुणध्वनि कानोंके पास बार २ गूंजकर दुखी करने लगी। जयदेवने सोचा, क्या सचमुच सुशीला ऐसी विपत्तिमें होगी। हाय ! मैं कैसा निर्दयी हूं, जो उसे भूलकर यहां दूसरोंकी चिंतामें दुर्बल हो रहा हूं। भला मुझे इन व्यर्थकी चिन्ताओंसे क्या ? यह संसार है। घर घर ऐसे ही मठियारे चूल्हे हो रहे हैं। मुझे अपनी चिन्ता करनी चाहिये।

प्यारे भूपसिंह ! तुम न जाने कहां होओगे। हाय ! मैं तुम जैसे सच्चे मित्रको भी भूल गया। न जाने समुद्रसे तुम्हारा उद्धार हुआ होगा, या नहीं। तुम्हारे वृद्ध पिता तुम्हारे बियोगसे कितने दुखी होगे हाय ! मुझ अभागेके कारण तुम्हें अपने प्राणोंका संकट सहना पडा।

इस प्रकार नानाप्रकारके विचारोंमें गोते खाते खाते रात पूरी हो गई। जयदेवने उठकर नमस्कार मंत्र का स्मरण किया और अपने दिनके कर्तव्योंका निश्चय करके शय्याका त्याग किया। पश्चात् शौच मुखमार्जन स्नान संध्या भोजनादि कार्योंसे निवृत्त होकर उसने अपने एक सदाचारी विश्वस्त मित्रको बुलाकर दूकानका सम्पूर्ण कार्य समझा दिया और उचित वेतन नियत करके उसे दूकानका कार्यवाहक मैनेजर बना दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके पश्चात् नगरके सम्पूर्ण प्रतिष्ठित पुरूषोंको और कंचनपुर नरेशको आमंत्रित करके जयदेवने एक सभा की। उसमें सबका यथोचित सत्कार करके उसने कहा—महाराजाधिराज ? आप लोग जानते हैं कि मैं एक परदेशी व्यक्ति हूं। सुनामधेय सेठ रतनचन्दजी विश्वास करके मुझे अपनी दूकान सौंप गये थे। तदनुसार आजतक जिसतरह बना, मैंने इस दूकानका प्रबन्ध किया। परन्तु अब मैं स्वदेश जाना चाहता हूं चूंकि सेठजीके पुत्र हीरालाल इस योग्य नहीं हैं कि, दूकान का कार्य चला सके, इस प्रतिष्ठित दूकानको देखरेख आप लोगोंके जिम्मेवर करके और इसकी उन्नतिकी अवनतिकी लज्जा आपके हाथ देकर निश्चिन्ततासे जाता हूं।

वर्तमानमें मैंने दूकानका प्रबंध अपने विश्वस्त मित्र विनीतचन्द्रको सौंपा है, आशा है कि आपकी देखरेखमें वे उत्तम रीतिसे कार्य सम्पादन करेंगे सेठ रतनचन्दजी आपके नगरके एक यशस्वी और प्रतिष्ठित वणिक थे। इसलिये मुझे सम्पूर्णतया आशा है कि आप लोग उनकी इस दूकानको चिरकाल तक रक्षित रखके उनका कीर्तिस्तंभ बनाये रक्खेंगे। इसके सिवाय दीक्षित होनेके समय सेठ रतनचन्दजी मुझे एक लाख रुपया इसलिये सौंप गये हैं कि, उससे कोई लोकोपकारी धर्मकार्य संपादन किया जावे।

सो यह रुपया मैं महाराजके हस्तगत करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि शीघ्रही इस रुपयेसे एक पाठशाला खोल दी जावे। और उसका नाम सेठ रतनचन्द पाठशाला रक्खा जावे। उसमें ऐसे विद्यार्थी पढाये जावें जो २५ बर्ष तक ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याध्ययन करें और उत्तीर्ण देश तथा धर्मकी सेवा करे असमर्थ विद्यार्थियोंको पाठशाला की ओरसे भोजन वस्त्रका प्रबंध किया जावे। महाराज ! मुझे खेद है कि उक्त भावी पाठशालाकी ओर मैं कुछ भी सेवा न कर सका और जाता हूं तो भी यह संतोष है कि आप जैसे विद्वान नरनाथके हाथसे उसका कार्य बहुत उत्कृष्ट रीतिसे संपादन होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तमें बिदाईकी क्षमा प्रार्थना करके मैं आप लोगोंकी आज्ञा लेता हूं। जयदेवका वक्तव्य समाप्त होनेपर महाराजने उसका अनुमोदन किया और अपनी प्रसन्नता प्रगट की। साथ ही अन्यान्य सभ्यगणोंने भी करतल ध्वनिसे उसमें सम्मति प्रदर्शित की। इसके पश्चात् महाराजकी आज्ञानुसार उनके मंत्रीने दूकानसे संपूर्ण वहीखातोंकी जांच करके कोषकी संभाल की और सबको यथाबस्थित पाया।

तदनंतर सभा विसर्जन करके जयदेवने महाराजको एकांत स्थलमें ले जाकर सेठ रतनन्चदका लिखा हुआ बसीयतनामा सौंप दिया और हीरालाल रामकुंबरिके कच्चे चिट्ठेको सुनाकर कहा—इस जायदाद पर हीरालालका कोई स्वत्व नहीं है और अपने दुराचारोंसे वह दयाका पात्र भी नहीं है तो भी यदि आपकी सम्मति हो तो मैं चाहता हूं कि कुछ पूंजी देकर उसे एक दूकान करा दी जावे, जिसमें वह अपना उदर निर्वाह कर सके, और रामकुंबरिको भी कुछ निर्बाह योग्य द्रव्य दे दिया जावे।

महाराजने जयदेवके करुण हृदय पर आश्चर्य करते हुए इस बिषयमें स्वीकारता दे दी और पूछा—करुणामूर्ति जयदेव! यह तो सब होचुका परन्तु अभीतक यह प्रगट नहीं हुआ कि, तुम कहां जाते हो, क्यों जाते हो और इस विपुल सम्पत्तिका उपभोग कब करोगे? जयदेव ने नम्र होकर कहा—महाराज! आपकी कृपासे मैं स्वयं एक विपुल लक्ष्मीका स्वामी हूं। मेरे भोगनेके लिये वही यथेष्ट है। एक आकस्मिक घटनासे मैं इस नगर में आगया था। सो रतनचन्दजीके स्नेह से इतने दिन तक यहां ठहरा रहा। अब बन्धुजनोंका मोह अतिशय व्याकुल कर रहा है, इसलिये जाता हूं।

रतनचन्दजी मुझे अपनी सम्पत्तिका अधिकारी बना गये हैं, यह सच है, परन्तु मैं स्वयं उसपर अपना अधिकार नहीं समझता। इसलिये उसे आप लोगोंको सौंप जाता हूं। आप जो चाहें सो करें। यद्यपि मित्रताके सम्बन्धसे मैं यह सलाह दे सकता हूं कि, आप उसे किसी धर्मकार्यमें लगाते रहें, परन्तु स्वार्थी बनकर उसका स्वयं दान नहीं कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता। क्योंकि उसपर मेरा उतनाही स्वत्व है, जितना आपका। कंचनपुरनरेश जयदेवके उदार विचारोंको सुनकर अवाक् हो रहे। आंखोंसे स्नेहके आनन्द आंसू टपकने लगे। खडे होकर उन्होंने उसे हृदयसे लगा लिया और कहा—जयदेव! अफसोस है कि, तुम जैसे पुरुषरत्न अभीतक हमसे अप्रकट रहे और आज जब प्रकट हुए तब वियोग सन्मुख खडा है। जी कहता है कि तुम्हें अपने नेत्रोंके सामनेसे अलग न होने दूं, परन्तु तुम्हारे असह्य बन्धु वियोगको भी मैं सहन नहीं कर सकता।

अस्तु? तुम सज्जन हो, विद्वान् हो, और हृदयके परीक्षक हो। मेरे नवीन स्नेहकी अवहेलना न करोगे और अपना सम्पूर्ण परिचय देकर बहुत शीघ्र मुझसे मिलोगे, इसलिये इस समय मैं तुम्हें नहीं रोकता हूं। जाओ प्रसन्नतासे जाओ। परन्तु चलते समय एकबार मुझसे फिर मिलते जाना, महाराजके प्रेमपूरित वाक्योंसे जयदेवका गला भी भर आया। एक कागज पर अपने ग्रामादिका पता लिखकर देनेके सिवाय मुंहसे वह कुछ भी न कह सका। महाराजने अपने महलोंकी ओर गमन किया, सत्कारके लिये जयदेव उन्हे कुछ दूर तक पहुंचानेके लिये गया।

इसके पश्चात् उस दिन और कुछ नहीं होसका। क्योंकि चारों ओर यह खबर फैल गई कि "जयदेव स्वदेश जानेवाले हैं" इसलिये झुंडके झुंड लोग उनसे मिलनेके लिये आने लगे। और जयदेव उन्हें आश्वासन देकर बिदा करने लगे। कंचनपुरमें शायद ही कोई ऐसा होगा, जो जयदेवको न चाहता हो। उसके प्रत्येक गुणकी घर घर प्रशंसा होती थी। इसलिये आज उसके गमन समाचारसे सब ही को दुःख हुआ। लोगोंके आवागमनकी भीड उस दिन आधी रात तक कम नहीं हुई।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही जयदेव कंचनपुर नरेशसे मिलने गये वहां जाकर देखा तो लोगोंकी अगणित भीड एकत्र थी। मालूम हुआ यह सब उन्हींकी विदाईकी तैयारी हो रही है। महाराजने बडे स्नेहसे उन्हें बिठाया। पश्चात् राजपुरोहितने जयदेवके ललाटपर मंगल तिलक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके अक्षत डालते हुए एक आशीर्वादात्मक श्लोक पढा, और महाराजने एक श्रीफल और बहुतसी भेंट दी।

तदनंतर बडी धूमधामसे जयदेवकी विदाई हुई। गाजेबाजेके साथ सब लोग अनुमान १ मील तक पहुंचानेके लिये गये। अन्तमें अश्रुबिन्दुओंके पुष्प समर्पित करते हुए और जुहारादिके लिये कर व्यंजन संचालन करते हुए, सब लोगोंने उन्हें जानेकी आज्ञा दी। महाराजने एकवार फिरभी हृदयसे लगाकर आशीर्वाद दिया और जयदेवने प्रणाम करके अपने अभीष्ट स्थानकी ओर गमन किया। लोगोंके बहुत आग्रह करनेपर भी एक घोडेके सिवाय जयदेवने और कुछ भी साथमें न लिया।

आठवां पर्व।

पृथ्वीका सार प्राणिवर्ग, प्राणी जगतका सार मनुष्य समाज, मानव समाजका सार रमणी, और रमणीका सार रूप है। रूप ही स्वर्ग, रूप ही सम्पत्ति और रूप हीं सम्पूर्ण सुखोंका प्रस्रवण है। परन्तु रूप भी सारहीन नहीं है, रूपका भी सार है। यदि रूप सुखोंका निर्झर है तो उसके सारको सुखोंके सारका निर्झर कहना चाहिये।

इस सारका नाम सुनते ही हृदयमें आनन्दामृत स्रावित होने लगता है, सम्पूर्ण दुख भूल जाते हैं, योगियोंकी नाईं चित्तकी सम्पूर्ण वृत्तियां एकाग्र हो जाती हैं, और सांसारिक लज्जा, भय, तिरस्कार, ईर्षा, द्वेष, लोभ, क्रोधादि विकारभावोंका लय होजाता है। मानवीय भाषामें उस सारको प्रेम–स्वर्गीय प्रेम–स्वच्छन्द प्रेम कहते हैं। यह समस्त चेतनात्मक जगत् इसी प्रेमका फल है। प्रेम न होता तो संसार भी नहीं होता।

प्रेमके विना जीवन भारभूत है, मर्कटके गलेका हार है अथवा शवका शृंगार है। जो प्रेमकी उपासना नहीं करता है, वह मानव जन्मका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिरस्कार करता है। प्रेमकी पूजा करना प्राणीका पवित्र पुण्यकर्म है। उसमें दोषका-कलंकका प्रवेश नहीं है जो प्रेमको पापदृष्टिसे देखते हैं, वे स्वयं पापी हैं। प्रेमसे पापका सम्बन्ध नहीं है। बल्कि प्रेमका प्रतिपक्षी अप्रेम ही पाप है। जिन्होंने यौवनके साथ २ जगन्मनोहारी रूप और लावण्य पाया है, उन्हें इस पापसे बचना चाहिये और सुखरूप स्वच्छन्द प्रेमके एकांत उपासक बनना चाहिये।

प्रेममें द्वित्व नहीं है। प्रेम सबको एक दृष्टिसे देखता है। एक कोपीनावशेष दरिद्री और कुबेर सदृश धनिकमें प्रेम एक रूपसे प्रवेश करता है। विद्वान्, मूर्ख, बलवान, निर्बल तथा रूपवान् और कुरूप सब ही प्रेमके समान अधिकार-प्राप्त मित्र हैं।

प्रेमके सम्यग्दृष्टि 'राज्यमें' निज और 'पर' का भेद नहीं है। प्रेमराज्यकी सीमामें आते ही पर को निजत्व प्राप्त हो जाता है। बल्कि यों कहना चाहिये कि, निजत्वका भी लोप होकर एकत्व एक प्राणत्व हो जाता है। पर शब्दकी व्युत्पत्ति ही प्रेमशास्त्रमें नहीं है! जो प्रेमका उपासक है सच्चा सेवक है, वह परत्वबुद्धिको सर्वथा छोडकर एकत्व के एक प्राणत्वके आनन्द राज्यमें विहार करता हुआ स्वर्गसुखका परिहास करता है।

तुम स्वयं विदुषी हो, प्रेमकी उक्त व्याख्या करनेकी तुम्हारे सन्मुख आवश्यकता नहीं थी, स्मरणमात्र करानेके लिये मैंने यह सब किया है यदि तुमने अपने चित्तको स्थिर करके मेरे यह चार शब्द सुन लिये हैं, तो मैं 'सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः' के सिद्धांतके अनुसार कह सकती हूं कि अब तुम्हारे हृदयसे परत्वरूपी पिशाच निकल गया होगा और एकत्वके लिये व्याकुलता होने लगी होगी। वाह्य दृष्टिसे भी देखो, उदयसिंहमें किस बातकी त्रुटि है?

ईश्वर कृपासे रूप, लावण्य, पराक्रम, प्रतिभा, वैभव सब ही कुछ उनमें मौजूद हैं वे अपनी विपुल सम्पत्तिके एक मात्र अधिकारी हैं। सैकडों रूप गर्विता सुन्दरियां उनके लिये तरस रही हैं, जीवन दे रही हैं, पर वे आंख उठाकर भी नहीं देखते। तुम्हारा परम सौभाग्य है, जो तुमपर उनका जी लग गया है। समझ लो कि, इस समय तुम्हारे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हाथमें तीन लोकका मुकुटमणि आ गया है। अतएव उसकी अवहेलना मत करो। उसे हृदयसे लगाकर जीवन सफल करो।

यह दुर्लभ मनुष्यजन्म बार २ नहीं मिलता। सूर्यपुरके पूर्व परिचित बागके कमरेमें शोकाकुला सुशीलाके सम्मुख एक स्त्री उपर्युक्त प्रेमशास्त्रका व्याख्यान कर रही है। यह स्त्री उमरमें ३० वर्षसे कम न होगी, तौभी यौवन—सौन्दर्य्य उसके अंग अंगमें निवास कर रहा था वह बडी सज धजसे बैठी हुई, कटीली २ आंखोंसे भावभंगी प्रगट करती हुई और ताम्बूल रंजित अधर पल्लवोंमें कुन्दकलिका सदृश दन्तपंक्तिकी प्रभा प्रस्फुटित करती हुई अपना व्याख्यान दे रही थी।

सुशीला एक चटाईपर भीतके सहारे बैठी हुई सिर नीचा किये यह सब कुछ सुन रही थी। व्याख्याता स्त्री सूर्यपुरकी एक प्रसिद्ध दूती है अपने सम्पूर्ण प्रयत्नोंको निष्फल देखकर उदयसिंहने इसकी शरण ली है। ऐसा प्रसिद्ध है कि, इस दूतीके द्वारा अशक्यसे भी अशक्य कार्य सिद्ध हुए हैं। जहां इसके हाथ लगे हैं, वहां सफलता अवश्य हुई है। दूती प्रत्येक विषयमें असाधारण पांडित्य रखती है। बडे २ वाचाल उसके साम्हने चुप हो जाते हैं, चालाक चूक जाते हैं, और दृढप्रतिज्ञ प्रतिष्ठाभ्रष्ट हो गुलाम बने हैं।

बडी २ पतिव्रता कुलांगनायें उसकी कृपासे आज पर पुरुषोंको गले लगा रही है, बडे विचारशील एक पत्नी व्रतधारी पर रमणीयोंके एकांत प्रेमी हो रहे हैं, और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारीगण भी कुलटा तथा वेश्याओंके क्रीतदास बने हुए जीवन सार्थक कर रहे हैं। उदयसिंहको खूब आशा है कि, आज इसके द्वारा हम सफल-मनोरथ होंगे और बहुत शीघ्र इन्द्रकाननमें विहार करनेका आनन्द लूटेंगे।

दूतीका व्याख्यान समाप्त होने पर सुशीलाने कहा—मैं तुम्हारा उपदेश सुन चुकी, अब विशेष परिश्रम मत करो। तुम्हारा पांडित्य यहां काम न देगा। आकाश पुष्पोंको तोडनेके लिये हाथ मत फैलाओ रेतको पेलकर तेलकी आशा छोड दो। यहां वे चने नहीं हैं, जो दांतों से पीसकर चूर्ण हो जाते हैं, ये दांतोंको भी चूर्ण करनेवाले लोहेके चने हैं। प्रेमकी मीमांसा करनेके लिये तुमने जो बुद्धि खर्च की है, उस पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हंसी आती है। भेद ज्ञान पर तुमने खूब ही कुठार चलाया है।

जिस निज-पर के भेद ज्ञान विना यह जीव अनादिकालसे चारों गतियोंमें भ्रमण करता हुआ नाना प्रकारके दुःख भोग रहा है, उसही-को समूल नष्ट करनेके लिये तुम्हारा प्रयत्न हुवा है। तुम्हारा प्रतिपादन किया हुआ प्रेम नही। पैशाचिक, पाशविक किंवा अमानुषिक कर्म है पशुओंमें ऐसा ही प्रेम देखा जाता है।

माता बहिन स्त्रीके भेदज्ञान विना वे ही प्रेमकी उपासना करते हैं, मनुष्य नहीं। मनुष्य और पशुओंमें यही भेद है। तुम्हारे प्रेम राज्यकी दुहाई पशु समाजमें ही फिर सकती है, मानव समाजमें नही। जिस दिन तुम्हारे प्रेमका राज्य मानव समाजमें होगा, उस दिन पृथ्वी कांप उठेगी, प्रलय हो जावेगा।

दूती—ओ! हो! बडा उलाहना दे डाला। खैर ऐसा ही सही परंतु मेरी पिछली बातका भी तो उत्तर दे दो। यों तो तुम पंडिता हो, मैं शास्त्रार्थमें तुमसे कब जीत सकती हूं?

सुशीला—क्या इतनेसे तुम्हारी बातका उत्तर नहीं हुआ? अस्तु। अब सुनलो और खूब ध्यान लगाकर सुनलो कि, तुम जैसी हजार उप-देशिका भी आजावें, परन्तु मेरा बाल बांका नहीं कर सकेंगी। तुम क्यों व्यर्थ ही प्रयत्न करती हो? बाज पराये पाणि परि, तू पंछिन जिन मार' की उक्ति पर जरा तुम भी बिचार करो और इस पापरूप व्यव-सायको तिलांजली दे दो।

उदयसिहसे कह दो, सूर्य पूर्वसे पश्चिममें उग सकता है, अग्नि शीतल हो सकती है, पाषाणपर कमल जम सकता है, पृथ्वीपर जहाज चल सकते हैं, परन्तु सुशीलाके हृदयका अधिकारी महामति जयदेवके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं हो सकता।

प्राण चले जावेंगे पर यह प्रतिज्ञा नही जावेगी, सदा स्थिर एक-स्वरूप रहेगी। साथमें यह भी कहे देती हूं कि, स्त्रियां स्वभावतः लज्जा शीला होती हैं परन्तु तुममें यह गुण सर्वथा नहीं है, यह देख मुझे दुःख और ग्लानि होती है। इसलिये जाओ और अब मेरे सन्मुख नहीं आना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूती-(नखरेसे) भला, मुझपर इतनी खफगी क्यों ? तुम्हारे मिलानेकी कोशिशका मुझे क्या यही इनाम मिलेगा ? मेरे सरीखा परोपकारका व्यापारकरनेवाला और दूसरा कौन है ! तुम जैसे हजार तरसते हुओंको मिलाना और प्रेमके सूत्रमें बांधना जिसका पवित्र कर्म है, उसे बुरा व्यवसाय कौन कह सकता है ? मुझसे घृणा करना तुम्हारी गलती है। अस्तु ! अब यह तो कहो कि, ये नाज नखरे दिखला २ कर उन्हें कबतक तरसाओगी। बहुत तो होचुका, अब जाने दो। परीक्षा होचुकी। कहीं ऐसा न हो कि, परीक्षामें बेचारोंकी जानपर आवने। तुमने तो वही मसल कर रक्खी है कि, मेंडकोंकी जान जावे, लडकोंका खेल। तुम्हें विश्वास न हो, तो चलो, मैं चलके दिखला दूं कि, उदयसिंह तुम्हारे बियोगमें कैसे कराह रहे हैं।

इतना कहकर दूती हाथ पकडके उठानेको अग्रसर हुई कि, वह शांतिमूर्ति सुशीला क्रोधसे कांप उठी। एकाएक सिंहनीसी गरजकर क्रोध स्फुरित कण्ठसे बोली-खबरदार पापिनी ! एक शब्द भी मर्यादा से बाहर उच्चारण करेगी, तो जिह्वा खींच लूंगी। यदि कुशल चाहना है, तो चुपचाप यहांसे चली जा।

दूती बिलकुल नही डरी, उल्टी सिर मटकाकर कहने लगी:-ऊंह ! बडी मर्यादाबाली हो कहीं वहां भी मर्यादाको पकडे न बैठी रहना। इतना कहा ही था कि, सुशीलाके नेत्रोंसे क्रोधकी चिनगारियां निकलने लगीं दिवालपर लटकते हुए कोडेको निकालकर वह दूतीदेवीकी पूजा करने लगी। दूती चिल्लाकर भागी तो भी दरवाजे तक जाते २ अच्छे ताजे २ पचीस तीस कोडोंसे कमका प्रसाद नही चढा। कोलाहल सुनकर चारों ओरसे दासियां दौड आईं। देखा, तो दूती भागी जारही है और सुशीला सुकुमार रौद्र रूप धारण किये खड़ी है।

नववां पर्व।

आज सूर्यपुरमें घरघर गलीगली इस बातकी चर्चा हो रही है कि तालाबके समीप बगीचेमें एक बडे महात्मा योगी ठहरे हुए हैं। वे पंचाग्नि तपते हैं, अधोमुख झूलते हैं, कंटकशय्यापर सोते हैं, और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल फलाहार करते हैं।

वे न किसीसे कुछ याचना करते हैं और न किसी के यहां भोजन करते हैं। निरन्तर मौन धारण किये रहते हैं। परन्तु कभी २ किसी पर प्रसन्न होते हैं, तो एक दो बातें करते हैं। उनकी कृपासे सैकडों अन्धोंको सूझने लगा है, सैकड़ों जन्म रोगी नीरोग होगये हैं, पागल चतुर हो गये हैं, लंगडे दौडने लगे हैं, बहरे सुनने लगे हैं और निर्धन धनी हो गये हैं। मारन, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तंभन आदि संपूर्ण विद्याओंके वे पारगामी हैं। कहांतक कहें, जहां सुनिये वहां ही उनकी महिमाकी एक नई बात सुनाई देती है। बालक, युवा, वृद्ध, पुरुष, स्त्रियां सब ही इसी कथाके प्रेमी बन रहे हैं।

जिस जगह योगीजी ठहरे हैं, वहां हजारों पुरुष स्त्रियोंकी भीड हो रही है। साधु महाशय झाडकी डालीसे उलटे लटके हुए धूम्रपान कर रहे हैं। एक चेला उनके पास ही हाथ जोडे खडा है। दर्शकगण वंदना नमस्कारादि कर रहे हैं। दश पंद्रह अन्धे लंगडे बहरे धूनीके चारों तरफ जम रहे हैं, एक घन्टेके पश्चात योगीजी झाडसे उतरे।

लोगोंने जय जय शब्द करके उनका अभिवादन किया। पश्चात् एक एक करके लोग प्रार्थना करने लगे और योगीजी धूनीमेंसे थोडी २ भस्म उठाकर देने लगे। अन्धोंसे कहा—घीमें घिसकर आंजो, लंगडोंसे कहा, पानीमें घिसकर लेप करो, बहरोंसे कहा—पानीमें घिसकर कान में डालो। सारांश यह कि, सब प्रकारकी आधिव्याधियोंपर योगीजी एक मात्र धूनीकी राख देते थे। दूसरी ओरसे अनेक पुरुष धन्य २ जय जय कहते हुए आ रहे थे।

कोई कहता था, महाराज! एक ही बार लगानेसे मैं सूझता हो गया, कोई कहता था मेरे पैर अच्छे हो गये और कोई कहता था मेरा कुष्ट जाता रहा। इस तरह कोई कुछ, कोई कुछ कहते थे, और आकर महात्माके चरणोंसे लिपट जाते थे, और दर्शकगण आश्चर्यान्वित होते हुए अपने २ घर जाते थे और उनके द्वारा आश्चर्यजनक प्रशंसा सुनके दूसरे दर्शक आते थे। इस तरह सारे दिन आवागमन जारी रहता था योगीजी कभी धूनीपर बैठके भस्म वितरण करते थे। कभी कंटक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शय्यापर लेटते थे, और कभी पंचाग्नि तपते थे।

योगीजीकी कलाको फैले महीने भरसे ज्यादा होगया। एक दिन उदयसिंह अपने दो चार मित्रोंके साथ बैठा हुआ था, बलबन्तसिंह भी उपस्थित था। उनमें यहां बहांकी गपोडेबाजी होते होते इसी बिषयकी चरचा छिडी। बातोंही बातोंमें वशीकरणकी बात चली। एकने कहा अन्यान्य कलाओंकी नाईं इस विषयमें भी योगीजी बडे सिद्धहस्त हैं। अनेक लोगोंको उनके वशीकरणसे प्रत्यक्ष फल मिले हैं।

दूसरेने कहा—उसदिन दो तीन पनिहारियोंको देखो न उन्होंने धूल फेंककर कैसा मंत्र—मुग्ध कर दिया था कि, घण्टों टकटकी बांधे हुए खडी रही थी। जब दूसरी धूल फेंकी थी, तब कहीं बेचारी बहांसे टली थी। तीसरेने कहा—भाई। उनकी सब ही बातें विचित्र होती हैं सच तो यह है कि, आज तक न कोई ऐसा महात्मा आया है और न आवेगा। क्यों उदयसिंहजी आपने तो उनके दर्शन किये ही होंगे! उदयसिंहने कहा—नहीं, अभीतक तो मैं वहां नहीं गया हूं परन्तु अब विचार है कि जरूर जाऊंगा। बल्कि बलवन्तसिंह यदि सम्मति देंगे तो आज ही जाके दर्शन करूंगा।

इसके पश्चात् सब लोग अपने अपने घर चले गये। और बलवन्तसिंह तथा उदयसिंह परस्पर सम्मति मिलाकर योगीराजके दर्शनके लिये गये। इन्हें दूरसे आते हुए देखकर चेलारामने जम्हाई लेते हुए कहा—निश्चय ही "उदय बलवान" है। योगीजीने अभिप्राय समझके मुसुकरा दिया।

रात्रिका समय था। दशपांच आदमियोंके सिवाय योगीराजके यहां अधिक भीड न थी। सो भी जब उदयसिंहने एकान्तमें कुछ प्रार्थना करनेकी इच्छा प्रगट की तब वहांसे हटा दिये गये। जब उदय बलवन्त योगी और उनके शिष्यके सिवाय वहां कोई न रहा तब उदयने अतिशय नम्र होकर वशीकरण मन्त्रकी याचना की।

योगी—ओह! इस जरासे कार्यके लिये तूने इतना ढोंग फैलाया, उन लोगोंको वृथा कष्ट दिया! सबके साम्हने इशारा करनेमें क्या हर्ज था। वशीकरण कोई बुरा कर्म नहीं है, जो इतना छुपाया जाय। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो प्रत्येक पुरुषके पास रहने योग्य विद्या है। अच्छा तो उसके पहले कि तुम्हें वशीकरण सिखलाया जावे हमको इस बातका विश्वास होना चाहिये कि, तुम किसी उच्च कुलके पुरुष हो। क्योंकि यह विद्या अपात्र वा अयोग्यको नहीं दी जाती।

बलबन्तसिंह—महाराज ! ये यहांके राजकुमार हैं बडे ही योग्य हैं, इनकी पात्रताके विषय में आप कुछ भी शंका न करें। यहांका प्रत्येक पुरुष इसकी साक्षी दे सकता है।

योगी—अच्छा ! (झोरेमेंसे एक पोटरी निकालकर) यह थोडीसी धूप ले जाओ। इसे रविवारकी रात्रिको १२ बजेके पश्चात् किसी निर्जनस्थानके मंदिरमें जलाओं, और पद्मासनसे बैठकर (एक कागजपर लिखकर)

इस मंत्रको १००८ वार पढो। अन्तमें धूपके साथ ही इस कागजको जलादो। बस मंत्र सिद्ध हो जावेगा। जिसकी ओर एक दृष्टिसे तुम देख लोंगे वह तुम्हारा चेला हो जावेगा पर बच्चा किसी बुरे कर्ममें इसका उपयोग नहीं करना।

उदयसिंह-(हाथ जोडके) महाराज ! आपकी आज्ञाके बिरुद्ध कुछ नहीं होगा। परंतु यह तो बतलाईये कि, मंत्र सिद्ध करते समय इन्हें [बलवन्तको] पास रख सकूंगा या नहीं ! और आपने शायद देखा होगा वह नदीके पासका फूटा मन्दिर इस कार्यके योग्य है या नहीं ?

योगी-मंत्रका जप करते समय तो नहीं, परन्तु यदि तेरी इच्छा है तो धूप जलाते समय तक इसे पास रख सकता है। उस मंदिरको हमने देखा है, बहुत अच्छा है। हम स्वयं वहां मंत्र सिद्ध करनेको जाया करते हैं। अन्य स्थानोंकी अपेक्षा वहां सिद्धि भी शीघ्र होती है। अच्छा जाओ हम लोगोंके ध्यानका समय होगया है।

यह सुनकर दोनों मित्र प्रसन्नतासे साष्टांग नमस्कार करके वहांसे चले गये। उदयसिंहको उस रात खूब नींद आई।

दूसरे ही दिन रविवार था। आधीरात होते ही दोनों मित्र खुशी खुशी फूटे मंदिरमें जा पहुँचे अग्नि साथ ही लिये गये थे; नदीमें हाथ मुंह धोकर शुद्ध वस्त्र परिधान करके उदयसिंहने धूप जलाना प्रारंभ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया जिससे थोडी ही देरमें मंदिरका गर्भगृह धुएसे परिपूर्ण हो गया वह धुआं खूब खुशबूदार था, इसलिये पहले तो अरुचि नहीं हुई परंतु पीछे उसके असरसे दोनोंके मस्तक घूमने लगे। उदयसिंहने कहा—न जाने क्यों मुझे स्मृति भ्रमसा होता जाता है। बलवंतने कहा, और मेरी भी यही दशा है।

इसके पश्चात् उदय कुछ कहा ही चाहता था कि, बेहोश होकर गिरपडा और तबतक बलवंतने भी पैर फैला दिये। उन दोनोंके गिरते ही मानों ताकहीमें बैठे थे, इस तरहसे दो मनुष्योंने आकर उन्हें बांध लिया और एक एककी गठरी पीठपर लाद ली। बाहर दो साधु भगवां वस्त्र पहने खडे थे। उनसे गठरीवालोंने आकर कहा—कहिये अब हम लोगोंके लिये क्या आज्ञा है?

एक साधु—जितनीं जल्दी जा सको, तुम दोनों सीधे विजयपुर चले जाओ और वहां इन्हें खूब बंदोबस्तके साथ कैद करा दो।

एक मनुष्य—और आप लोगोंके विषयमें क्या कह दूं?

एक साधु—यही कि, दूसरा कार्य सिद्ध करके शीघ्र ही आते हैं। बहुत करके कल ही अपनी माया समेट कर हम लोग यहां से चल देंगे।

इतनी बातचीतके पश्चात वे दोनों पुरुष गठरी लादे हुए विजयपुरकी ओर रवाना हो गये और दोनों साधू वहांसे चलकर सीधे उदयसिंहके बंगलेमें पहुँचे। परन्तु वहां जाकर जो कुछ सुना, उससे वे चकित स्तंभित हो गये। महलके दास दासी पहरेदार घबडाये हुए फिर रहे हैं, और कह रहे हैं—"हाय! सुशीला न जाने कहां लोप हो गई?" सब लोगोंकी आंखोंमे धूल डालकर न जाने कहां अन्तर्धान हो गई।

\+ \+ \+

पाठकोंकी उत्कण्ठा मिटानेके लिये यहां यह कह देना अनुचित न होगा कि ये दोनों साधू वही थे, जो कुछ दिन पहले समुद्रके किनारे मल्लाहोंके महमान बने थे और जिन्होंने सूर्यपुरमें अपनी योगमाया फैलाकर लोगोंको चकित स्तंभित कर दिया था।

इनमेंसे एक गुरुजीके वेषमें हैं, विजयपुरके मन्त्रीका पुत्र बलदेव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिंह है और दूसरा जो चेला बना हुआ है, सुशीलाकी प्यारी सखी रेवती है ये दोनों ही सुशीलाका पता लगानेके लिये घरसे निकले थे। रास्ते में भेट हो जानेसे दोनोंने साथ रहकर पारस्परिक सहायतासे अपने अभीष्टको सिद्ध करनेका निश्चय कर लिया था। मल्लाहोंके आश्रममें उदयसिंहकी चिट्ठी जो बलवन्तसिंहके लिये उसका एक सेवक लिये जा रहा था, चालाकीसे वांचकर उन्होंने यह जान लिया था कि, सुशीला अमुक स्थानमें रक्खी गई है उदयसिंह उसे किसी और प्रकार से वश करनेके प्रयत्नमें है इसी लिये उन्होंने सूर्यपुरमें अपनी योगमाया फैलाई थी। सो उसके प्रभावसे उन्होंने उदय और बलवन्तको कैद कर लिया, परन्तु सुशीला हाथ न आई।

योगलीलामें जो नाना प्रकारके चमत्कार दिखलाये थे वे सब जाली थे। बिजयपुर और विलासपुरके जो जासूस सुशीलाका पता लगानेको आये थे, वे ही नाना प्रकारके वेष धारण करके अन्धे लंगडे बहरे बनकर आते थे, और फिर भस्ममात्रसे अपनेको अच्छे हुए बतलाते थे। अनेक लोग ऐसे भी चारों ओर फैल गये थे, जो लोगोंसे मिलकर योगराजकी झूठी प्रशंसा करते थे। इसी विलक्षण चालाकीसे बलदेवसिंह और रेवतीने सूर्यपुरको अन्धा बना दिया था। परन्तु अफसोस है कि, जिस कार्यके लिये उन्होंने इतने सब आडम्बर किये थे, वह सिद्ध न हुआ। सुशीला फिर लापता हो गई।

दसवां पर्व।

जिस दिनसे सुशीला, जयदेव तथा भूपसिंहकी किसी विपत्तिमें फंस जानेकी वार्ता सुनी है, उस दिनसे महाराज विक्रमसिंह निरन्तर उदास और सचिंत्य रहा करते हैं। किसी भी राज्यकार्यमें उनका जी नहीं लगता। सदा एकान्तवासमें बैठे हुए वे अपने भाग्यकी गतिपर विचार किया करते हैं उनकी पुत्रस्थानीया प्राणप्यारी सरस्वती सुशीला क्या खोई है, ऐसा जान पडता है, उनकी सरस्वती [बुद्धि] भी उसके साथ खो गई है। वे बडे दूरदर्शी और विद्वान समझे जाते थे, परन्तु इस समय मोहके बशसे उनमें न धीरता रही है और न दृढता यद्यपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुशीला आदिकी खोजके लिये उनके बुद्धिमान मंत्री अनेक गुप्तचर भेज चुके है, और प्रतिदिन आश्वासन दिया करते हैं परन्तु इससे उन्हें संतोष नहीं होता है।

एक दिन उन्होंने यह विचार कर कि, "बैठे रहनेकी अपेक्षा कुछ करना अच्छा है" अपने सूरसेन मंत्री और दो चार वयोवृद्ध तथा विशेषज्ञराज्यकर्मचारियोंको एकान्तमें बुलाकर एक बैठक की। उसमें प्रस्ताव किया गया कि, रेवती तथा रणवीरसिंहकी चिट्ठियोंसे अब इसमें तो सन्देह रहा ही नहीं कि सुशीला आदिपर जो विपत्ति आई है उसका कर्त्ता उदयसिंह है।

ऐसी अवस्थामें सूर्यपुरपर चढाई क्यों न की जावे? और उसे कैद करके सुशीला आदिका पता उसीसे क्यों न लगाया जाय? सूर्यपुरका राज्य हमसे कुछ जबर्दस्त नहीं है और न वहां कुछ ऐसी तैयारी है, जिसमें हमें डरनेका कोई करण हो। इसके सिवाय यदि हम चढाई करेंगे तो विजयपुर राज्यसे भी हमें सहायता मिले विना न रहेगी और जहांतक मेरा ख्याल है, अपनी सेना भी किसी प्रकार शिथिल नहीं है

शूरसेन मंत्री—महाराज! आपका प्रस्ताव बहुत उचित है। परन्तु वह तब काममें लाया जाता, जब सूर्यपूर राज्यने अपने साथ खुले मैदान शत्रुता की होती। यह कार्य केवल एक गीदडका है, जो एकवार अपने यहां कैद रह चुका है। उसमें महाराज निहालसिंहकी सर्वथा सम्मति नहीं है। वे स्वयं बडे न्यायी और सज्जन राजा हैं। मुझे विश्वास है कि, यदि वे अपने पुत्रका यह दुराचार सुन पाते, तो उसे अवश्य ही दंड देते। ऐसी अवस्थामें सूर्यपुरपर चढाई करना न्यायसंगत नहीं है।

विक्रमसिंह-यदि ऐसा है और निहालसिंहपर तुम्हारा इतना बडा विश्वास है, तो फिर उन्हें एक पत्रके द्वारा इस विषयकी सूचना क्यों नहीं दी जाती? जिसमें वे उदयसिंहको दंडित करके यदि उसकी कैद में सुशीला हो, तो छुडाकर हमारे यहां भिजवा दें।

शूरसेन—परन्तु ऐसा करनेमें एक बडा भारी डर यह है कि, यदि उदयसिंहको यह बात मालूम हो जावेगी और उसके अधिकारमें सर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रखती होगी "मरता क्या न करता" की नीतिके अनुसार न जाने वह क्या अनर्थ करनेपर उतारू हो जावे ? और यह संभव नहीं है कि, उसे इस बातकी खबर न हो। क्योंकि राज्यके प्रधान २ कर्मचारी उनसे मिले हुये हैं। इसलिये मेरी समझमें जबतक खूब विचार न कर लिया जावे, पत्रादि लिखना भी उचित नहीं है।

विक्रमसिंह—प्रत्येक कार्य विचार करके करना चाहिये, यह ठीक है। क्योंकि अविचार पूर्वक कार्य करनेका ही यह फल है, जो आज इस दुःखके देखनेका समय आया है। हाय ! वह कितनी बडी राजनैतिक भूल थी, जिससे एक विदेशी पुरुषको जो एकवार अक्षम्य अपराध कर चुका था, मैंने अपना विश्वासपात्र सेवक बना लिया था। परन्तु "यह भी नहीं करना" "वह भी नहीं करना' तब क्या हमेशा इसी प्रकार निश्चेष्ट बैठे रहना चाहिये ? तुम्हारे जासूसोंने भी कोई आशाप्रद कार्य करके नहीं दिखलाया, जिससे कुछ धैर्य हो। भला ! तुम ही कुछ कहो, उन्होंने कुछ किया है ?

शूरसेन—नहीं महाराज ! ऐसा न समझिये। जासूस लोग बराबर काम कर रहे हैं। सुशीलाका पता लग चुका है। रेवती बहुत जल्दी उसको छुडाके लावेगी। वहां उसकी माया अच्छी तरहसे फैल रही है मुझे वहांकी रिपोर्ट दूसरे तीसरे दिन बराबर मिला करती है।

विक्रमसिंह—देखो शूरसेन ! तुम्हारी बातोंपर मुझे बडा भारी भरोसा है, और अभी जो कुछ तुमने कहा है, वह सन्तोषयोग्य है। परन्तु वर्तमानमें मेरा चित्त ऐसा उद्विग्न और आकुलित रहता है कि, प्रयत्न करनेपर भी स्थिर नहीं हो सकता। यदि तुम्हारी सम्मति हो, तो इस समय विजयपुर जाकर महाराज रणवीरसिंह तथा अपने सम्बन्धीसे मिल आऊं। उनके परामर्शसे चित्त कुछ स्थिर होगा, और जी भी बहला रहेगा। सिवाय इसके उनकी सम्मतिसे कुछ प्रयत्न भी हो हो सकेगा।

शूरसेन—महाराज ! विचार उत्तम है। मेरी भी राय है कि, आप थोडे दिनोंके लिये विजयपुर जा आवें। ईश्वरने चाहा, तो आपके लौटनेके पहले ही सुशीला विलासपुरमें आ जावेगी। साथ ही उदयसिंह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और बलवन्त भी अपने चेहरे पर कालिख लगाये हुए आ जावेंगे।

अन्यान्य कर्मचारियोंने भी महाराजके विचारका अनुमोदन किया, और बैठक समाप्त की गई। सब लोग अपने २ घर गये और महाराज शयनागारकी ओर चले गये। बहुत दिनके पीछे उस दिन उन्होंने महाराणी मदनवेगाके साथ प्रेमसंभाषण किया।

दूसरे दिन थोडेसे सवारोंको साथ लेकर विक्रमसिंह मामूली ढंगसे विजयपुर पहुंचे। उनके एकाएक आनेसे महाराज रणवीरसिंहको आश्चर्य और हर्ष हुआ। उन्होंने बडे प्रेमसे उनका स्वागत सत्कार किया और दूसरे दिन सवेरे ही उनके आगमनकी खुसीमें एक बडा भारी दरबार किया।

उस समय अपने सम्बन्धी जौहरी श्रीचन्द, तथा सम्पूर्ण राज्यकर्मचारियों और नगरके प्रतिष्ठित पुरुषोंसे मिलकर विक्रमसिंहने प्रसन्नता प्रगट की और यथोचित वार्तालाप किया। इसके पश्चात् वे सुशीला, जयदेव, तथा भूपसिंहकी चर्चाका उपक्रम करना ही चाहते थे कि, इतनेमें दो पुरुष दो गठरी पीठपर लादे हुए दरबारमें उपस्थित हुए।

गठरियोंमें क्या है, और ये लोग क्या कहते हैं, यह जाननेके लिये लोग अतिशय उत्कंठित हुए। महाराज रणवीरसिंह आगत पुरुषोंको पहिचान कर प्रसन्न हुए। और बोले—क्यों! कुशल तो है? तब उनमेंसे एकने कहा—हां, महाराज! आपकी कृपासे उदयसिंह और बलवंत—दोनों ही आज अपनी कैदमें आ गये हैं। और ईश्वरने चाहा, आज संध्यातक श्रीमती सुशीलादेवी भी बंधनमुक्त होकर यहां आ जावेंगी। यह सुनते ही विशेषकर पिछले वाक्योंको सुनकर महाराज विक्रमसिंह आनन्दसे उछल पडे। मेघपटलोंके फट जानेसे चन्द्रमाका बिम्ब जिस तरह खिल उठता है, उसी प्रकार उनका शोकग्रस्त मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। इतनेमें दूसरे पुरुषने दोनों गठरी खोलदी, दोनों कैदियोंने अपनेको एक अचिन्त्य स्थानमें हथकडी बेडियोंसे विवश देखा। विक्रमसिंहने कहा—क्यों उदयसिंह! अब भी तुम अपनी बुराइयोंसे संतृप्त हुए कि नहीं? परन्तु उसने उत्तर नहीं दिया इसी प्रकार बलवन्तसे भी कई प्रश्न किये, परन्तु कुछ उत्तर नहीं पाया। तब महाराज रणवीरसि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हकी आज्ञासे वे दोनों कारागृहमें भेज दिये गये। वहां उनके कारण पहरे आदिका जबर्दस्त प्रबन्ध किया गया।

इसके पश्चात् दरबार बरखास्त किया और एक एकान्त स्थानमें दोनों नरेशों, मंत्रियों और श्रेष्ठी श्रीचन्द्रने मिलकर सूर्यपुर राज्यके और कैदियोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ विचार किये। इसपर भी विचार किया गया कि भूपसिंह तथा जयदेवके अन्वेषण करनेके लिये और क्या २ उपाय किये जावें।

सुशीलाके आनेके समाचारसे श्रेष्ठि श्रीचंद्र और उनके कुटुंबी-जन प्रसन्न हुए परन्तु जयदेवके वियोगके कारणसे उनकी वह प्रसन्नता फीकी रही।

ग्यारहवां पर्व।

रतनचन्द मुनिराजके साथ २ जा रहे हैं। आगे मुनिराज हैं, पीछे रतनचन्द हैं। मुनिराज ईर्यापथ शोधन करते हुए अर्थात् यह देखते हुए कि, मार्गमें कोई जन्तु तो नहीं है जिसका प्रमादसे घात हो जावे, गमन कर रहे हैं।

रतनचन्द विचारता है, अहो! मुनिराजोंकी दया कैसी अपूर्व और लोकोत्तर है। भला जीवोंका परमबन्धु इनके समान और कौन होगा? जिनकी दृष्टिमें शत्रु, मित्र, तृण कंचन, राजा रंक, मूर्ख विद्वान् सब एक समान हैं। पंचमहाव्रतरूप इनके एक अपूर्व सम्पत्ति है। अन्य कोई भी परिग्रह इनके पास नहीं है। शरीरसे ऐसी निष्पृहता कहीं भी नहीं देखी जाती। नग्नपरीषहको सहन करते हुये कामके बाणोंको विफल करना इन्हींका काम है।

यद्यपि नाना प्रकारकी तपस्याओंसे इनका शरीर क्षीण हो गया है, परन्तु प्रभा चतुर्गुणी है। सामान्य पुरुषोंमें यह दिव्यप्रभा दिखाई नहीं देती। तपके प्रभावसे इन्हे अवधिज्ञान प्राप्त हो गया है, इसीसे इन्होंने मुझे रतनचन्द कहकर सम्बोधित किया था। वाह! यह भी कैसी दिव्य शक्ति है। इससे दूर २ के विषय स्मरण मात्रसे प्रत्यक्षवत् हो जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसीसे अनुमान होता है कि, एक ज्ञान ऐसा भी है, जिसमें तीन लोकके त्रिकालगत पदार्थ हस्तामलक हो जाते हैं। आत्मा पर एक प्रकारका आवरण होता है, जिससे कोई आत्मा अधिक ढका रहता है, कोई उससे कम, और कोई उससे भी कम। अर्थात् किसी पुरुषको कम ज्ञान होता है, किसीको उससे अधिक। तब बुद्धि स्वयं स्वीकार करती है कि कोई आत्मा ऐसा भी है, जो इस आवरणसे सर्वथा रहित है, उसको सर्वज्ञ कहते हैं और उसके ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं। इसी अवस्था और इसी ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये मुनियोंका यह प्रयत्न है। इसीको जैनमार्ग कहते हैं। यही आत्माका स्वभाव है। अब मुनिराजोंकी कृपासे मैं भी इस स्वभावके प्राप्त करनेका उद्योग करूंगा। अहा! वह समय कब आवेगा, जब मैं मुनिव्रत अंगीकार करके अपने आत्मकल्याणमें लगूंगा।

मेरे कब ह्वै है वा दिनकी सुघरी, मेरे कब ह्वै है०-टेक॥
तन विनवसन असनविन वनमें, निवसों नासादृष्टि धरी॥१॥
पुन्य पाप परसों कब विरचों, परचों निजनिधि चिर विसरी।
तज उपाधि सज सहज समाधी, सहों घाम हिम मेघ-झरी।२।
कब थिर जोग धरों ऐसो मुहि, उपल जान मृग खाज हरी।
ध्यान कमान तान अनुभव सर, छेदों किह दिन मोह अरी ३.
कब तृन कंचन एक गनों अरु, मणि जडतालय शैलदरी।
'दौलत' सतगुरु चरनसेव जो, पुरवो आश यहै हमरी॥ ४॥

इस प्रकारके नाना विचारोंमें मग्न हुये रतनचन्दने देखा कि, मैं एक उद्यानमें पहुच गया हूं। इसके पहले अन्यमनस्क रहनेके कारण उसे यह मालूम नहीं था कि, मैं कहां चल रहा हूं। परन्तु मुनिराज जिनके साथ वह आया था, जब खडे हो रहे; तब वह भी खडा हो गया। उस समय उसने देखा कि, एक ऊंची शिलापर एक महामुनि बिराजमान हो रहे हैं, और आगत मुनि मस्तक नम्र किये उन्हें नमस्कार कर रहे हैं। शिलाके चारों ओर भी बहुतसे मुनि बैठे हुए हैं, जिनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संख्या ५० से कम नहीं है।

ऐसा जान पडता है, शिलास्थित महामुनि किसी व्याख्यानका प्रारंभ करना चाहते हैं और यह मुनिपरिकर उसके सुननेके लिये उत्कण्ठित हो रहा है। महामुनि संघाधीश आचार्य और मुनिगण शिष्यसम्प्रदायमें हैं। महामुनिके शरीरसे एक विलक्षण प्रभा प्रस्फुटित हो रही है, जिसके दर्शन मात्रसे उनका मुख्यत्व, तथा महत्त्व प्रगट होता है। उनके मुखमण्डलकी सोमता, शीलता, प्रसन्नता और सरलता देखते ही बनती है।

मौन धारण किये हुये भी उनका शांत शरीर संसारको वैराग्यतत्त्वका निरूपण करता हुआ सा दीख पडता है। उनके चारों ओर जो मुनिपरिकर हैं, वह भी एक शांतिताकी श्रेणी है। सब ही दिगम्बरमुद्राके धारण करनेवाले मोक्षमार्गके पथिक हैं। सारांश उस पुन्य परिषदमें सर्वतः शांति वैराग्यकी अनुपम धारा बह रही है।

जिस स्थानमें यह परिषद विराजमान थी, वह स्थान बडा ही सुहावना जान पडता था। नाना प्रकारके सुन्दर वृक्षोंकी पंक्ति चहुंओर धीर गंभीर भावसे खडी थी। मानों मुनियोंके संसर्गसे उसने ये गुण प्राप्त किये हों। बीचमें थोडे थोडे अन्तरपर अनेक वसतिकायें बनी हुई थीं, जो किसी धर्मात्माने मुनियोंके विश्रामके लिये बनवाई थीं। सैंकडो बडी शिलायें यत्र तत्र पडी थीं, जिनपर बैठकर मुनिगण ध्यानस्थ होते थे।

वसतिकाओंके आसपास छोटी २ हरी २ दूब जो कमंडलुओंके जलसे उग आई थी, मृगगण निडर होकर उसे चरते थे। मानों मुनियोंके उस रक्षित राज्यमें उन्होंने अपना स्वाभाविक डरपोंकपन भुला दिया था। जो हरिण जरासी आहट पाते ही सिरपर पैर रखके चौकडी भरने लगते हैं, वेही उस निर्भय स्वर्गभूमिसे टाले नहीं टलते थे। पक्षीगण भी आनन्दकलरव करते हुए स्वच्छन्दतासे यहां वहां उडते फिरते थे।

रतनचन्दने उस दिव्यमंडलीको देखकर तत्काल ही साष्टांग नमस्कार किया और कहा—"नाथ! इस शरणागतकी रक्षा करो-दुर्जय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मोंके पंजेमें फंसे हुए इस दीनातिदीनको बचाओ ! अनन्तकाल बीत गया; अब ये कर्मोंके अत्याचार सहे नहीं जाते ।"

यह सुनकर महामुनिने आसन्नभव्य जानकर रतनचन्दको दयादृष्टि से निरीक्षण करते हुए धर्मवृद्धि दी और कहा—भव्य ! शांत हो चित्त स्थिर कर, तेरी इच्छा बहुत जल्दी पूर्ण होगी । तुझे अपने घरका विषम चरित्र देखकर जो वैराग्य प्राप्त हुआ है, वह अडोल रहेगा और उसके कारण संसार कारागृहसे तुझे थोडेही समयमें छुट्टी मिल जावेगी योगीश्वरका आशीर्वाद सुनकर उत्तप्त उद्विग्नचित्त रतनचन्दको कुछ संतोष हुआ । नवागतमुग्धवधूके अननुभूत पति—समागम—सुखकी कल्पनाओंके समान जैनेश्वरीदीक्षाप्राप्तिके सुखकी विचारतरंगोंमें यह फिर गोते खाने लगा ।

इधर योगीश्वरने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया । अत्याचार सम्बंधी अनेक गूढ विषयोंको बडी सुगम भाषामें नानाप्रकारके दृष्टांत दार्ष्टांतोंसे उन्होंने सबके हस्तामलकवत् कर दिया । उनकी अपूर्व उपदेश शक्तिके प्रभावसे सम्पूर्ण श्रोताओंके हृदयकपाट खुल गये । सबही धन्य धन्य कहने लगे । तदनन्तर रतनचंदने हाथ जोडकर निवेदन किया, भगवन् ! अब इस जिज्ञासुकी ओर भी दृष्टि कीजिये और कृपाकर बतलाइये कि आत्माका हित क्या है ?

योगीश्वर—भव्यात्मन् ! आत्माका यथार्थ हित आत्माके निजस्व-भावकी प्राप्ति है । जैसे अपनी विपुल सम्पत्तिके खो जानेसे लोग दुःखी होते हैं और जब तक वह फिर न मिल जावे तब तक सुखी नहीं हो सकते । उसी प्रकार निजस्वभाव रूप सम्पत्तिके लुप्त हो जानेसे ये सम्पूर्ण प्राणी दुःखी हो रहे हैं, और उस सम्पत्तिको पुनः प्राप्त किये विना कदापि सुखी नहीं हो सकते ।

यद्यपि संसारके सब ही प्राणियोंकी यह इच्छा रहती है कि हमें सुखकी प्राप्ति हो, और दुःख हमारे पास कभी न फटकने पावें, परंतु हजार प्रयत्न करने पर हजार सिर पटकने पर भी वे सुखी नहीं हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकते। जिसको देखिये वहीं दुखी दिखलाई देता है। जिससे पूछिये वहीं दुखी दिखलाई देता है। जिससे पूछिये वही आपको दुखियोंका शिरोमणि बतलाता है और जहां सुनिये वहां दुःख ही दुःख सुनाई पडता है।

जानते हो,इसका कारण क्या है ? यही कि वे सुखके यथार्थ स्वरूपको नही जानते हैं, और दुःखमें ही सुखकी कल्पना किया करते हैं। परंतु जो अज्ञानी अंगारको सुन्दर शीतल मानकर हाथमें ले लेता है, क्या वह उससे जलकर दुःखी नहीं होता ? अवश्य होता है। इसी प्रकार दुःख में सुखकी कल्पना करनेसे उन्हें दुःख सुखरूप नहीं हो जाता, दुःख ही रहता है। सो ये प्राणी इस भ्रामक सुखकी प्राप्तिका प्रयत्न तो करते रहते हैं, परंतु यथार्थ सुखरूप निजस्वभाव सम्पत्तिको सर्वथा भूल गये हैं, जो कि आत्माका सच्चा हित है।

रतनचन्द—नाथ ! तो उस आत्महित आत्मसुख अथवा आत्मस्वभावको हम लोग क्यों भूल रहे हैं। एक दो चार नही, किन्तु जब सब ही प्राणी उसे पानेका प्रयत्न नहीं करते, तब इसका कोई असाधारण कारण होना चाहिये।

योगी०—हां ! उस आत्मस्वभावपर एक प्रकारका दुर्निवार परदा पडा हुआ है, जिससे हम उसे देख नहीं सकते, विचार नही सकते और बिना गुरुके उपदेशके समझ नही सकते। यही कारण है कि सामान्य जीवोंकी प्रवृत्ति उसकी ओर नहीं होती। प्रत्येक पदार्थमें स्वभाव और विभाव दो प्रकारकी शक्तियां रहती हैं। स्वभाव स्वकृत शक्ति है विभाव परकृत विकारशक्ति है। स्वभाव शक्ति कभी नष्ट नहीं होती, परन्तु विभावशक्ति विकार कारणोंके पृथक् होते ही नष्ट हो जाती है और जब तक विभावशक्ति व्यक्त रहती है, तब तक स्वभावशक्ति अव्यक्त रहती है। और उस अव्यक्त अवस्थामें ही अल्पबुद्धि समझ नही सकते कि उसका अस्तित्व है या नहीं।

जैसे जलका शीतलपना उसका स्वभाव है और उष्णपना विभाव है। शीतलपना स्वयं होता है, परन्तु उष्णपना अग्निके संयोगसे होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। जब तक उष्णपना रहता है, तबतक शीतलपना अव्यक्त रहता है। परन्तु शीतलपनाके व्यक्त होते ही उष्णपना नष्ट हो जाता है।

इस उष्ण जलमें हाथ डालनेसे जैसे वह आदमी जिसने कभी शीतल जल नहीं देखा सुना है, यह अनुमान नहीं कर सकता कि,जलमें शीतलपना भी होता है उसी प्रकार स्वभावशक्तिको भूले हुए जीव उसके प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं कर सकते हैं। क्योंकि विभावके कारण वह शक्ति अव्यक्त रहती है। यह विभाव ही एक प्रकारका परदा है, जिसका अनादि कालसे आत्माके साथ सम्बन्ध है। इसीके कारण आत्मा, पराधीन, दुःखान्तरित और पापबीजरूप क्षणभंगुर सांसरिक सुखोंको सुख मान करके संसारमें भटकता फिरता है। और स्वतन्त्र, सदास्थिर एकस्वभावी सुखसे अभीतक बंचित है। जबतक वह परदा आत्माके आगेसे सर्वथा न हट जावेगा तबतक उसका निजस्वभाव प्रगट नहीं हो सकता।

रतन०—योगिनाथ! मुझ अल्पज्ञकी समझमें सामान्य कथनसे यह बात नहीं आई कि, सचेतन आत्माके साथ उस जड रूप परदेका सम्बन्ध कैसे हो सकता है? इसलिये कृपा करके उस परदेका और उसके सम्बन्धकास्वरूप विस्तृतरूपसे समझानेकी कृपा कीजिये।

योगी०—रतनचन्द! जल्दी समझमें आनेके लिये सामान्य विवक्षासे यह विषय कह दिया गया है। परन्तु परदा कहनेका अभिप्राय यहां केवल इतना है कि आत्माके स्वभाव पर एक प्रकारका कोई आवरण पडा हुआ है। जिससे उसके सम्पूर्ण गुण ढके हैं। इसीको जैनशासनमें कर्मावरण कहते हैं। अब यह जानना चाहिये कि, कर्मावरण क्या चीज है?

अनन्त आकाशके ठीक बीचमें जैसे एक पूरे मृदंगके ऊपर आधा मृदंग रक्खा हो, इस आकारका लोक संस्थित है। यह स्वयंसिद्ध है इसका न कोई बनानेवाला है और न अन्त करने वाला। अनादिकाल से ऐसा है, और ऐसाही रहेगा। इसकी ऊंचाई चौदह राजू और विस्तार ७-१-५-१ राजू अर्थात् मूलमें ७ राजू, मध्यमें १ राजू, ब्रह्मस्वर्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के अन्तमें ५ राजू और अन्तमें एक राजू है। घनवात घनोदधिवात और तनुवात इन तीन वायु मंडलोंसे वेष्टित हुआ उन्हींकी शक्ति विशेषसे आकाशमें ठहर रहा है।

इस लोकमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पांच द्रव्य हैं। इनमें पूर्वकथित अनन्त आकाशद्रव्यको मिलानेसे छह द्रव्य कहलाते हैं। इन छह द्रव्योंमें से एक आकाश द्रव्य सर्वव्यापी तथा सम्पूर्ण द्रव्योंका आधारस्वरूप है। अर्थात् पहले कहे जीवादि पांचों द्रव्योंके ठहरनेका स्थान है। और शेष पांचों द्रव्य अल्प क्षेत्रव्यापी तथा आधेय स्वरूप हैं। अर्थात् जितने आकाशमें शेष पांच द्रव्य विद्यमान हैं, उसको तथा उन पांच द्रव्योंको मिलाकर लोक कहते हैं।

रतनचंद०—भगवन्! लोकका स्वरूप मैं समझ गया हूं, परन्तु द्रव्यका स्वरूप अभी तक नहीं जाना है, सो कृपा करके समझाइये।

योगी०—अनन्त गुणोंके समुदायको द्रव्य कहते हैं। अर्थात् प्रत्येक द्रव्यमें अनन्त गुण होते हैं। इनमें कुछ तो सामान्य गुण हैं और कुछ विशेष गुण हैं। जो गुण दूसरे द्रव्योंमें पाये जावें अर्थात एक द्रव्यमें जो गुण हों, वे दूसरे द्रव्योंमें भी पाये जावें, उन गुणोंको सामान्य गुण कहते हैं और जो गुण अन्य द्रव्योंमें न पाये जावें, केवल एक ही द्रव्यमें हों उन्हें विशेषगुण कहते हैं। जैसे जीवका प्रदेशत्व सामान्य गुण है। क्योंकि जीवके सिवाय पुद्गलादि द्रव्योंमें भी यह पाया जाता है। अर्थात पुद्गल, धर्म, अधर्मादि द्रव्य भी प्रदेशवान् होते हैं। और चेतना असाधारण विशेष गुण है। क्योंकि जीवके सिवाय अन्य कोई भी द्रव्य चेतनावान् नहीं है।

यद्यपि प्रत्येक द्रव्यमें विशेषगुण भी अनन्त होते हैं, परंतु उनमें एक विशेषगुण ऐसा होता है, जो लक्षणस्वरूप होता है। मिले हुए अनेक पदार्थोंमेंसे किसी एक पदार्थको भिन्न करनेके हेतुको लक्षण कहते हैं। जैसे कि चैतन्य कहनेसे अनेक द्रव्योंमेंसे वह जीवद्रव्य भिन्न करके समझ लिया जाता है, जो चेतनायुक्त है। जिस गुणमें पदार्थ प्रतिभासित होता है, उसको चेतना कहते हैं। अतएव जीवका निर्दोष असा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धारण लक्षण चेतना है। इसी प्रकार पुद्गलका लक्षण मूर्तत्व अर्थात स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-वन्त है।

धर्मद्रव्यका लक्षण जीव पुद्गलके गमन करनेमें सहकारित्व (सहायक) रूप है। अधर्म द्रव्यका लक्षण जीव पुद्गलकी स्थितिमें सहकारित्वरूप है। आकाशका लक्षण जीवादिक द्रव्योंको अवकाशदातृत्वरूप है और कालद्रव्यका लक्षण जीवादिक पदार्थोंके परिणमन करानेमें सहकारित्वरूप है। द्र० ोंका संक्षेपसे यही स्वरूप है।

इन छह द्रव्योंमें एक जो पुद्गलद्रव्य है, जिसे कि जड तथा अजीव भी कहते हैं और जिसका लक्षण ऊपर कह दिया गया है, उसके मुख्य दो भेद हैं-एक अणु और दूसरा स्कन्ध। पुद्गलके सबसे छोटे खंडको अणु तथा परमाणु कहते हैं और अनेक परमाणुओंके समूहको स्कन्ध कहते हैं।

इनके अनेक भेद हैं, जिसमेंसे एक स्कन्ध-विशेषको कार्माणवर्गणा कहते हैं, जो कि संसारमें प्रायः सर्वत्र भरी हुई हैं, और जिनकी संख्या अनंत है। जिस प्रकार आगमें तपाया हुआ लोहेका गोला जलमें डालनेसे वह अपने चारों तरफके जलको खींचता है, उसी प्रकार यह आत्मा रागद्वेषसे संतप्त होकर कार्माणवर्गणाओंको अपने चारों ओरसे आकर्षित करता है।

इस कार्माणवर्गणा और जीवके सम्बन्धको बंध कहते हैं। और जीवसे सम्बंध प्राप्त कार्माणवर्गणाको ही कर्म कहते हैं। इनके कारण आत्माके ज्ञानादिक गुणोंका घात होता है अर्थात ज्ञानादिक गुण ढंक जाते हैं। इसीसे इन्हे कर्मावरण अथवा कर्मरूपी परदा कहते हैं।

रतन०—मुनिनाथ! आत्मा रागद्वेषादिके कारण संतप्त होकर कर्मबन्ध करता है, यह ठीक है। परंतु रागद्वेषादि भी तो आत्माके स्वभाव नहीं हैं—विभाव हैं, जो कि परकृत होते हैं। अतएव यह बतलाइये कि, उनका उत्पन्न करनेवाला कौन है?

मुनि०—जीव और कर्मका संबन्ध अनादि कालसे बीज वृक्षके समान चला आता है। अर्थात् जैसे बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृक्षसे बीज उत्पन्न होता है, उसी प्रकारसे आत्मा और कर्मका निरन्तर से अनादिसन्तान रूप क्रम बंध है। कोई समय ऐसा नहीं था, जब विना वृक्षके बीज उत्पन्न हुआ हो। इसी प्रकार कर्मके निमित्तसे रागद्वेषादि भाव उत्पन्न होते हैं। रागद्वेषादिक भावोंके कारण कर्मबन्ध होता है। अर्थात रागद्वेष होनेमें पुरातन कर्मबन्ध हेतु है, और नवीन कर्मबन्ध होनेमें रागद्वेष हेतु हैं। कभी ऐसा नहीं हुआ जब कि, विना रागद्वेषोंके कर्मबन्ध हुआ हो, अथवा पूर्व कर्म बंधके विना रागद्वेष उत्पन्न हुए हों। सारांश यह है कि, यह संसारी आत्मा अनादिकालसे कर्मबंध सहित है। अर्थात् प्रारंभसे ही उसपर कर्मावरण पडा हुआ है। यह कर्मावरण आत्माके स्वभावमें अनेक प्रकारके विकार करता है, जिसके कारण वह नाना प्रकारके दुःख भोगता है, और भ्रामक कल्पनामें पड कर उस स्वभावसुखसे वंचित रहता है, जो अचिंत्य अनुपम और अनंत है।

इतना कहकर मुनिराजने सामायिकका समय समीप आया जानकर उस दिनका व्याख्यान समाप्त किया।

बारहवां पर्व।

सुवर्णपुरके अंतः पुरमें खलबली मच रही है। सखियां घबडाई हुई भाग रहीं हैं। कोई महाराणीको खबर देनेके लिये दौडी है कोई महाराजको बुला लानेके लिये जा रही है, और कोई शीतोपचारकी सामग्री जुटा रहीं है। अनेक सखियां मदनमालतीको चारों ओरसे घेरे हुए खडी हैं। उनमें कोई पंखा झल रही हैं कोई, शीतल जलके छींटे दे रही हैं, किसीका हाथ नब्ज (नाडी) पर है, कोई मुखकमल पर विखरे हुए पसीनेके कनूकोंको रूमालसे पोंछ रही है और कोई निश्चिल निस्तब्ध है। सबके चेहरोंपर एक प्रकारका आश्चर्य भाव झलक रहा है।

मदनमालती मूर्छित अचेत है। आज उसकी सुहागरात्रि थी, इसलिये उसका नखसे शिख पर्यन्त सारा शरीर रत्नजटित आभूषणों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अनुपम शृङ्गारोंसे सुसज्जित हो रहा है। ऐसा जान पडता है मानों तारागणोंका एक स्वरूपवान् सुडौल पिण्ड है। उसके खुले हुए मुखकमलकी शोभा देखते ही बनती है।

बडे २ खंजनमदभंजन नेत्र, धनुषाकार भ्रूयुगुल, लाली लिये हुए गोलकपोल, और कुंदरूके फल सरीखे सुन्दर अधर देखकर जी चाहता है कि, इसे देखतेही रहें। वामकपोलपर सुन्दर तिल ऐसा जान पडता है, मानों विधिचित्रकारकी कलममेंसे मुखचन्द्रका चित्र खींचते हुए स्याहीका एक बिंदु गिर पडा हो। वक्षस्थलपरसे अंचल अलग हो गया है, इसलिये उसके कमनीय कुचयुगलों पर पडी हुई मोतियोंकी माला कमलकलिकाओं पर पडे हुए जलके कनूकोंकी शंका उत्पन्न करती है।

थोडी देरमें महाराणी दौडी आईं। तबतक प्रयत्न करनेसे मदनमालतीकी मूर्छा दूर हो गई, सचेत होनेपर पूछा—बेटी! तुझे अचानक यह क्या हो गया था? परन्तु कुछ उत्तर नहीं मिला। लज्जाके मारे सिर नीचा करके वह चुप होरही। इतनेमें एक चन्द्रलेखा नामकी सखी वहींपर पडी हुई एक चिट्ठी जो मदनमालतीकी असावधानीसे गिर गई थी, उठाकर बांचने लगी, उसे पढकर वह एक आह खींचकर रह गई।

यह देख महाराणीने पूछा चन्द्रलेखा! तू अभी यह क्या पढ रही थी? और यह आह क्यों खींची? चन्द्रलेखा जीके दुःखको छुपा न सकी, इसलिये भूपसिंहकी चिट्ठी उनके हाथमें देकर वह बोली—माता यह पढिये, कुमार भूपसिंह कैसे कठोर हृदयके निकले? कैसे समयमें प्रवंचना करके वे चले गये! कुमारीकी मूर्छाका यही कारण था। अफसोस कि, विना कहे सुने ही चला जाना उन्होंने अच्छा समझा।

क्या हर्ज था, सबसे बिदाई लेकर हंसी खुशीसे जाते। उन्हें कौन रोक सकता था? महाराणीने भी चिट्ठी पढकर एक दीर्घ निश्वास ली आंखोंमें आंसू भर लाई, उन्हें अंचलसे पोंछते हुए उन्होंने कहा—चन्द्रलेखा! क्या लिखा जावे, भाग्यकी बात है। उसपर किसीका वश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं है। कुछ बिचारा था, कुछ होगया। कठिनाईसे सुखके दिन आये थे, सो विधिकी गतिसे दुःखमें परिणत होगये। परन्तु अब खेद करनेसे क्या? मदनमालती स्वयं बुद्धिमति है। वह इन सब बातोंका विचार कर सकती है। और यह भी तो सोचो कि भूपसिंहने अपनी चिट्ठीमें जो कुछ लिखा है, उससे कृतज्ञता, उदारता, इन्द्रियनिग्रहता आदि गुणोंकी कितनी अधिकता प्रतीत होती है? अपने मित्रके लिये जो अपने सम्पूर्ण सुखोंपर छार डाल सकता है, उसे एक महापुरुष ही समझना चाहिये। और इससे मदनमालतीको इस बातका अभिमान होना चाहिये कि मुझे कैसा गुणवान पति मिला है। बल्कि एक प्रकारका शोकके स्थानमें उसे हर्ष होना चाहिये, जो मोहकी सबसे कठिन परिक्षामें उसका पति उत्तीर्ण होगया और परोपकारके अद्वितीय सत्कारका भाजन हुआ। जो दूसरेके दुखसे दुखी होता है, उसी पुरुषका जीवन सफल है, नहीं तो अपने सुखकी खोजमें अपना पापमय जीवन कौन समाप्त नहीं करता! और भूपसिंहने आश्वासन भी तो दिया है। वे बहुत जल्दी आवेंगे।

तुम सबको चाहिये कि निरंतर उनकी मंगलकामना करती रहो, और भगवान्से इस विषयमें प्रार्थी रहो। अच्छा, तो अब मैं जाती हूं तुम सब लडकीको समझा बुझाकर ऊपर ले जाओ और उसका मन बहलाओ, मैं महाराजसे कहकर भूपसिंहकी खोजके लिये यदि उचित समझा गया, तो एक दो चतुर पुरुष भिजवाऊंगी।

माहाराणी चली गई। सखीगण मदनमालतीको उनकी आज्ञानुसार महलकी छतपर ले गईं। आकाश स्वच्छ था। तारिकाप्रभा और चांदनी छिटक रही थीं। खसखसकी टट्टियोंसे और चारों तरफ रक्खे हुए फूलोंके सुन्दर गमलोंमेंसे शीतल सुगंधित हवाके झोंके आ रहे थे। और भी नाना प्रकारकी शीतल सामग्रियोंसे उस ग्रीष्मको शिशिरऋतु बना रक्खी थी।

ऐसा नहीं जान पडता था कि, यह वही ग्रीष्मकाल है, जो बेचारे दीनहीन पुरुषोंको उनकी जर्जर कुटीरोंमें झुलसा रहा है। कैसा अन्याय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसके राज्यमें रहकर पुरुष स्वर्गसुखोंका अनुभव करता है, उसीके राज्यमें दूसरा नारकीय वेदनायें सहता हुआ दिन काटता है। जबर्दस्तके दो हिस्से होते हैं। जुलमीसेभी जुलमी राजाओंको जबर्दस्त लोग शीतल बना लेते हैं, इसका अनुभव वहां अच्छी तरहसे होता था। मदनमालती वहींपर पडे हुए एक पलंगपर लेट गई, जिसपर सुन्दर पुष्पोंकी शय्या बिछी हुई थी। सखीजन चारों ओर घेरकर बैठ गई। कोई पंखा झलने लगीं, कोई गुलाबपाश लाकर उसके उदास मुखपर गुलाबजल छिडकने लगीं, और कोई २ नखरेबाज मीठी चुटीली कहानियां कहकर आनन्द और हास्यकी वर्षा करने लगीं, परन्तु कुछ भी फल नहीं हुआ।

मदनमालतीका मुरझाया हुआ मन फिर डहडहा नहीं हुआ। वह चांदनीमें चुरने लगीं, शीतल समीरमें झुलसने लगीं, और सखियोंकी कहानियोंसे ऊब उठी। ऊंची २ उसासें लेनेके सिवाय वह सब प्रकारसे निश्चेष्ट हो रही। भाग्यके फेरसे सुखदाई पदार्थ भी दुखदाई हो जाते हैं। परन्तु यथार्थमें पदार्थोंमें सुखदुःख देनेरूप कोई भी शक्ती नहीं है। सुख और दुःख मान लेना आत्माका कार्य है। जिसे आत्मा सुखरूप मान लेता है, वह सुखदाता हो जाता है। और जिसे दुःखरूप मान लेता है, वह दुःखदाता हो जाता है। पानीको बरसता हुआ देखकर किसान सुखी होता है, परन्तु पथिक दुःखी होता है। क्यों ? इसलिये कि, वह उसमें सुखरूप कल्पना कर लेता है, और वह दुःखरूप अस्तु, इस वेदान्तज्ञानके लिखनेका हमको अवकाश नहीं है। अभिप्राय केवल इतना है कि, वे सब सुखकी सामिग्री मदनमालतीको वियोगकल्पनासे दुःख ही दुःखरूप दिखने लगीं। बेचारी सखियोंका कुछ भी उपाय सफलीभूत नहीं हुआ।

अनुमान दो घण्टे तक मदनमालतीका यही हाल रहा। इतनेमें एक शान्तरूपा ब्रह्मचारिणी वहां पर आई, जिसे देखते ही मदनमालती सम्हलकर खडी हुई और अपनी विरहदशाको छुपाती हुई प्रणाम करके ब्रह्मचारिणीके बैठ जानेपर विनयके साथ बैठ गई। यह ब्रह्मचारिणी मदनमालतीकी अध्यापिका थीं। बालकपनसे इसीके पास वह पढती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखती है। इसी कारण मदनमालती उसका इतना विनय करती है।

ब्रह्मचारिणीने कुशल प्रश्नके पश्चात् कहा—मालती ! महाराणीके द्वारा चिरन्जीवी भूपसिंहके दुःखके समाचार सुनकर मैं तुम्हारे पास दौडी आई हूं। तुम्ह मैं बहुत बुद्धिमती और सुशीला बालिका समझती हूं। इसलिये इस विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं देखती। संसरणरूप संसारमें ऐसे सैकडों उलट पुलट प्रतिदिन हुआ करते हैं, और विचारशील पुरुष उन्हें सदा धैर्य्यसे सहन करते हैं यह सब अपने पूर्वकर्मके पापोंका उदय है। इनका फल भोगे विना छुटकारा नहीं है। धैर्य धारण करके भोगोगी, तो भोगना पडेंगे, और विचलित शोकित होकर भोगोगी, तो भोगना पडेगा। परन्तु जो धीरतासे सहन कर लोगी, तो इतना लाभ होगा, कि आर्तध्यानसे नवीन कर्मोंका बंध नहीं होवेगा। अन्यथा यह तो भोगना ही है और इससे नवीन कर्मबंध करके आगामी कालमें फिर उनके उदयफलके भोगनेकी अधिकारिणी होओगी।

इसलिये प्यारी बेटी ! दुःखको विस्मरण करके जितने दिन तक यह वियोग-रात्रि रहै, और पतिसंयोगरूपी दिवसका उदय न हो तब तक एकभुक्ता होकर रह और सौभाग्यमात्र शृङ्गारको रखकर निरन्तर जिनेन्द्रदेवका स्मरण किया कर। अपने प्राणनाथके गुणोंका सदा चिन्तवन और उसकी मङ्गलकामना करना प्रत्येक कुलीन स्त्री का धर्म है।

पतिके वियोगमें दुःखी होनेसे ही कोई स्त्री पतिव्रता नहीं कहला सकती, क्योंकि उसमें उसका सुखस्वार्थ है। सुखस्वार्थके नष्ट होनेपर कौन दुखी नहीं होता ? परन्तु जिस स्त्रीके वियोगावस्थामें ऐसे उच्च विचार रहते हैं कि " मैं दुःखी हूं, सो तो अपने कर्मके उदयसे हूं परंतु मेरे जीवनाधारको किसी प्रकारका कष्ट न हो। वे सुखसे रह। मेरे वियोगका दुःख भी उन्हे न सतावे। क्योंकि जो उनका सुख है वही मेरा सुख है।" वही सच्ची पतिपरायणा स्त्री है।

जो स्त्रियां प्रतिदिन जिनदेवकी पूजा करती हैं संयमसे रहती हैं, धर्मध्यानमें लगी रहती हैं और दुखिया भूखे जीवोंपर दया करके दान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया करती हैं, उन्हें उनके पति बहुत शीघ्र आकर मिलते हैं। क्योंकि सम्पूर्ण सुखोंकी जड धर्म है। धर्मकी महीमा वचनसे नहीं की जा सकती।

मदनमालती यह सब सुनकर रह गई, उसने कुछ उत्तर न दिया। परन्तु उसकी मुखमुद्रा देखकर ब्रह्मचारिणी जान गई कि मेरे कहनेका इसपर कुछ असर हुआ है। और उसी समय दासियोंको कुछ और भी समझा बुझाकर वहांसे चली गई। इसके पश्चात् मदनमालतीने शोक परित्याग कर दिया और वह अपनी गुरानीकी आज्ञानुसार उसी दिन से व्रतनियमसंयमपूर्वक रहने लगी। एक सदावर्त भी उसने शीघ्र खोल दिया, जिसमें सम्पूर्ण दीन दुखियोंको भोजन वस्त्र दिये जानेकी व्यवस्था हो गई।

तेरहवां पर्व

दूसरे दिन फिर मुनिपरिषद् एकत्र हुई। सामान्य व्यख्यान हो चुकनेपर रतनचन्द्रने खडे होकर विनयपूर्वक पूछा—भगवान्! आज कृपा करके यह बतलाईये कि, कर्म कितने प्रकारके हैं, उनका आत्मासे सम्बन्ध किस प्रकार होता है, वे फल किस प्रकार देते हैं और फिर आत्मासे उनका सम्बन्ध किस प्रकारसे छूटता है।

मुनिराज—कर्मके मुख्य भेद आठ हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम गोत्र और अन्तराय। इनमेंसे पहला ज्ञानावरणीय कर्म आत्माके ज्ञान गुणका घात करता है। अर्थात् जब ज्ञानावरणी जातिके कर्मवर्गणाओंसे आत्माका सम्बन्ध होता है, तब उसकी ज्ञानरूप शक्तिपर एक प्रकारका परदा पड जाता है, जिससे वह शक्ति अपना काम नहीं कर सकती। आत्माकी स्वाभाविक ज्ञानशक्ति इतनी है कि, यदि उसपर कोई आवरण न हो, तो वह संसारके तीनकाल सम्बन्धी समस्त पदार्थोंको एक समयमें जान सकता है, परन्तु इन कर्मोंके ढके रहनेके कारण वह उतना नहीं जान सकता अथवा थोडा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत उपशम होनेसे अर्थात् आवरणके न्यूनाधिक होनेसे थोडा बहुत जान सकता है।

दूसरा दर्शनावरणीय कर्म आत्माके दर्शनगुणका घात करता है। अर्थात् उसके कारण आत्माकी अनन्तदर्शनशक्ति ढंकी हुई रहती है।

तीसरा वेदनीय कर्म आत्माके अव्याबाधगुणका घात करता है। अर्थात् वेदनीय जातिकी कार्माणवर्गणाओंके सम्बंधसे आत्माकी बाधा-रहित शक्ति ढक जाती है।

चौथे मोहनीय कर्मके दो भेद हैं—एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयकी कर्मवर्गणाओंसे आत्माका सम्यग्दर्शन गुण दब जाता है, और चारित्रमोहनीयसे चारित्र गुण ढक जाता है।

आयुकर्म आत्माके अवगाहन गुणका घात करता है। गोत्रकर्म अगुरुलघुका घातक है, और अन्तरायकर्म वीर्य (पराक्रम) गुणका घातक है।

उदाहरणके लिये ज्ञानावरणीयका स्वभाव परदेके समान है। जिस प्रकार परदा पदार्थको यथार्थ नहीं देखने देता, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म पुद्गल आत्माके प्रदेशोंसे सम्बन्ध करके तत्त्वज्ञान नहीं होने देते। दर्शनावरणीयका स्वभाव द्वारपालके समान है। अर्थात् जिस प्रकार द्वारपाल परका दर्शन नहीं होने देते, उसी प्रकार इस कर्मके परमाणु परका दर्शन नहीं होने देते।

मोहनीयका स्वभाव मदिराके समान है। अर्थात् जिस प्रकार मदिरा जीवोंको असावधान कर देती है, उसी प्रकार मोहनीयकर्म आत्माको संसारमें पागलसा बना देता है।

वेदनीयका स्वभाव शहदलपेटी छुरीके समान है। जैसे छुरी चाटनेसे मीठी लगती है, परन्तु आखिर जीभका छेदन करती है उसी प्रकार वेदनीय थोडे समयके लिये साता दिखाकर असातासे पीडित रखता है।

आयुका स्वभाव खोडे (काठ) के समान है। जैसे खोडेमें चोरका पांव अटका देते हैं, और जिस प्रकार उसके रहते चोर नहीं निकल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता उसी प्रकार आयुकर्मके पूर्ण हुए बिना आत्मा नरकादिसे नहीं निकल सकता।

नामकर्मका स्वभाव चित्रकारके समान है। जिस प्रकार चित्रकार नाना प्रकारके आकार बनाता है, उसी प्रकार नामकर्म आत्मासे संम्बंध करके नाना प्रकार मनुष्य तिर्यंचादि आकार बनाता है।

गोत्रकर्मका स्वभाव कुंभकारके समान है। जिस प्रकार कुंभकार छोटे बडे नाना प्रकारके बर्तन बनाता है उसी प्रकार गोत्रकर्म नीचे ऊंचे गोत्रोंमें उत्पन्न करता है। और अन्तरायका स्वभाव उस राजभंडारीके समान है, जो राजाके दिलानेपर भी किसीको दान नहीं देता। जैसे भंडारी भिक्षुकोंको लाभ नहीं होने देता उसी प्रकार अन्तराय कर्म आत्माके दानलाभादिमें विघ्न डाल देता है।

यह तो पहले ही कह चुके हैं कि, जिस समय आत्मा रागद्वेषसे सन्तप्त होता है उस समय उसके साथ कार्माणवर्गणाओंका सन्बन्ध होता है। इस सम्बन्धको ही बन्ध कहते हैं। यह बन्ध चार प्रकारका है-प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबंध। कर्ममें आत्माके गुणोंके घात करनेकी शक्तिका नाम प्रकृतिबन्ध है। अर्थात् सामान्य कर्मवर्गणाके परमाणुओंमें जब ऊपर कहें अनुसार ज्ञान दर्शन आदि आत्माके गुणोंके घात करनेरूप पृथक २ स्वभाव उत्पन्न हो जाते हैं, तब वह प्रकृतिबन्ध कहलाता है।

आत्माके असंख्य प्रदेशोंमेंसे एक एक प्रदेशपर अनन्तानन्त कर्मवर्गणाओं, संसारी जीवके प्रदेशों और पुद्गलके प्रदेशोंके एक-क्षेत्रावगाही होनेको प्रदेशबन्ध कहते हैं।

कार्माणवर्गणाओंका उनके स्वभावसे च्युत न होनेको अर्थात् कौन वर्गणा कितने समय तक आत्माके साथ बन्धरूप रहेगी इस प्रकारकी स्थितिका प्रमाण बन्धनेको स्थितिबन्ध कहते हैं और कर्मोंकी हीनाधिक फलदान शक्तिको अनुभागबन्ध कहते हैं।

इन चार प्रकारके कर्मबन्धोंमें प्रकृति और प्रदेशबन्ध योगोंसे होते हैं। और स्थिति तथा अनुभागबन्ध कषायोंसे होते हैं। यहां तुम्हें यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी जान लेना चाहिये कि पुद्गलविपाकीशरीर नामक नामकर्मके उदयसे मनवचनकायसंयुक्त जीवकी उस शक्तिविशेषको योग कहते हैं जो कर्मोंके आगमनमें कारणस्वरूप होती है। और आत्माके क्रोध, मान, माया और लोभ रूप परिणामोंको कषाय कहते हैं।

प्रत्येक कर्मकी मुख्य चार अवस्था होती हैं—उदय उपशम क्षय और क्षयोपशम। कर्म अपनी बंधी हुई स्थितिको पूर्ण करके जिस समय फल देता है, उस समय फलदान अवस्थाको उदय कहते हैं। जैसे किसी जीवने पांच बर्षके लिये कोई कर्म बांधा और वह पांच वर्षकी स्थिति पूरी करके जब कर्मफल देनेके सम्मुख हुआ तब उसकी उस अवस्थाको उदय अवस्था कहते हैं।

कारणवश कर्मशक्तिको अनुद्भूति होनेको उपशम कहते हैं। जैसे मैले जलसे भरे हुए गिलासमें निर्मली डाल देनेसे उसका मैल नीचे बैठ जाता है और स्वच्छ जल हो जाता है, उसी प्रकारसे जीवके परिणामोंके निमित्तसे कर्मरूपी मल कुछ काल तक फल देने योग्य नहीं रहता है, उस अवस्थाको उपशम कहते हैं।

आत्मासे किसी कर्मके सर्वथा छूट जानेको क्षय कहते हैं।

कर्मके जो आठ भेद पहले कह चुके हैं, वे मुख्यतासे दो प्रकारके है—एक घाती और दूसरे अघाती। जो जीवके गुणोंका घात करते हैं, उन्हें घाती कहते हैं, और जो घात नहीं करते हैं, उन्हें अघाती कहते हैं इसी प्रकार घातीके दो भेद है—एक देशघाती और दूसरा सर्वघाती। कर्मके समूहके स्पर्धक और जितने कर्मपरमाणु एक समयमें उदय आवे, उतने परमाणुओंके समूहको निषेक कहते हैं। वर्तमान निषेकमें सर्वघाती स्पर्धकोंका उदयाभावक्षय अर्थात् विना फल दिये ही आत्मासे छूट जाना, देशघाती स्पर्धकोंका उदय और वर्तमान निषेकको छोड आगेके निषेकोंका सत्ता अवस्थारूप उपशम कर्मकी ऐसी मिश्रित अवस्थाको क्षयोपशम कहते हैं।

कर्म और जीवका सम्बंध हम समझते हैं तुम्हें अवगत हो चुका होगा। अब यह बतलाना है कि, अनादिकालसे इन कर्मोंके पंजेमें फँसा आ आत्मा उनसे छुटकारा किस प्रकारसे पाता है। पहले कहा जा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चुका है कि बंधके कारण योग और कषाय हैं। इसलिये यह बात हर-कोईकी समझमें आ सकती है कि मोक्षका उपाय योग कषायके अभाव-रूप होगा। क्योंकि कारणके अभावसे कार्यका भी अभाव हो जाता है। इसलिये यह विचारना चाहिये कि, योग कषायका अभाव किस प्रकारसे होता है।

यह तो निश्चय ही है कि योग कषायका अभाव सम्यग्ज्ञानके विना नहीं होसकता। क्योंकि किसी कार्यके करनेका जब तक यथार्थ ज्ञान न होगा, तब तक उसका सिद्ध होना असंभव है और सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है। अर्थात् जब सम्यग्दर्शन होता है, तब ही सम्यग्ज्ञान होता है। इसी कारण पूर्वाचार्योंने सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान सहित योग कषायके अभावरूप चारित्रको मोक्षका मार्ग बतलाया है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान ये दोनों ही जीवके भिन्न २ गुण हैं। जिस प्रकार अंधकारका नाश होनेपर सूर्यकी किरणोंसे समस्त दिशायें एक प्रकारकी निर्मलता धारण करती हैं, उसी प्रकार दर्शनमोहके उपशम होनेपर जीवके एक प्रकारकी निर्मलता होती है, और उसीको सम्यग्दर्शन कहते हैं। अथवा जैसे कोई मनुष्य मद्य अथवा धतूरेके नशेसे मूर्छित हो जाता है, परन्तु कुछ काल पीछे उस नशेके दूर होनेपर उसका चित्त एक प्रकारके उल्लास (नीरोगता) रूप होता है, उसी प्रकार अनादिकालसे यह जीव दर्शन मोहनीयके हितके विषयमें मूर्च्छितसा हो रहा है। परन्तु कारणविशेषसे दर्शनमोहनीयका उपशम होनेपर उस जीवके आत्महितके विषयमें कपाटसे खुल जाते हैं। उस समय उसके एक प्रकारका जो प्रासाद (नैर्मल्य) प्रगट होता है, उसीको सम्यग्दर्शन कहते हैं।

जिसको यह सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया वही जीव अपने आत्माका अनुभव कर सकता है। इस अनुभवको स्वानुभूति कहते हैं। यद्यपि स्वानुभूति ज्ञानकाही परिणामविशेष है, तथापि वह सम्यग्दर्शनके विना किसी जीवके नहीं होता। इसी लिये किसी २ आचार्योंने स्वानुभूतिको ही उपचारसे सम्यग्दर्शन कहा है श्रद्धा रुचि और प्रतीति ये तीनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानकी पर्याय हैं। तत्त्वार्थके सन्मुख बुद्धिको श्रद्धा कहते हैं तत्त्वार्थके ग्रहणको रुचि कहते हैं और तत्त्वार्थके विश्वासको प्रतीति कहते हैं। शुभकर्ममें मन वचन कायके व्यापारको आचरण कहते हैं। इन श्रद्धादिक गुणोंमेंसे किसी जीवके एक, किसीके दो, किसीके तीन और किसी के चारों गुण होते हैं। जब ये श्रद्धादि गुण स्वानुभूतिसहित होते हैं तब तो गुणरूप ही होते हैं परन्तु जब स्वानुभूति रहित होते हैं, तब वे तदाभास अर्थात् मिथ्यात्वरूप होते हैं। इसलिये स्वानुभूतिसहित श्रद्धा आदिको उपचारसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

रतनचन्द—भगवन्! आपकी कृपासे मैंने कर्मविषयको ठीक २ जान लिया। अब जैनशासनमें सप्त तत्त्व कौन २ से माने हैं, और उनका स्वरूप क्या है, यह जाननेकी मेरी उत्कट इच्छा है।

मुनिराज—रतनचंद! जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये सात तत्त्व हैं। इनमेंसे तुम्हे जीव, अजीव और बंधका स्वरूप सामान्यतः बतला दिया जा चुका है, शेष चारके विषयमें कहना बाकी है। तौ भी यहांपर प्रकरणके सम्बन्धसे सबका ही कह देना उचित होगा।

दो प्रकारके हेतुओंका सन्निधान होने पर उत्पन्न हुए चैतन्यरूप परिणामको उपयोग कहते हैं। और यह उपयोग ही जीवका लक्षण है। इसके दो भेद हैं—एक दर्शनोपयोग और दूसरा ज्ञानोपयोग। आत्माके प्रतिभासका नाम ज्ञान है। ये दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोग दोनों ही एक चेतना गुणकी पर्याय हैं।

जीवके दो भेद हैं—मुक्त और संसारी। जो कर्मबन्धनसे छूट करके स्वाधीन शाश्वत, अविनाशी सुखका अनुभव करते हैं, उन्हें मुक्त कहते हैं। और जो दुःखरूप संसारमें परिभ्रमण किया करते हैं, उन संसारी जीवोंके दो भेद हैं—त्रस और स्थावर। जिनमेंसे त्रस द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ऐसे चार प्रकारके हैं।

पंचेन्द्रियके समनस्क (मनसहित) और अमनस्क (मनरहित) दो भेद हैं। और समनस्क जीवोंके देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चार भेद हैं। स्थावर जीवोंके पांच भेद हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और वनस्पति। वनस्पतिके दो भेद हैं—प्रत्येक और साधारण। जिस वनस्पतिमें एक शरीरका एक स्वामी हो, उसे प्रत्येक और जिसमें एक शरीरके अनेक स्वामी हों, उसे साधारण कहते हैं।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और साधारण वनस्पतिके वादर और सूक्ष्म ये दो २ भेद हैं। पृथिवी आदिसे जिनका अवरोध (रुकावट) न हो सके, उन्हें सूक्ष्म कहते हैं। और जिनका अवरोध हो जावे, अर्थात् जो पृथिवी आदिको पार करके न जा सकें, उन्हें वादर कहते हैं। चेतना रहित द्रव्योंको अजीव कहते हैं। उनके पुद्गल, धर्म, अधर्मादि पांच भेद हैं, जिन्हें छह द्रव्योंके वर्णनमें कह चुके हैं।

आत्मा और कर्मके परस्पर प्रवेश होनेको बन्ध कहते हैं। कर्मके द्रव्यकर्म और भावकर्म दो भेद हैं। पुद्गलपिंडको द्रव्यकर्म कहते हैं। और उस कर्मके सम्बन्धसे उत्पन्न हुए रागादि परिणामोंको भावकर्म कहते हैं। बन्धके तीन भेद हैं—भावबन्ध द्रव्यबंध, और उभयबन्ध। रागरूप परिणाम होनेको भावबन्ध. कार्माणवर्गणाके स्कंधोंमें आत्माके साथ बंधनेकी शक्तिको द्रव्यबंध और आत्मप्रदेश तथा कर्मरूप हुए पुद्गल प्रदेशोंके परस्पर सम्बंध होनेको उभयबंध कहते हैं।

बंधके कारणको आस्रव कहते हैं। इसके चार भेद हैं—द्रव्यबंधका उपादानकारण, द्रव्यबंधका निमित्तकारण, भाववंधका उपादानकारण और भावबंधका निमित्तकारण। जिससे कार्यकी उत्पत्ति होती है, अथवा जो कार्यकी उत्पत्तिमें सहायक होता है, उसे कारण कहते हैं। यह निमित्त और उपादान इस प्रकार दो भेदरूप होता है। जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमै, उसे उपादानकारण कहते हैं जैसे मिट्टी घडेकी उपादानकारण है। क्योंकि वह स्वयं घटरूप हो जाती है। और जो पदार्थ दूसरेकी उत्पत्तिमें सहायक होता है, उसे निमित्तकारण कहते हैं जैसे घडेके बननेमें कुम्हारके दंड, चक्र आदि कारण हैं। अभिप्राय यह है कि, द्रव्य अनादिकालसे जो अनन्तपर्यायें धारण करता रहता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन पर्यायोंमें पूर्वक्षणवर्ती पर्यायको उपादानकारण और उत्तरक्षणवर्ती [आगामी] पर्यायको कार्य कहते हैं। घडेकी पूर्वक्षणवर्ती मिट्टी पर्याय उपादानकारण और उत्तरक्षणवर्ती घडेकी पर्याय कार्य है।

जिस समय आत्मा और कर्म ये दोनों बन्धके पर्यायको पाते हैं, उससे पहले क्षणमें जो कार्माण वर्गणाओंके स्कन्ध बन्धके सम्मुख थे, अर्थात् बंधना चाहते थे, वे द्रव्यबन्धके उपादानकारण और आत्माके रागादि परिणाम द्रव्यबन्धके निमित्तकारण हैं।

इसी प्रकार जिस समय आत्मा भावबन्धरूप पर्यायमें परिणत है, उसके पूर्व क्षणमें आत्माकी जो कुछ पर्याय हैं, वे भावबन्धके उपादानकारण और उदय तथा उदीरणा अवस्थाको प्राप्त पूर्वके बंधे हुए कर्म भावबंधके निमित्तकारण हैं। क्योंकि यह आत्मा उन्हीं कर्मोंके निमित्तसे रागादिस्वरूप भावबन्ध पर्यायको प्राप्त होता है।

आस्रवके रुकनेको संवर कहते हैं। यह दो प्रकारका है—द्रव्यसंवर और भावसंवर। आते हुए कर्मके रुकनेको द्रव्यसंवर और आत्माके गुप्ति, समिति, धर्म, परीषहजय, तप, अनुप्रेक्षा तथा चारित्ररूप भावोंको भावसंवर कहते हैं। भावसंवर कारण है और द्रव्यसंवर कार्य है।

मन वचन कायके योगोंके भलीभांति निग्रहको गुप्ति, प्रमादके रोकनेको समिति, उत्तमक्षमा आदि आत्माके दश स्वभावोंको धर्म, भूख प्यास आदि बावीस परीषहोंके जीतनेको परीषहजय, इच्छाके निरोधको तप, अनित्यादि बारह भावनाओंके चिंतवनको अनुप्रेक्षा और सामायिकादि पांच संयमोंको चारित्र कहते हैं।

कर्मके एकदेश क्षयको [खिरनेको] निर्जरा कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं—द्रव्यनिर्जरा और भावनिर्जरा। आत्मासे एकदेश कर्मोंके छूटजानेको द्रव्यनिर्जरा और जिन भावोंसे वे कर्म छूटते हैं, उन्हें भावनिर्जरा कहते हैं। निर्जराके सविपाक और अविपाक ये भी दो भेद हैं। अनादिकालसे जिनका आत्माके साथ बीजवृक्षका सा सम्बन्ध है, उन कर्मोंका अपनी स्थिति पूरी होनेपर फल देकर खिर जानेको सवि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाकनिर्जरा कहते हैं। और जो कर्म उदयमें न आये हों, उन्हें तपके बलसे उदयावलीमें आकर खिर जानेको अविपाकनिर्जरा कहते हैं।

बन्धके कारणोंके अभाव और निर्जराके सद्भावसे समस्त कर्मोंसे मुक्त हो जानेको मोक्ष कहते है। मोक्षके भी दो भेद हैं—द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष। आत्मा तथा कर्मके परस्पर सम्बन्ध छूटनेको द्रव्यमोक्ष और द्रव्यमोक्षके कारणभूत परिणामोंको भावमोक्ष कहते हैं।

समस्त कर्मोंसे रहित होनेपर यह आत्मा अपने ऊर्ध्वगति स्वभावसे ऊपर गमन करके लोकके अन्तमें बिराजमान हो जाता है। धर्म द्रव्यका अभाव होनेके कारण उसकी लोकके बाहर गति नहीं होती। और इस मुक्तात्माके रागद्वेषादिकोंका सर्वथा अभाव हो जाता है, इसीलिये फिर कर्मबन्ध नहीं होता और इस कारण चतुर्गतिरूप संसारमें उसका परिभ्रमण नहीं होता। मोक्षमहलमें वह सदाकाल अविनाशी अतीन्द्रिय सुखका अनुभवन करता है।

सप्ततत्त्वका स्वरूप समाप्त हो चुकनेपर उस दिनकी व्याख्यान सभा भी समाप्त की गई।

चौदहवां पर्व।

हीरालाल जौहरी रतनचंदका इकलौता पुत्र था। जब हीरालाल उत्पन्न हुआ था, तब रतनचंदकी माता जीवित थी। नातीका जन्म सुनकर उसके आनंदका पार नहीं रहा था—अपनी एक पडोसिन ब्राह्मणीको बहुतसी दान दक्षिणा देकर उसने कहा था, राधा! आज मेरा अंधेरा घर प्रकाशमान होगया। तुम्हारे सबके पुण्यप्रतापसे मेरा यह दीपक जगमगाता रहे, मेरी यही लालसा है। अब मैं अपने नातीको गोदीमें लिये हुए बडे आनन्दसे मरूंगी। अब मुझे किसी बातकी अभिलाषा नहीं है।

रतनचन्दकी माता बडी भोली और सीधी साधी थी। अपने पुत्रके समान अपनी बहू रामप्यारीपर भी वह निःसीम प्रेम रखती थी। रामप्यारीके सिरमें जरासा दर्द भी होता था, तो बुढिया विकल हो जाती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थी। बीसों वैद्यों और मंत्रवादियोंके घर उसके बुलावा पहुंचते थे। और उनके भले होते थे। रामप्यारी बहुत बुद्धिमती स्त्री थी। इसलिये ऐसी जरा २ सी बातोंमें वैद्योंको बुलानेके लिये वह निषेध करती, परंतु उस बेचारीकी सुनता कौन था। बुढियाके आगे किसीकी भी दाल नहीं गलने पाती थी। आखिर रामप्यारीने मन ही मन यह निश्चय कर लिया था कि, छोटी मोटी तकलीफोंको किसीपर प्रगट ही नहीं करूंगी।

रामप्यारी एक सुचिन्हित घरकी लडकी थी इसलिये सम्पूर्ण गृह-कार्योंमें दक्ष होनेके सिवाय वह भले प्रकार पढी लिखी भी थी। वह जानती थी कि, बालक छोटी अवस्थामें जैसे सांचेमें ढाला जावेगा, उसका आगामी जीवन उसी प्रकारका होगा। इसलिये बालक हीरालालको वह सदा अपने ही पास रखना चाहती थी और इस बातसे बडी सावधान रहती थी कि, उसके हृदयपर बुरे बालकोंके दुर्गुणोंकी छाया न पडने पावे। परन्तु रतनचन्दको भोला माता प्रेमाधिक्यके कारण उसके इस कार्यमें बाधक होती थी। प्रायः वह उसे अपनी गोदमें लेकर दीवानखानेमें जा बैठती थी और मुहल्लाके बुरे भले बालक बालिकाओंको बुलाकर उनके साथ विनोद करता और मादक बांटती थी।

इस कौतुकसे और क्या हानि हुई सो तो हम नहीं कह सकते, परंतु एक दिन दूध पिवानेमें देरी हो जानेके कारण बालक हीरालालने रामप्यारीको तोतले अस्पष्ट अक्षरोंमें अश्लील गालीं दी थीं, जिसे सुनकर बुढिया बडी प्रसन्न हुई थी।

हीरालाल जब पांच वर्षका हुआ, तब एक दिन रामप्यारीने गुप्तरूपसे शुभमुहूर्त निकलवाकर विद्यारंभ करा दिया था। खेलके बहानेसे वह प्रतिदिन घंटा आध घंटा उसे कुछ न कुछ बतला दिया करती थी, इसके १०–१५ दिनमें ही हीरालाल वर्णमाला सीख गया था।

उस समय तो रतनचंदकी मांके कानोंतक यह बात नहीं पहुंची! परन्तु एक दिन किसी खिलाडी लडकेके मुंहसे यह बात सुनकर बुढिया बडी अप्रसन्न हुई। उसने रामप्यारीसे कहा–बहू! तेरे सिरपर तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलियुग सवार हो गया है। तुझे यह नहीं मालूम है कि, छोटी अवस्थामें पढानेसे लडके कमजोर हो जाते हैं। अभी ये उनके खेलने खानेके दिन हैं। अभीसे उसके सिरपर यह पढनेकी चिन्ताका पत्थर रख दिया जावेगा, तो इसका शरीर कैसे बढेगा? और हमारा हीरा क्या किसी कंगालका लडका है, जो विना पढे भूखों मर जावेगा? उसे किस बातकी कमी है! बैठा २ खावेगा और गुमास्तोंपर हुक्म किया करेगा। खबरदार! अब यदि मैंने कभी पढानेकी बात सुनी, तो तुझसे बोलना छोड दूंगी और रोटी नहीं खाऊंगी।

इसपर रामप्यारीने अपनी शक्तिभर बहुत कुछ समझाया कि, मैं इस तरहसे पढाती हूं, कि इसे कुछ परिश्रम न पडे, खेल ही खेलमें बतलाती रहती हूं। परंतु बुढियाने एक न सुनी। लाचार मन ही मनमें दुःखी होकर रामप्यारीने उस समय पढाना छोड दिया और विचार किया कि, अस्तु, पढना नहीं, तो न सही। कुछ नैतिक शिक्षा ही इसे देती रहूंगी। परंतु उसकी यह इच्छा भी पूर्ण नहीं हुई।

थोडे ही दिन में उसके एक दूसरा बालक उत्पन्न हुआ और दो तीन दिन जीकर मर गया। साथ ही वह भी बीमार हो गई। रतनचन्दने बडे २ वैद्योंसे दवाई कराई परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ खाना पीना सब छूट गया। एक मात्र हड्डियोंका पंजर रह गया। रामप्यारीकी यह दशा देखकर रतनचंदको जो कष्ट होता था उसका वर्णन नहीं हो सकता। उस दुःखका अनुभव वे ही कर सकते हैं, जिनपर कभी ऐसा अवसर आ चुका हो रतनचंदसे उस घरमें जहां कि रामप्यारीका पलंग बिछा था खडा नही रहा जाता। जो और अन्यत्र कहीं जाते थे, तो जी उथल पुथल हुआ जाता था।

एक दिन वृद्धा माता हीरालालको बाहर बहला रही थी, और दूसरे सेवक लोग अपने अपने काममें लगे हुए थे कि रतनचन्दको एकान्तमें पलंगके पास खडे हुए देखकर रामप्यारीने कठिनताके साथ धीरेसे कहा "प्राणनाथ! मैं आपके समक्ष प्राणत्याग करूंगी, इससे बढकर सुखसौभाग्य और मेरा क्या हो सकता है? परंतु मेरे पीछे न जाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीरालालकी क्या गति होगी ? यह चिन्ता मुझे बहुत सताती है । वह छह सात वर्षका हो गया तौ भी उसके पढनेकी ओर किसीका ध्यान नहीं है । अब भी यदि वह न पढा, तो और कब पढेगा ?

अब मैं बहुत समय तक न जीऊंगी । एक बात मैं बहुत दिनसे कहना चाहती हूं परन्तु कही नहीं जाती । इतना करते २ रामप्यारीके नेत्रोंसे आंसूके दो बूंद निकल पडे । रतनचन्दने उन्हें अपने दुपट्टेसे पोंछकर उस भाग्यवतीके मुंहपर हाथ फेरा और कठिनाईसे हृदयको सम्हालकर कहा—प्रिये कहो, क्या कहती हो ?

रामप्यारीने उस समय रतनचन्दके मुखका एक अपूर्व भावसे निरीक्षण करते हुए कहा—जीवनसर्वस्व कहीं इससे मेरे हृदयको छोटा नहीं समझ लेना वह बहुत विस्तृत है । परन्तु संसारकी अवस्थाका विचार करके कहना पडता है कि, अब तुम दूसरा विवाह नहीं करना । हीरालालकी कुशल चाहना हो, तो रामप्यारीके नाथ ! अब किसी दूसरीके नाथ नहीं बनना ।

रामप्यारीसे और अधिक न बोला गया, गला भर आया आंखोंसे आंसुओंकी धारा वह निकली । तब रतनचन्दने रामप्यारीका सिर अपनी गोदमें रख लिया और मुंहपर हाथ फेरते हुए रोते २ कहा-प्राणवल्लभे ! ऐसा ही होगा । तुम्हारी सम्मतिका पालन करनेके लिये मैं सर्वतोभावसे तैयार हूं । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं समझना । रतनचन्द रामप्यारीको छोडकर अब किसीको प्यारी कहके संबोधन नहीं करेगा ।

यह सुनकर रामप्यारीके क्षीणमुखपर एक प्रकारकी आभा सी झलक आई, एक वार पतिकी ओर लालायित नेत्रोंसे देखकर उसने कृतज्ञता प्रगट की । उसी समय वृद्ध माताके आजानेसे रतनचंद पलंगपरसे उतर पडा और बाहर चला गया ।

उसी रातको रामप्यारीकी अस्वस्थता अधिक बढी । और प्रातःकाल होनेके पहले अपने पति और पंचपरमेष्ठीका नामस्मरण करते हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसने प्राणोत्सर्ग किया। चारों ओर हाहाकार मच गया। उस समय वृद्धा बेहोश होकर गिर पडी। रतनचंदको घर बाहर अन्धकार ही अन्धकार दिखने लगा।

धीरे २ रामप्यारीको मरे हुए चार वर्ष बीत गये। रतनचंद बहुत दिनसे दूकानादिके कार्योंसे उदासीन हो गये थे, वह भी करने लगे। मित्र दोस्तोंमें उठने बैठने लगे, हंसी मजाक करने लगे। सारांश कि, सांसारिक कार्योंमें सर्व प्रकारसे पहलेकी नाईं अस्तव्यस्त रहने लगे, परन्तु रामप्यारीको नहीं भूले। हीरालालके मुंहको देखते ही उन्हें उसका स्मरण हो आता था।

वृद्धा माता प्रतिदिन समझाती थी, नगरके प्रतिष्ठित लोगोंको ला लाकर समझानेको कहती थी, जातिकी विवाहयोग्य कन्याओंके रूप गुणोंकी अवसर पाकर स्वयं प्रशंसा करती थी और बराबरकी स्त्रियोंसे कराती थी। परन्तु रतनचंद दूसरा विवाह करना स्वीकार नहीं करते थे। रामप्यारीके कहे हुए वचन उनके हृदयपर अच्छी तरहसे अंकित हो रहे थे। उस समय उहें भूल जाना उनकी शक्तिसे बाहर था।

हीरालाल अपनी दादीके लाड प्यारमें धनवानोंके जैसे लडके हुआ करते हैं, वैसा ही हो गया। रामप्यारीकी अंकित की हुई थोडे बहुत गुणोंकी छाया जो कुछ उसके हृदयपर थी, वह भी साफ हो गई। खेलकूद और तत्सम्बन्धी पदार्थोंके एकत्र करनेके सिवाय उसे कुछ भी नही रुचता था। और रतनचंदको अपनी अन्यमनस्कता तथा प्रपंचोंके मारे इतना अवकाश नहीं मिलता था, कि हीरालालकी देखरेख रख सकै, अथवा उसके विद्याभ्यासमें सहायक हो। नगरकी एक पाठशालामें नाम लिखाकर ही निश्चिन्त हो चुके थे कि, हीरालाल पढता है। परंतु हीरालाल बुरे लडकोंके दुर्गुण सीखनेके सिवाय और कुछ नहीं करता था।

पाठशालाके अध्यापकका विद्यार्थियोंको प्राय; भय रहा करता है, परंतु हीरालालको वह भी नहीं था। क्योंकि उसकी दादीके द्वारा अध्यापक महाशयको बहुत कुछ प्राप्ति हुआ करती थी। दादी हाथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोडके कह दिया करती थी कि, पंडतजी! मेरे हीरालालको मत मारियो। उसे प्यारसे पढा दिया कीजियो। सारांश यह कि हीरालालके पठनपाठनकी व्यवस्था आजकलके धनवानोंके लडकोंसे बहुत कुछ मिलती जुलती थी।

खेटपुरमें एक धनपाल नामके सेठसे रतनचन्दकी गाढी मित्रता थी रतनचन्दको अपने हृदयपर भी जितना विश्वास नहीं था, उतना अपने मित्रपर था। धनपाल उमरमें कुछ बडे थे, इसलिये रतनचन्द उन्हें बहुत मानते थे, और उनकी दी हुई सम्मतिका बहुत आदर करते थे। बुढियाने अपने सब उपायोंको विफल देखकर अन्तमें इन्हीं धनपालसे अपनी इच्छा प्रगट करनेका मनसूवा किया और एक आदमी भेजकर एक दिन उन्हें बुला भेजा।

धनपालसे वृद्धाने कहा—बेटा! तुझे इसलिये बुलवाया है कि, रतनचन्दको विवाह करनेके लिये राजी कर लें। मैंने बहुत उपाय किये, परन्तु वह नहीं मानता है। भला तू ही कह, स्त्रीके विना घरकी क्या शोभा है? भला, मेरे किस बातकी कमी है, जो विवाह न करूं। देख न, नगरमें लोगोंकी चरचाके मारे कान नहीं दिये जाते हैं। मुझसे तो मुंह भी नहीं दिखलाया जाता है। और न अब इस घरमें खडा रहा जाता है। यदि तेरे कहनेसे भी वह नहीं मानेगा, तो देख लेना मैं आत्महत्या कर लूंगी। इसके बाद बुढिया रोने लगी। धनपालने उसे जैसे तैसे समझा बुझाकर उस समय शान्त किया और उसकी इच्छामें सहमत होकर पीछा छुडाया।

इसके पश्चात् धनपालकी रतनचन्दसे भेट हुई एकान्तमें बहुत समय तक दोनोंमें शास्त्रार्थ होता रहा। और अन्तमें धनपालके पक्षकी इस प्रकारसे विजय हुई। उन्होंने कहा—तुम्हारी अवस्था विवाहके योग्य अर्थात् लोक और शास्त्र दोनोंकी मर्यादाके भीतर है। वृद्धा माताका अतिशय आग्रह है, सिवाय इसके तुम्हारे यहां कोई दूसरी घरद्वारकी सम्हालनेवाली भी तो कोई नहीं है।

मांके जीवनका ठिकाना ही क्या है? न जाने कब कूच कर दें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर भला तुम ही कहो; हीरालालका कौन होगा ? और तुम क्या समझते हो कि, जैसी तुम्हारी परिणति आज है, वैसी सदा बनी रहेगी नहीं, ऐसा स्वप्नमें भी ख्याल न करो। क्योंकि संसारबद्ध पुरुषके समय समय पर भाव बदला करते हैं। बाह्य-कारणोंके मिलनेसे कब कैसे परिणाम होंगे, इसका निश्चय नहीं है। गृहवासमें रहकर विषयवासनाओंको दबाये रखना सबका कार्य नहीं है।

नीतिमें कहा है-"बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति" अर्थात् बलवान् इन्द्रियोंके समूह विद्वानोंको भी आकर्षित करते हैं, इसलिये विचार करो कि, अभी तुम इस प्रकारसे बैरागी बने रहे और पीछे अवस्था पक जानेपर किसी कारणसे तुम्हें विवाह करनेके लिये बाध्य होना पड़े, तो संसारमें कितना परिहास होगा ? अतएव अच्छा हो, यदि तुम इस सोहती अवस्थामें ही संसारके एक ऋणसे मुक्त हो जाओ और भी जहांतक मैं जानता हूं, यदि योग्य अवस्थामें एक स्त्रीके मृत्यु हो जानेपर दूसरा विवाह करना हो, तो कुछ अनुचित कर्म नहीं है। गृहस्थ धर्मका निर्वाह विना स्त्रीके नहीं हो सकता। जिस घरमें स्त्री नहीं है, उस घरमें शांति नहीं है, सुख नहीं है, विश्राम नही है, और सच पूछो, तो उस घरमें लक्ष्मीका निवास ही नहीं हो सकता है। जैसा कि लोग समझते हैं, यह स्त्रीरत्न विषयवासनाकी निवृत्तिका उपकरणमात्र नहीं है। किन्तु परम्परा मोक्षस्वरूप गृहस्थमार्गका पथदर्शक दीपक है। संसारमें रहकर जो इस रत्नकी अवहेलना करते हैं, उन्हें प्रायः सुखशान्ति मिलती ही नहीं है।

स्त्रीके समान सुदक्ष मंत्री, स्त्रीके समान सच्चा स्वामिभक्त सेवक, स्त्रीके समान सुस्वादु भोजन करानेवाला पाचक, स्त्रीके समान परिश्रमनिवारक दिव्यमंत्र, स्त्रीकंठके समान जगन्मनोहर वाद्य, स्त्रीके प्रसन्नमुखके समान चिंताखेदनाशक नन्दनवन, और स्त्रीके रमणीय समागमके समान स्वर्ग, संसारमें दूसरा नहीं है ! नहीं है !! इसलिये यदि तुम स्त्रीका परिग्रह नहीं करते हो, तो इस संसारको ही क्यों नहीं छोड देते ? और यदि संसारको छोडनेकी तुम्हारी शक्ति नहीं है, तो भाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा कहना मान लो, और अपनी माताकी इच्छा पूर्ण करनेमें अब बिलम्ब मत करो।

रतनचन्द इसका कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि, इतनेमें एक आदमी घबडाया हुआ आया और बोला—सेठजी नेमिचंद सेठने आपको इसी समय बुलाया है। उनकी अवस्था बहुत खराब हो रही है। यह सुनते ही रतनचन्द और धनपाल दोनों उस आदमीसे कुछ पूंछ तांछ करते हुए नेमिचद सेठके घर जा पहुंचे।

पंद्रहवां पर्व।

नेमिचन्द एक साधारण श्रेणीके वणिक् हैं। वे बहुत धनवान् तो नहीं है, परन्तु सत्यनिष्ठाके कारण उनकी प्रतिष्ठा वहांके बडे २ धनवानोंसे किसी प्रकार कम नहीं है। इस समय वे मृत्युशय्यापर पडे हुए हैं। उनकी एक मात्र कन्या रामकुमारी उनके सिरानेके पास उदासमुख बैठी है। उसकी अवस्था इस समय अनुमान १३ वर्षके होगी यों तो वह वैसे ही सुरूपवती थीं, परन्तु इस समय यौवनके प्रारम्भकी आभासे उसका शरीर बहुत ही मनोहर हो गया है। जो एकवार उसे देख लेता है वह फिर भी उसे देखना चाहता है। उसके प्रत्येक अंगकी शोभाका वर्णन करके हम अपने पाठकोंको चलचित्त नहीं बनाना चाहते और इतना ही कहकर हम आगे चलते हैं कि वह सुन्दर थीं। जिस समय रामकुमारी तीन चार वर्षकी थीं, उसी समय उसकी माताने उससे विदा मांग ली थीं। पिताने बडी कठिनाईसे उसका पालन किया है। दूसरी कोई सन्तान न होनेके कारण नेमिचन्दने उसे हीं अपने आंखोंकी तारा बना रक्खी थीं।

नेमिचन्दकी उमर इस समय ६० वर्षके अनुमान है। आज वे अपनी दुलारी रामकुमारीको अकेली छोडकर जानेकी तैयारी कर रहे हैं। इस समय उन्हें अपने मरनेका उतना दुःख नहीं है जितना रामकुमारीको कुमारी छोडकर जानेका है। कई वर्षसे वे उसके विवाहका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचार करते थे, तरन्तु जिस समय उन्हें इस बातका स्मरण होता था कि, हमारी दुलारी बेटी विवाह होते ही हमसे अलग हो जावेगी उस समय उनके सब विचार आंसुओंके द्वारा बह जाते थे।

वे नहीं जानते थे कि, मेरा जीवन कितना बडा है ? इसी भूलके कारण आज नेमिचन्दका हृदय उत्तप्त उद्विग्न हो रहा है, शरीरकी शक्ति अधिकाधिक क्षीण होती जाती है। न जाने कितने स्वास बाकी रह गये हैं, यह समझ करके और अधिक विचारपूर्वक निश्चय करनेका अवसर न देखकर उन्होंने रतनचन्दको बुलाया है। रतनचन्दके चरित्रोंको वे बालकपनसे जानते हैं और इस कारण उसपर प्रीति भी रखते हैं।

नेमिचन्दके घर रतनचन्द प्रायः आया जाया करते थे, और जरूरत होनेपर रामकुमारीसे बातचीत भी करते थे। रामकुमारी भी उनके साथ वार्तालाप करनेमें कुछ संकोच नहीं करती थीं। परन्तु आज न जाने क्यों रतनचन्दके आते ही वह वहांसे भाग गई। बहुत देर से अपने पिताकी चिन्ताग्रतापर विचार करते २ शायद उसने इसी तत्त्वका शोध किया था।

रतनचन्द और धनपालने आते ही शरीर-कुशलता पूंछी। मुमूर्षु नेमिचंदने एकबार रतनचंदको सिरसे पैरतक देखा, और थोडी देरतक नेत्र बन्द करके कुछ विचार किया। पश्चात् बहुत धीमी आवाजसे कहा, रतनचन्द ! मेरी यह अंतिम दशा है। अच्छा हुआ, जो तुम आगये। यह कहकर नेमिचन्दने सिरहानेके पास रामकुमारीको न देख कर पूछा, दुलारी कहां चली गई ?

रामकुमारी पास ही दीवालकी ओटमें खडी थीं। उसने पिताकी आवाज सुन ली, परंतु आई नहीं। तब रतनचन्द स्वयं उसका नामोच्चारण करते हुए बुला लानेको उठे, बडी मुश्किल हुई। रामकुमारीने देखा, नहीं जाऊंगी, तो अब हाथ पकडा जावेगा। इसलिये तत्काल ही लज्जित होती हुई-नीची दृष्टि किये हुए पिताके समीप आ खडी हुई। एक ओर उसके आगे पिताके मृत्युके पश्चात्का बियोग-विपत्तिका दृश्य नाचता था और दूसरी ओर एक नवीन विचारकी उथल पुथल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसके हृदयको अस्थिर बना रही थी। पिताकी मुमूर्षु मूर्तिको देखकर उस समय उसके नेत्रोंमें आंसू भर आये। वह गद्गद-कंठसे बोली—पिताजी क्या आज्ञा है?

रतनचन्द और धनपाल पलंगके पास ही पडी हुई कुर्सियोंपर बैठे थे। उनमेंसे रतनचन्दकी कुर्सी सिरहानेकी ओर थी और धनपालकी कुर्सी उसीसे लगी हुई परन्तु दाहिनी ओर थी। नेमिचन्दका मस्तक एक तकियेके सहारे कुछ ऊंचा हो रहा था। यद्यपि वे चाहते थे, मैं थोडे समयके लिये टिकके बैठ जाऊं, परन्तु अशक्तता बहुत बढ गई थी। मस्तक ही बडी कठिनतासे तकियेके सहारे रह सकता था।

अपनी प्यारी बेटीके मुंहसे "क्या आज्ञा है?" यह प्रश्न सुनकर उन्होंने कहा—जरा मुझे अपना बायां हाथ तो बतला। उस समय रामकुमारीका शरीर कंटकित होगया। न जाने क्यों डरते २ उसने हाथ आगेको बढाया। उसी समय नेमिचन्दने कहा—रतनचन्द! तुम मुझे सदासे मानते आये हो। क्या आज भी मेरी बात मानकर तुम मुझे सुखी कर सकते हो? "कहिये, क्या बात है, मैं उसे माननेके लिये सब प्रकारसे तैयार हूं।"

इस प्रकार कहते हुए रतनचन्द कुर्सीसे उठकर बात सुननेकी उत्कंठासे आगेकी ओर झुके। उसी समय नेमिचन्दने रामकुमारीका हाथ पकडके रतनचन्दके हाथमें दिया और कहा—"बस, इस कन्याका पाणिग्रहण करो, यही मेरी अन्तिम वासना है। मुझे इसीसे सीमाधिक सुख प्राप्त होगा। मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिका स्वामी तुम्हेंही बनाता हूं।"

रतनचन्द अवाक्। एक क्षणभर पहले जिसका स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था, वह बात कार्यमें परिणत होनेके सम्मुख हो गई। जिसका कभी विचार ही नहीं किया, उसका क्या उत्तर दें? और ऐसे महत्त्वके विषयका जिससे जीवनके सुखदुःखोंका सारा फैसला होता है। क्या इतनी जल्दी बिचार करके उत्तर दिया जाना संभव है! बडा ही कठिन प्रश्न था। मृत्युशय्यापर पडे हुए वृद्ध पुरुषकी आज्ञाका उल्लंघन करूं, अथवा स्वर्गीय रामप्यारीसे हारे हुए वचनोंकी अवहेलना करूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लज्जावनता सुन्दरी का सुकोमल कर पल्लव छोड दूं, अथवा साध्वी का दिया हुआ व्रत तोड दूं ?

इस विकट द्वन्द्वयुद्धमें पडकर रतनचन्द चकित स्तंभित हो रहा। अपना कर्तव्य क्या है, यह विचारनेकी शक्ति हीं उसमें न रही। मूर्तिमंत पाषाणके समान वह खडाका खडा रह गया। उसके दाहिने हाथमें रामकुमारीका दाहिना हाथ ज्योंका तों थमा हुआ था।

धनपाल इस अपूर्व दृश्यको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह एवमस्तु एवमस्तु कहकर उठ खडा हुआ। और रतनचन्दकी समाधि भंग करके उसने कहा—बाहजी ! तुमने भी खूब ध्यान लगाया। अब उस बेचारीका हाथ छोडोगे भी, या यों ही खडे रहोगे ? लज्जा आती हो तो उत्तर देनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि एक तो इसका कुछ उत्तर ही नहीं है; और जो है वह इतनी देरतक मौन धारण करके प्रगट भी तो कर चुके हो ! क्योंकि "मौनं सम्मतिलक्षणं" कहा है।

इसके पश्चात् धनपालने अपना लक्ष्य बदल कर नेमिचन्दसे कहा—आपने बहुत उत्तम विचार किया। और यही आपका कर्तव्य था। रतनचन्दजीकी ओरसे मैं इस सम्बन्धका स्वीकार करता हूं। इनकी माता भी इस सम्बन्धको बडी प्रसन्नतासे स्वीकार करेंगी। आप निश्चिन्त होकर शान्तिलाभ कीजिये।

नेमिचन्दने यह सुनकर एकवार रतनचन्द और रामकुमारीकी ओर देखकर नेत्र बन्द कर लिये और फिर नहीं खोले।

नेमिचन्दकी अन्तःक्रिया की गई। रामकुमारीने कई दिनतक पितृवियोगका शोक मनाया। और कुछ दिन पीछे रतनचन्द द्वितीय विवाह के बन्धनसे जकड दिये गये। उनकी माता नववधूको पाकर आनन्दमें मग्न हो गई। हीरालालको उसके साथमें खिलाडी लडके "मैया नई पुराना बाप, हीरा बेटा सूता कात" आदि तुकबन्दियां बना बनाकर चिढाने लगे।

जिस रातको रतनचन्दका रामकुंवरिके साथ प्रथम समागम हुआ उसी रातके पिछले पहरमें उन्होंने स्वप्नमें देखा, कि एक दिव्य विमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धीरे धीरे आकाशसे नींचे उतरा है। उसमें बैठी हुई एक त्रैलोक्यमोहनी सुन्दरी परिहासपूर्वक कहती है, "रामप्यारीके नाथ! अन्तमें तुम प्रतिज्ञाका पालन न कर सके। और एक नवमुग्धाके नाथ बन गये। कहते थे—संसारमें अब किसीसे प्यारी नहीं कहूंगा। परन्तु वह भी भूल गये। सच तो कहो, आज तुमने कितनी वार "प्यारी! प्राणप्यारी" मंत्रका जाप्य किया है। अस्तु, क्या चिन्ता है।

कुछ दिन इस मंत्रका फल भी अनुभव करके देख लो कि कितनी शांति मिलती है। अन्तमें तो तुम मेरे ही होओगे। एक दिन इसी दिव्यविमानमें मैं तुम्हारे साथ विहार करूंगी। पतिसेवाका फल मुझे अवश्य मिलेगा। कृत्रिम प्रेम थोडे ही दिन टिकता है, परंतु अकृत्रिम अगाध प्रेम अन्ततक एक रूपमें स्थिर रहता है।" इतना कहकर वह अप्सरा वहांसे अन्तर्ध्यान हो गई। रतनचन्दको पीछे पीछे भान हुआ कि वह उनकी पतिप्राणा साध्वी रामप्यारी थी।

रतनचंदका विवाह समाप्त होते ही बुढिया माताने हीरालालके विवाहका सूत्रपात किया। और आखिर दूसरे वर्ष वह भी चतुर्भुज बना दिया गया। उस समय उसकी अवस्था १२ वर्षकी थी। अब यह कहनेकी जरूरत नहीं रही कि वह जो कुछ थोडा बहुत विद्याभ्यास करता था उसकी भी इतिश्री यहीं हो गई। इधर पौत्रवधूका मुख देखकर कुछ दिनमें बुढिया दादीं चल बसी। रतनचंद अपनी जननीके अकृत्रिम स्नेहका स्मरण करके बहुत दुखी हुए।

बस, रतनचंद और हीरालालकी पूर्वकथाका सार यही है। यहां इसे प्रगट करना हमने इसलिये उचित समझा कि, पाठकगण इस बातका विचार कर सकें कि मनुष्यका चरित्रगठन कब और कैसे होता है, तथा उसका परिपाक कब और किस रूपमें होता है। इस परिचयसे और भी अनेक बातोंकी शिक्षा मिलनेकी संभावना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोलहवां पर्व

तीसरे दिन मुनिपरिषत्के एकत्र होनेपर रतनचंदने विनयपूर्वक प्रश्न किया कि, महाराज ! आज कृपा करके यह बतलाइये कि मोक्षमार्गके पूर्ण होनेका क्रम क्या है ? यह सुनकर आचार्य भगवानने कहा-रतनचंद ! आजका तुम्हारा प्रश्न बहुत ही अच्छा हुआ । इसके उत्तरको सुनकर तुम्हें बहुत समाधान तथा संतोष होगा । जैन मार्गका सच्चा गौरवइसी विषयके सुननेसे प्रगट होगा ।

कारणके दो भेद हैं—एक समर्थ कारण और दूसरा असमर्थ कारण । सहकारी समस्त सामिग्रीके सद्भावपूर्वक सम्पूर्ण प्रतिबंधकोंके अभावको समर्थ कारण कहते हैं कार्यकी सिद्धि असमर्थ कारणसे नहीं होती किन्तु समर्थ कारणके सद्भाव होते ही हो जाती है । मोक्षका समर्थ कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्रकी एकत्रता तथा पूर्णता है । उसके होते ही तत्काल मोक्ष होता है । परन्तु इन तीनोंकी एकत्रता पूर्णता युगपत् नहीं होती, क्रमपूर्वक होती है । तुम्हारा प्रश्न इसी क्रमके विषयमें है । अच्छा, तो मैं अब इसके उत्तरका प्रारंभ करता हूं ।

अनादिकालसे चतुर्गतिमें परिभ्रमण करते हुए जीवोंमेंसे जिस जीवका अर्धपुद्गलपरावर्तन प्रमाण संसारकाल शेष रहता है, वह जीव सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका पात्र होता है । क्षयोपशम, देशना, विशुद्धि, प्रायोगिक तथा करण इन पांच लब्धियोंका सन्निधान होते ही सम्यग्दर्शनके प्रतिपक्षी मिथ्यात्व (दर्शनमोह) तथा अनंतानुबंधी चार कषाय इन पांच प्रकृतियोंका उपशम होता है । उस समय आत्मामें जो सम्यग्दर्शन परिणाम प्रगट होता, है, वह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन है । इस सम्यग्दर्शनके लाभसे आत्मामें जो विशुद्ध परिणाम होते हैं, उनसे मिथ्यात्व प्रकृतिके तीन खंड होजाते हैं इससे पहले अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके दर्शनमोहनीय कर्मकी एक मिथ्यात्व प्रकृति ही थी ।

उक्त तीन खण्डोंमेंसे एक खण्डको सम्यक्त्वप्रकृति कहते हैं विशुद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणामोंके बलसे इन परमाणुओंमें अनुभागशक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि, वे सम्यक्त्वका निर्मूल घात तो नहीं कर सकते परंतु शङ्का आदिक मल उत्पन्न करते हैं। दूसरे खण्डका नाम मिश्रप्रकृति है इसके परमाणुओंका अनुभाग इस प्रकार क्षीणाक्षीण होजाता है कि इसके उदयसे आत्मामें मिश्रित दही गुडके स्वादकी तरह सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वरूप जुदे जुदे परिणाम नहीं होते, किन्तु मिश्रित परिणाम होते हैं। तीसरा खण्ड मिथ्यात्व प्रकृति स्वरूप ही है। अब इस जीवके सम्यग्दर्शनके प्रतिपक्षभूत दर्शनमोहकी प्रकृति तीन तथा चरित्र मोहकी अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्टय इस प्रकार सात प्रकृति हुई। इन सात प्रकृतियोंमेंसे यदि मिथ्यात्व प्रकृतियोंका उदय हो जाय तो यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको छोडकर मिथ्यादृष्टि संज्ञक प्रथमगुणस्थानवर्ती हो जाता है। यदि मिथ्यात्वका उदय न हो और अनन्तानुबन्धियोंमेंसे किसी एकका उदय हो जाय, तो अनन्तानुबन्धीके उदयसे स्वानुभूतिरूप स्वरूपाचरणका घात हो जाता है। स्वरूपाचरण और सम्यग्दर्शनका अविनाभाव होनेसे स्वरूपाचरणके अभावसे प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन भी छूट जाता है।

यहांपर मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय न होनेसे मिथ्यात्व भी नहीं है, तथा अनन्तानुबन्धीका उदय होनेसे सम्यग्दर्शन भी छूट गया, इसलिये इस जीवकी इस अवस्थाको सासादनगुणस्थान कहते हैं। जिस जीवके मिश्रप्रकृतिका उदय हो जाता है वह मिश्रपरिणामोंका अनुभव करनेसे तीसरा मिश्र गुणस्थानवर्त्ती कहलाता है। और जिस जीवके सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होता है, उसके दर्शनमोहका क्षयोपशम होनेसे क्षयोपशम अथवा वेदक सम्यक्त्व कहा जाता है।

यही वेदक सम्यग्दृष्टि, जीवके केवली अथवा श्रुतकेवलीके पाद मूलमें अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन (अप्रत्याख्यानादि बारह प्रकृतिरूप परिणमावना) कर दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त होता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक ये तीनों ही सम्यक्त्वसहित जीव चतुर्थ गुणस्थानवर्ती कहलाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। चौथे गुणस्थानके ऊपर सम्यग्दृष्टि जीव ही होते हैं। तथा सम्यग्दर्शनके सद्भावसे ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान हो जाता है। यहां इतना विशेष है कि, प्रथमोपशम तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थानसे सातवें गुणस्थान पर्यन्त ही होते हैं। और क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति चौथे पांचवें छट्ठे सातवें इनमेंसे किसी एकमें होती है।

सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेके पश्चात कोई जीव प्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे हिंसादिक पांच पापोंका सर्वथा त्याग करनेमें असमर्थ होकर उनका एकदेशत्याग करके श्रावकके व्रतोंको धारण करता हुआ देशविरत संज्ञक पंचम गुणस्थानवर्ती होता है। तथा जिस जीवके प्रत्याख्यानावरण कषायका उपशम हो जाता है और संज्वलन और नोकषायरूप ❀चारित्र मोहनीय कर्मका मंद उदय होता है, वह चौथे अथवा पांचवें गुणस्थानको त्यागकर हिंसादिक पंचपापोंको सर्वथा छोड अप्रमत्त संज्ञक सातवें गुणस्थानको धारण करता है। पश्चात संज्वलन तथा नो कषाय के तीव्र उदयसे विकथादिक प्रमादोंको प्राप्त होकर प्रमत्त संज्ञक छठे स्थानमें पदार्पण करता है।

छठे और सातवें इन दोनों ही गुणस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र है। और इस दोनों ही गुणस्थानोंको यह जीव अनेक बार छोडता तथा ग्रहण करता है। जब तक सातवें गुणस्थानमें से यह जीव छठे गुणस्थानको जाया करता है तब तक उस सातवें गुणस्थानको स्वस्थानअप्रमत्त कहते हैं और जब यह जीव श्रेणी चढनेको सन्मुख होता है, तब इस गुणस्थानको सातिशयअप्रमत्त कहते हैं श्रेणी

(❀) चारित्र मोहनीय कर्मके २५ भेद हैं। जिनमेंसे अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्वरूपाचरण चारित्रके घातक हैं। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक ४ देश चारित्रके घातक हैं। प्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक ४ सकल चारित्रके घातक हैं। संज्वलन क्रोधादिक ४ तथा हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री पुरुष नपुंसक वेद ९ सब मिलकर १३ यथाख्यात चारित्रके घातक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दका अर्थ नसेनी है यहां उपमार्थमें श्रेणी शब्दका ग्रहण है। अर्थात् मोक्षरूपी महलके शिखरपर चढनेके लिये जो नसेनीका काम देवे, उसे श्रेणि कहते हैं। अष्टकर्मोंका सरदार मोहनीय कर्म्म है। मोहनीय कर्म्मका नाश किये विना शेष सात कर्मोंका नाश नहीं होता।

इसलिये सबसे पहले मोहनीय कर्म्म नाश किया जाता है इस मोहनीय कर्म्मके २८ भेद हैं। जिनमेंसे दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृति और चारित्र मोहनीयकी अनंतानुबन्धी क्रोधादिक चार इस प्रकार ७ प्रकृति सम्यग्दर्शनका घात करती हैं। शेष चारित्र मोहनीयकी २१ प्रकृति चारित्रका घातक हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्क मुख्यतया स्वरूपाचरण चारित्रकी घातक हैं, परन्तु उपचारसे स्वरूपाचरण चारित्रके अविनाभावी सम्यग्दर्शनका घातक है। प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टी श्रेणी चढनेका अधिकारी नहीं है, और वेदक सम्यग्दृष्टी श्रेणी चढनेसे पहले अनन्तानुबंधी चतुष्कका विसंयोजन करके दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टी होता है। अथवा उन तीनोंका उपशम करके द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी होता है।

श्रेणीके दो भेद हैं—एक उपशम श्रेणी और दूसरी क्षपक श्रेणी जिसमें चारित्र मोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका उपशम किया जाय, उसको उपशम श्रेणी कहते हैं और जिसमें उक्त २१ प्रकृतियोंका क्षय किया जाय, उसको क्षपक श्रेणी कहते हैं। श्रेणीका प्रारम्भ आठवें गुणस्थान से होता है। सातिशय अप्रमत्तमें श्रेणीके सम्मुख अवस्था है। दसवें गुणस्थानके अन्तमें उपशम श्रेणीवाला २१ प्रकृतियोंका उपशम कर चुकता है, और क्षपकश्रेणीवाला क्षय कर चुकता है।

इसके पश्चात् चारित्र मोहनीय कर्म्मकी उपशांत अवस्थाको भोगने वाले जीवको उपशांतकषाय संज्ञक ग्यारहवें गुणस्थानका धारक कहते हैं। और क्षय अवस्थाको भोगनेवाले जीवको क्षीणमोह संज्ञक बारहवें गुणस्थानका धारक कहते हैं। इन दोनों गुणस्थानवाले जीवोंकी विशुद्धतामें कुछ भी अन्तर नहीं है।

केवल इतना विशेष है कि, ग्यारहवीं गुणस्थानवाला जीव अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानसे च्युत होकर नीचेके गुणस्थानोंमें आता है और बारहवें गुण स्थानवाला अपने स्थानसे नीचे न गिरकर ऊंचा चढता हुआ नियमसे मोक्षको जाता है। ये दोनों ही गुणस्थानवाले समस्त कषायोंके अभावसे वीतराग छद्मस्थ कहलाते हैं।

क्षायिक सम्यग्दृष्टी जीव उपशम और क्षपक दोनों ही श्रेणी चढ सकता है, किंतु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी केवल उपशम श्रेणी ही चढ सकता है क्षपक श्रेणी नहीं चढता क्षपकश्रेणी चढनेका अधिकार केवल क्षायिकसमम्यग्दृष्टीको ही है।

चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंको उपशमावने तथा क्षपावनेके लिये यह जीव अधःप्रवृत्तकरण अपूर्वकरण और अनिवृत्तकरण संज्ञक तीन करणोंको करता है। उनमेंसे अधःप्रवृत्तकरण सातवें, अपूर्वकरण आठवें, और अनिवृत्तकरण नवमें गुणस्थानमें होता है। करण नाम परिणामोंका है। इन परिणामोंके प्रति समय अनंतगुणी विशुद्धता होती जाती है, जिससे कर्मोंका उपशम तथा क्षय और स्थिति खंडन तथा अनुभागखंडन होते हैं। इन तीनों करणोंका काल यद्यपि सामान्यालापसे अन्तर्मुहूर्त मात्र है, तथापि अधःकरणके कालके संख्यातवें भाग अपूर्ण करणका काल है। अपूर्व करण कालके संख्यातवें भाग अनिवृत्तकरण का काल है। अधकरणके परिणाम असख्यातलोकप्रमाण हैं।

अपूर्वकरणके परिणाम अधःकरणके परिणामोंसे असंख्यातलोकगुणित हैं और अनिवृत्तकरणके कालके जितने समय हैं उतने ही उसके परिणाम हैं। इन सबका खुलासा अंक संदृष्टिद्वारा कहते हैं:—

कल्पना करो कि अधःकरणके कालके समयोंका प्रमाण १६ अपूर्वकरणके कालके समयोंका प्रमाण ८ और अनिवृत्तकरणके कालके समयोंका प्रमाण ४ है। अधःकरणके परिणामोंकी संख्या ३०७२, अपूर्वकरणके परिणामोंकी संख्या ४०९६, और अनिवृत्तकरणके परणामोंकी संख्या ४ है। एक समयमें एक जीवके एक परिणाम होता है, इसलिये एक जीव अधःकरणके १६ परिणामोंको ही धारण कर सकता है।

अधःकरणके परिणाम जो १६ से अधिक कहे हैं वे नाना जीवोंकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपेक्षासे कहे हैं। यहां इतना विशेष है कि अधःकरणके १६ समयोंमेंसे प्रथम समयमें यदि कोई भी जीव अधःकरण मांडेगा तो उसके अधःकरणके समस्त परिणामोंमेंसे पहले १६२ परिणामोंमेंसे कोई एक परिणाम होगा। अर्थात् तीन कालमें चाहे जब चाहे जो जब कभी, अधःकरण मांडेगा, तो उसके पहले समय में नंबर १ से लगाकर नंबर १६२ तक के परिणामोंमेंसे उसकी योग्यता अनुसार कोई एक परिणाम होगा।

इस ही प्रकार किसी भी जीवके उसके अधःकरण मांडनेके दूसरे समयमें नंबर ४० से लगाकर नंबर २०५ तक १६६ परिणामोंमेंसे कोई एक परिणाम होगा। इस ही प्रकार आगेके समयोंमें भी मेरे हाथमें जो यह यंत्र है देखो पृष्ठ १६८ इसके अनुसार जानलेना चाहिये कि अधःकरणके अपुनरुक्त परिणाम केवल ६१२ हैं, और समस्त समयोंमें संभव पुनरुक्त और अपुनरुक्त परिणामोंका जोड ३०७२ है।

इस अधःकरणके परिणाम चय (समानवृद्धि) वर्द्धित है। अर्थात् पहले समयके परिणामसे द्वितीय समयके परिणाम जितने अधिक हैं उतने ही उतने द्वितीयादिक समयोंके परिणामोंसे तृतीयादिक समयोंके परिणाम अधिक हैं।

इस दृष्टांतमें चयका प्रमाण ४ है, स्थानका प्रमाण १६ और सर्व धनका प्रमाण ३०७२ है। प्रथम स्थान में वृद्धिका अभाव है, इसलिये अंतिम स्थानमें एक घाटि पद (स्थान) प्रमाण चयवर्धित हैं। एक घाटि पदके आधेको चय और पदसे गुणा करने से $\frac{१५ \times ४ \times १६}{२}$ ४८० चय धनका प्रमाण होता है।

भावार्थ-प्रथम समय के समान समस्त समयोंमें परिणामोंको भिन्न समझकर वर्धित प्रमाणके जोडको चयधन वा उत्तरधन कहते हैं। सर्व धनमेंसे चयधनको घटाकर शेषमें पदका भाग देनेसे प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंजका प्रमाण $\frac{३०७२ - ४८०}{१६} = १६२$ होता है। इसमें क्रम से एक एक चय जोडने से द्वितीयादिक समयोंके परिणाम पुंजका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाण होता है। एक घाटिपद प्रमाण चय मिलने से अन्त समय सम्बन्धीपरिणाम पुंजका प्रमाण १६२+१५×४ = २२२ होता है।

एक समयमें अनेक परिणामोंकी संभावना है इसलिये एक समयमें अनेक जीव अनेक परिणामोंको ग्रहण कर सकते हैं। अतएव एक समयमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे परिणामों में विसदृशता है। एक समयमें अनेक जीव एक ही परिणामको ग्रहण कर सकते हैं, इसलिये एक समयमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे परिणामोंमें सदृशता है।

भिन्न समयोंमें अनेक जीव अनेक परिणामोंको ग्रहण कर सकते हैं, इसलिये भिन्न समयोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे परिणामोंमें विसदृशता है। जो परिणाम किसी एक जीवके प्रथम समयमें हो सकता है, वही किसी जीवके दूसरे समयमें, किसी तीसरे जीवके तीसरे समयमें और किसी चौथे जीवके चौथे समयमें होसकता है। जैसे कि १६२ नम्बरके परिणामकी प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ समयमें सम्भावना है।

इतना कहकर मुनिराजने एक पत्रपर लिखा हुआ यंत्र सबको दिखलाया:—देखो पृष्ठ १६८

इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर पूर्वाचार्योंने अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण इस प्रकार कहा है:—

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिम भावेहि सरिसगा होंति।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तेति णिद्दिट्ठं॥

अर्थात्—क्योंकि इस करणमें उपरितन और अधस्तन [ऊपर और नीचेके] समय संबंधी परिणामोंमें सदृशता होती है, इस लिये इस करणका नाम अधःप्रवृत्तकरण कहा है इस अधकरणमें रचनाका अभिप्राय ऐसा है कि ऊपर और नीचेके समय संबंधी परिणामोंमें जितने समय तक सदृशताकी संभावना है, उतने ही उतने खंड समस्त समय संबंधी परिणामोंके किये गये हैं। और उनमेंसे प्रत्येक खण्डमें परिणामों की संख्या इतनी इतनी है कि जितने जितने परिणाम क्रमसे अनंतर अनंतर समयों में सदृश हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रिणाशोंकी संख्या और नंबर।	अनुकृष्टि रचना।			
२२२	५४	५५	५६	५७
नं. ६९१—९१२	६९१-७४४	७४५-७९९	८००-८५५	८५६-९१२
२१८	५३	५४	५५	५६
नं. ६३८—८५५	६३८-६९०	६९१-७४४	७४५-७९९	८००-८८५
२१४	५२	५३	५४	५५
५८६—७९९	५८६-६३७	६३८-६९०	६९१-७४४	७४५-७९९
२१०	५१	५२	५३	५४
५३५—७४४	५३५-५८५	५८६-६३७	६३८-६९०	६९१-७४४
२०६	५०	५१	५२	५३
४८५—६९०	४८५-५३४	५३५-५८५	५८५-६३७	६३८-६९०
२०२	४९	५०	५१	५२
४३६—६३७	४३६-४८४	४८५-५३४	५३५-५८५	५८६-६३७
१९८	४८	४९	५०	५१
३८८—५८५	३८८-४३५	४३६-४८४	४८५-५३४	५३५-५८५
१९४	४७	४८	४९	५०
३४१—५३४	३४१-३८७	३८८-४३५	४३६-४८४	४८५-५३४
१९०	४६	४७	४८	४९
२९५—४८४	२९५-३४०	३४१-३८७	३८८-४३५	४३६-४८४
१८६	४५	४६	४७	४८
२५०—४३५	२५०-२९४	२९५-३४०	३४१-३८७	३८८-४३५
१८२	४४	४५	४६	४७
२०६—३८७	२०६-२४९	२५०-२९४	२९५-३४०	३४१-३८७
१७८	४३	४४	४५	४६
१६३—३४०	१६३-२०५	२०६-२४९	२५०-२९४	२९५-३४०
१७४	४२	४३	४४	४५
१२१—२९४	१२१-१६२	१६३-२०५	२०६-२४९	२५०-२९४
१७०	४१	४२	४३	४४
८०—२४९	८०-१२०	१२१-१६२	१६३-२०५	२०६-२४९
१६६	४०	४१	४२	४३
नं. ४०—२०५	४०-७९	८०-१२०	१२१-१६२	१६३-२०५
१६२	३९	४०	४१	४२
नं १—१६२	१-३८	४०-७९	८०-१२०	१२१-१६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–जैसे प्रथम समय संबंधी परिणामपुंज १६२ के ३६,४०, ४१ और ४२ ये चार खण्ड इस क्रमसे किये गये हैं कि, नंबर १-३६ तक ३६ ऐसे परिणाम हैं जो ऊपर किसी भी समयमें नहीं पाए जाते, इतने ही परिणामपुंजका नाम प्रथम खण्ड है। दूसरे खण्डमें नंबर ४० –७६ तक ४० परिणाम ऐसे हैं, जो प्रथम और द्वितीय दोनों समयों में पाये जाते हैं। तीसरे खण्डमें नंबर ८०–१२० तक ४१ परिणाम ऐसे हैं जो प्रथम द्वितीय और तृतिय इन तीनों समयोंमें पाये जाते हैं। और चतुर्थ खण्डमें नंबर १२१–१६२ तक ४२ परिणाम ऐसे हैं, जो प्रथम द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ इन चारों समयोंमें पाये जाते हैं इस ही प्रकार अन्य समयोंमें भी जानना। अधःकरणके ये समस्त परिणाम ऊपर पूर्व पूर्व परिणामसे उत्तर २ परिणाम अनंत अनंत गुणी विशुद्धता लिये हुए हैं।

जिस प्रकार अःधकरणमें ऊपर और नींचेके समय संबंधी परिणामोंमें सदृशता पाई जाती है, उसी प्रकार अपूर्वकरणके परिणामोंमें सदृशता नहीं पाई जाती। किन्तु प्रति समय अपूर्व अपूर्व ही परिणाम होते हैं इस ही लिये इस करणका नाम अपूर्वकरण है। अर्थात् ऐसे परिणाम पहले संसार अवस्थामें कदापि नहीं हुए थे: अंकसंदृष्टिसे अपूर्व करणकी रचना इस प्रकार है—

नंबर समय।	परिणामोंकी संख्या।	परिणामों के नंबर।
८	५६८	३५२६–४०६६
७	५५२	२६७५–३५२८
६	५३६	२४४१–२६७६
५	५२०	१६२१–२४४०
४	५०४	१४१७–१६२०
३	४८८	६२६–१४१६
२	४७२	४५७—६२८
१	४५६	१—४५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वथा जोड—४०९६ होता है।

इस यंत्रमें सर्वधन ४०९६ चयका प्रमाण १६ स्थानका प्रमान ८ हैं।

चय धन का प्रमाण $\frac{७\times१६\times८}{२} = ४४८$। प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम पुंजका $\frac{४०९६-४४८}{८} = ४५६$ है। एक एक चय जोडने से द्वितीयादिक समय सम्बन्धी परिणामपुंजका प्रमाण होता है। एक घटि पद प्रमाण चय जोडने से अन्त समय सम्बन्धी परिणाम पुंजका प्रमाण ४५६+७× १६=. ५६८ होता है। इस यन्त्र से सर्वथा स्पष्ट है कि, एक समयमें अनेक परिणामोंकी सम्भावना होनेसे अनेक जीव अनेक तथा एक परिणामको ग्रहण कर सकते हैं। इसलिये एक समय में नाना जीवों की अपेक्षा से सदृशता तथा विसदृशता दोनों हो सकती है। किन्तु जो परिणाम निम्न समय में सम्भव है, वे परिणाम ऊपर के समय में कदापि सम्भव नहीं है। इसलिये निम्न समयोंमें नानाजीवोंकी अपेक्षा विसदृशता ही है, सदृशता नहीं है।

जिस प्रकार नाना जीवोंके एक समयमें संस्थानादिककी अपेक्षासे भेद हैं, उसी प्रकार एक समयमें नाना जीवोंके परिणामोंमें जहां भेद नहीं हो, उसे अनिवृत्तकरण कहते हैं। उसकी अंकसंदृष्टिसे रचना इस प्रकार है:—

नंबर	समय	परिणाम संख्या	परिणाम नंबर
४		१	४
३		१	३
२		१	२
१		१	१

भावार्थ-इसके अनिवृत्तकरणके कालके ४ समय हैं। और चार ही इसके समस्त परिणामोंका प्रमाण है इसलिये एक समयमें एक ही परिणाम है। अतएव एक समयमें अनेक जीवोंका परिणाम सदृश ही होते हैं। विसदृश नहीं होते। तथा भिन्न समयोंमें विसदृश होते हैं, सदृश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं होते जिस प्रकार यह स्वरूप दृष्टान्तद्वारा कहा है, उस ही प्रकार यथार्थमें लगा लेना चाहिये दृष्टान्तको ही यथार्थ न समझ लेना चाहिये इस प्रकार नववें गुणस्थानका स्वरूप कहकर अब आगे दशवें गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं।

अनेक प्रकार अनुभागशक्तिको धारण करनेवाली कर्मवर्गणाओंके समूहको स्पर्द्धक कहते हैं। नववें गुणस्थानसे पहले संसार अवस्थामें जो स्पर्द्धक पाये जाते हैं, उनको पूर्व स्पर्द्धक कहते हैं। अनिवृत्तकरणके परिणामोंसे जिनका अनुभाग क्षीण हो गया है, उनको अपूर्व स्पर्द्धक कहते हैं।

इस ही प्रकार अनिवृत्तकरनके परिणामोंसे जिनका अनुभाग अपूर्व-स्पर्द्धकसे भी क्षीणतर हो गया है, उसको वादरकृष्टि कहते हैं। तथा जिनका अनुभाग वादरकृष्टिसे भी क्षीनतर हो गया है, उसको सूक्ष्म-कृष्टि कहते हैं। तीन करणके परिणामोंसे क्रमसे लोभकषायके विना चारित्र मोहनीयकी शेष वीस प्रकृतियोंका उपशम अथवा क्षय होनेपर सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त लोभ कषायके उदयको अनुभव करते हुए जीवके सूक्ष्मसांपराय संज्ञक दशवां गुणस्थान होता है। ग्यारहवें और वारहवें गुणस्थानके स्वरूप पहले कह चुके हैं। अव आगे तेरहवें गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं।

इस जीवके अनादिबद्ध अष्टकर्मोंकी १४८ प्रकृति हैं। उनमेंसे तद्भवमोक्षगामी जीवके नरक तिर्यंच और देव आयु इन तीन प्रकृतियोंकी सत्ता ही नहीं होती है। जिस कालमें यह जीव क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त होता है, तब पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंका क्षय कर लेता है। इस प्रकार तद्भवमोक्षगामी जीवके सातवें गुणस्थानके अन्तमें दश प्रकृतियोंकी सत्ता नष्ट हो गई, तथा नववें गुणस्थानमें ३६ प्रकृतियों का नाश करके दषवें गुणस्थान लोभप्रकृतिका नाश पूर्वक बारहवें गुणस्थान के अन्तमें १६ प्रकृतियोंका नाश करता हैं।

इस प्रकार चार घातिया कर्मोंकी ४७ और अघातिया कर्मोंकी १६ कुल मिलकर ६३ प्रकृतियोंके नाशसे इस जीवके केवलज्ञानकी उत्पत्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है तथा योगोंका इसके सद्भाव है। इस कारण यह जीव सयोग-केवली संज्ञक तेरहवें गुणस्थानवर्ती कहलाता है।

इस तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीवको सकलपरमात्मा तथा अर्हंत कहते हैं। इनके अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनतसुख और अनंतवीर्यरूप अनन्तचतुष्टय प्रगट होते हैं। ये अपनी दिव्यध्वनिद्वारा भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देकर संसारमें मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति करते हैं।

यहां इस जीवके मोक्षके कारणभूत सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी तो पूर्णता हो गई है, परन्तु कषायोंका सर्वथा नाश होने पर भी योगोंका सद्भाव होनेसे योग और कषायके अभावस्वरूप चारित्रकी पूर्णता नहीं हुई है। इस ही कारण अभी मोक्षभी नहीं हुई है। मूल शरीरको बिना छोंडे आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलनेका नाम समुद्घात है।

उस समुद्घातके सात भेद हैं। १—वेदनासमुद्घात २—कषायसमुद्घात, ३—आहारकसमुद्घात, ४—वैक्रियिकससुद्घात, ५—मारणांतिकसमुद्घात, ६—तैजससमुद्घात और ७—केवलिसमुद्घात। वेदनाके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेका नाम वेदनासमुद्घात है। कषायके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलनेका नाम कषायसमुद्घात है।

छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके शंका उत्पन्न होने पर जो आहारक शरीरका पुतला मस्तकमेंसे निकलकर केवलीके निकट शंका दूर करनेको जाता है, उसके साथ आत्म प्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलनेका नाम आहारकसमुद्घात है। देवादिक अनेक शरीर धारणादिक रूप जो विक्रिया करते हैं, उसके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंका शरीरसे निकलनेका नाम वैक्रियकसमुद्घात है। मरणसे पहले उत्पत्तिस्थानको स्पर्श करनेके लिये आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलनेका नाम मारणांतिकसमुद्घात है। शुभाशुभ तैजसशरीरके साथ आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेका नाम तैजससमुद्घात है।

तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीवके आयुकर्मकी स्थितिसे शेष कर्मोंकी स्थिति जब होनाधिक होती है, तब उन सब कर्मोंकी स्थिति समान कर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेके लिये केवलिसमुद्घात करता है। इस केवलिसमुद्घातके चार भेद हैं—दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूर्ण। प्रथम समयमें आत्माके प्रदेश चौदह राजू ऊंचे तथा शरीरकी चौडाईके प्रमाण व्यासवाले गोल दण्डाकार हो जाते हैं। इसको दण्डकेवलि समुद्घात कहते हैं।

दूसरे समयमें जब आत्माके प्रदेश पूर्व पश्चिम अथवा उत्तर और दक्षिण दिशामें लोकांतको स्पर्श करैं और चौडाईमें शरीरकी चौडाईके प्रमाण हों, ऐसी अवस्थाको कपाटसमुद्घात कहते हैं वातवलयके विना समस्त लोकमें जब तीसरे समय आत्मप्रदेश व्याप्त हो जाते हैं, ऐसी अवस्थाको प्रतरसमुद्घात कहते हैं। चौथे समयमें जब आत्माके प्रदेश वातवलय सहित समस्त लोकमें व्याप्त हो जाते हैं, ऐसी अवस्थाको लोकपूर्णसमुद्घात कहते हैं। इसके पश्चात् पुनः पाचवें समयमें आत्माके प्रदेश प्रतररूप होते हैं। छठे समयमें कपाटरूप, सातवें समयमें दण्डरूप और आठवें समयमें पुनः शरीराकार हो जाते हैं।

इस प्रकार केवली समुद्घात करनेके पश्चात् अपने गुणस्थानके अन्तमें योगोंका निरोध करके अयोगकेवली संज्ञक चौदहवें गुणस्थानको प्राप्त होता है। इस गुणस्थानका काल "अ इ उ ऋ लृ" इन पांच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारण कालके समान है। इस गुणस्थानके उपान्त समयमें ७२ और अन्त समयमें १३ इस प्रकार ८५ प्रकृतियोंका नाश करके ऊर्ध्वगमन स्वभावसे मोक्षधामको प्रस्थान करता है।

इस व्याख्यानके समाप्त होनेपर उस दिनकी सभा विसर्जन की गई।

सत्रहवां पर्व।

जब तक जयदेव कंचनपुरमें रहा, तबतक हीरालाल अपनी सम्पत्ति आदिके विषयमें चूं तक न कर सका। यद्यपि संसारमें यही प्रसिद्ध था कि, रतनचन्दका उत्तराधिकारी हीरालाल है, परन्तु अपने उस दिनके दुराचारसे वह इतना डरपोक होगया था कि अपनी दूकानमें भी जानेका साहस नहीं कर सकता था। उस दुर्दिनके पश्चात् जिस दिन कि, जय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवने रामकुंवरिके साथ उसे रिहाई दी थी, चार छह दिन तो वह कुछ स्मशानवैराग्यके समान विरक्त तथा उदास रहा था, परन्तु पीछे पापिनी रामकुंवरिकी छेडछाडसे तथा सम्पत्ति आदिके प्राप्त करनेकी चिन्ताओंसे वह अपने दुष्कृत्योंको भूल गया। उसके हृदयपर थोडी बहुत पश्चात्तापकी रेखा थी, ज्यों २ दिन बीते, वह भी विलीन हो गई।

उसी समय एक दो दर्शनीय मित्रभी जैसे कि पापियोंको प्रायः मिल जाया करते हैं, हीरालालको आ मिले। उन्होंने चार ही छह दिनमें अपनी वाक्यटुतासे आशाके बडे २ दृश्य दिखलाकर हीरालालको चेला बना लिया और उसके अन्तरङ्गकी सब बातें पूछ लीं। उनकी दर्शनीय मित्रताके प्रबल प्रवाहमें हीरालालने अपने अपयशके भयको निःशङ्क बहा दिया। उसे इस बातका भान भी न रहा कि, यदि ये लोग मुझसे विरुद्ध हो जावेगें, तो मैं मुंह दिखानेके योग्य भी न रहूंगा।

जयदेवकी दृष्टि बहुत विस्तृत थी। वह बहुत दूर तक देखता था और तदनुसार बहुत दूरतक विचारता भी था। हीरालालको एक दो बार उक्त मित्रोंके साथ बैठा देखकर वह समझ गया कि, इन लोगोंके द्वारा कोई अघटित घटना अवश्य होगी। और इसी लिये गुप्तरूपसे वह उनकी गतिपर ध्यान रखने लगा। एक रात्रिको रामकुंवरि हीरालाल और उसके मित्रोंकी गुप्तमंत्रणा हुई कि, जयदेवको यमालय पहुंचाये विना हम लोगोंका कार्य सिद्ध न होगा, इस लिये उसको शीघ्र खपा डालनेका कोई प्रयत्न करना चाहिये। दूसरे दिन सबेरे ही जयदेवके गुप्तचरने उसे इस मंत्रणाका समाचार सुनाया। और उसे सुनकर जयदेवने जो कुछ किया, सो पहले कहा जा चुका है।

जयदेवके चले जाने पर हीरालालको इस बातकी प्रसन्नता हुई कि, अब मुझे अपनी सम्पत्तिका अधिकार मिल जावेगा। यद्यपि वह यह जानता था कि जयदेव मुझे दूकानके प्रबन्ध करनेके अयोग्य ठहरा गया है, इसलिये तत्काल ही मुझे अपना अधिकार नहीं मिलेगा। परन्तु उसे यह आशा अवश्य थी कि आज नहीं, चार छह महीने पीछे आखिर मैं उसे प्राप्त कर ही लूंगा। सर्वथा ही अधिकारच्युत कर दिया जाऊंगा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसका उसे स्वप्नमें भी ध्यान नही था। क्योंकि उसे यह विश्वास था कि जयदेवके सिवाय मेरा दुष्कृत्य अन्य कोई नहीं जानता है। और वह अपनी सज्जनताके कारण मेरे दोषोंको अपने साथ ही ले गया होगा।

वसीयतनामा भी उसीके नामका था, इसलिये उसका भी अब कुछ भय नहीं रहा। क्योंकि अब वह वापिस नहीं आवेगा। वह बडा ही निष्पृह तथा निर्लोभी पुरुष था। द्रव्य प्राप्ति की लालसा उसमें कभी थी ही नहीं। इसलिये या तो वसीयतनामाको वह फाड चीरके फेंक गया होगा, अथवा अपने साथ ही लिये गया होगा।

इस प्रकारके मनोरथके घोडे दौडते हुए हीरालालने उस दिन जब कि सारा नगर जयदेवके शोकमें व्याकुल हो रहा था, बडी खुशी मनाई और अपनी मित्रमण्डलीका उस दिन खूब सत्कार किया।

इस खुशीकी चहलपहल कई दिन तक रही। मित्रोंकी मिजवानीमें नाचरंगमें और यहां वहांके खुशामतखोरोंको पारितोषिक देनेमें हीरालालने सैकडों रुपये फूंक दिये। यद्यपि उसके पास अधिक पूंजी नहीं थी। जो कुछ जयदेवने निर्वाहके लिये दिया था, वही था। परन्तु सारी सम्पत्तिका अधिकार मिलनेकी आशामें इसका उसे कुछ खयाल ही नहीं रहा। रामकुंवरि भी इसी आनन्दमें मग्न थी। स्त्रियोंको जेवर प्राणसे भी प्यारा होता है परंतु उसने उस समय हीरालालसे कह दिया कि, जरूरत हो तो इसे भी काममें ले आना।

हीरालालके पास जो कुछ द्रव्य था, वह खर्च हो चुका। नवीन आमदनीका कुछ ठिकाना नहीं था। परन्तु मित्रमण्डली बढती जाती थी, और साथ २ खर्चके नवीन २ द्वार भी खुलते जाते थे। यद्यपि भावी अधिकारकी प्राप्तिकी प्रसन्नतामें हीरालालको वह खर्च एक सामान्य बात मालूम पड़ती थी, परंतु उस सरीखी आशा अन्य लोगोंके नहीं थी। इसलिये प्रतिष्ठित महाजनोंकी तो बात ही क्या, साधारण दूकानदार भी उसके साथ कागजी लेन देन करनेको हिचकते थे। सब ही "आज नगद कल उधार" का व्यवहार रखते थे।

सारांश यह कि, विना नकदीके हीरालालको बाजारमें एक पैसेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी वस्तु नहीं मिलती थीं। एक दिन किसी राजकीय कर्मचारीकी सम्भावना करनेके लिये हीरालालको रुपयोंकी आवश्यक्ता हुई। परन्तु घरमें रुपये नहीं थे। सिवाय जेवरके कोई ऐसी वस्तु भी नहीं थी, जिसे बेचकर काम चलाया जाय। लाचार वह जेवर बेचनेके लिये ही तैयार हुआ। यद्यपि रामकुंवरिने अपने अलंकार देनेके लिये कह दिया था, परन्तु हीरालालका साहस नहीं हुआ कि, उससे विक्रीके लिये जेवर मांगे। क्योंकि निरन्तर ही उसे यह भय लगा रहता था कि, कहीं रामकुंवरि अप्रसन्न न हो जावे।

केवल प्रेमपिपासाकी पूर्तिके लिये ही वह रामकुंवरिको प्रसन्न रखनेके प्रयत्नमें नहीं रहता था। किन्तु दूकानका अधिकार पानेमें भी वह रामकुंवरिको एक बडा भारी साधन समझता था। क्योंकि रामकुंवरिकी स्वीकारताके विना उसके पतिकी जायदादका सम्पूर्ण अधिकारी हीरालाल नहीं हो सकता था।

उन दिनों हीरालालकी परिणीता स्त्री सुभद्रा कंचनपुरमें ही थी। जयदेवने उसे इसलिये बुलवाया था कि, शायद उसके संसर्गमें हीरालाल सुधर जावेगा। यद्यपि सुभद्रा ऐसी बुद्धिमान और रूपवान स्त्री थी कि, हीरालालको सदाचारी बना लेना उसके लिये कोई कठिन कार्य नहीं था। परन्तु रामकुंवरिकी कृपासे तथा और भी अनेक कुत्सित पुरुषोंकी संगतिके प्रतापसे उसे अपने पतिसंसर्गका बहुत कम सौभाग्य प्राप्त होता था।

वह बहुत प्रयत्न करती थीं कि, कभी पतिसे एकांतमें वार्तालाप करनेका अवसर प्राप्त हो, परन्तु रामकुंवरिके षडयन्त्रके कारण वह बहुधा उससे वंचित रहती थी। कभी २ तो उसे दर्शनोंका भी लाभ नहीं होता था।

जब तक कंचनपुरमें जयदेव रहा, तब तक हीरालाल सुभद्रासे मिलता था, और रामकुंवरि भी उसके इस कार्यमें बाधा नहीं डाल सकती थी। वरन्तु जबसे उसने कंचनपुर छोडा, तबसे तो सुभद्राका भाग्य सर्वथा ही फूट गया। रातदिन एकांतमें बैठी हुई वह अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाग्यपर रोती थी, और अपने सुकोमल सुन्दर शरीरको इस विषय-वेदनाकी अग्निमें झुलसाती रहती थी।

सावनका महीना है। रात्रिके बारह बज चुके हैं। पानी रिमझम २ बरस रहा है। अन्धकारका अटल अधिकार हो रहा है। कभी कभी चंचला चमककर संसारकी क्षणभंगुरताका ज्ञान करा रही है। सडकों पर आवागमन सर्वथा बन्द है। सारा नगर घोर निद्रामें मग्न हो रहा है कहीं कहीं संयोगी नायक नायिकाओंके प्रणयकलहकी विनय अनुनयों की घुसफुस सुनाई देती है। परन्तु इतनी अस्पष्ट कि मकानोंकी दीवालों से कान लगाये बिना उनका कुछ अर्थ भान नहीं होता। वियोगी नायक करवटें बदल रहे हैं। और नायिकायें मेघोंको, मयूरोंको, झिल्लियोंको जिनके शब्द सुनती हैं, उन्हींको कोस रही हैं। गलियां कर्दममय और मुख्य मार्ग जलमय हो रहे हैं।

ऐसे समयमें घरसे निकलना सबका काम नहीं है। तो भी "मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखं' की उक्तिके अनुसार एक अज्ञातपुरुष एक बडे भारी कम्बलसे अपने शरीको छुपाये हुए रतनचन्द्र जौहरीकी हवेलीके पास पहुंचा, और पश्चिमकी ओर गलीं में जाकर एक खिडकीके नीचे भीतके सहारे खडा हो गया। खिडकीमें से एक टिमटिमाते हुए दीपका प्रकाश बाहर आता था। खिडकी जमीनसे इतनी ऊंची थी कि, मनुष्य खडा होकर उसमेंसे भीतरका दृश्य कठिनाईसे देख सकता था। उसमें लोहेके सींकचे लगे हुए थे। खिडकीके पास ही एक दरवाजा था, जिसके किवाड बन्द थे।

भीतर एक युवा पलंगपर बैठा हुआ है। और एक अबला उसके पैरोंसे लपट रही है। युवा अपने हाथोंसे निवारण करना चाहता है, परन्तु अबला पैर नहीं छोडती है। उसके नेत्रोंसे अविरल आंसुओंकी धारा बह रही है. जिससे युवाके पैरोंका अभिषेक हो रहा है। अबला कह रही है कि, "प्राणेश्वर! दासी और कुछ नहीं चाहती है। रातदिन २४ घन्टोंमे केवल एक वार दर्शन चाहती है। परंतु हाय! आप उसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी कंजूसी करते हैं । अब कुछ दिनसे उसकी भी प्राप्ति दुर्लभ हो गई है।

मैं मानती हूं कि, आपको कुमार्गमें जाते हुए रोककर बुरी संगतिके दोष दिखाकर मैंने एक अपराध किया है, आपके हृदयको दुःख पहुंचाया है, परन्तु जीवनधन ! इतना वह अपराध इतना बडा नहीं है, जिसपर मुझे यह दण्ड दिया जावे ? यद्यपि स्वामिकार्यमें बाधा उपस्थित करना सेविकाका कर्तव्य नहीं है, तथापि यदि वह कार्य देखकर दोषास्पद हो तो उसका निवारण करना अपराध भी नहीं गिना जा सकता। इसके सिवाय नाथ ! मैं आपकी अर्धाङ्गिनी हूं। नीतिके अनुसार आपके संपूर्ण सुखदुःख तथा पाप और पुण्यकी भागिनी हूं।

इसलिये विचार कीजिये कि आपको उन्मार्गमें जाते हुए देखकर आपकी तथा आपके कुलकी कीर्तिपर कालिमा फिरते हुए देखकर और अपने सुखसौभाग्यको नष्ट होते देखकर मैं कैसे चुप रहूं ? मैं बहुत चाहती हूं कि आपसे इस विषयमें कुछ भी नहीं कहूं, क्योंकि इससे लाभके स्थानमें हानि होती है, आप अधिकाधिक अप्रसन्न होते जाते हैं । परंतु क्या करूं, यह मूर्ख हृदय नहीं मानता है, और फिर भी कहनेके लिये अधीर होता है। इसे बहुत समझाया कि 'मूर्ख ! तुझे प्राणनाथके गुणदोषोंसे क्या ? उनकी आलोचना करने वाला तू कौन ? वे दूसरी हजार स्त्रियोंसे प्रसन्न रहे, और मुझपर अप्रसन्न रहे, इससे तुझे क्या ? पूर्वजन्ममें जिसने जैसे कर्म कमाये हैं, उसे उनके वैसे ही फल मिलते हैं, इसमें हर्ष विषाद क्यों ? तुझे तो उनका प्रतिबिंब स्थापित करके अहर्निश पूजन करना चाहिये, भक्ति करना चाहिये, और उसके द्वारा उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। यही तेरा कर्तव्य है।'

परन्तु जडहृदय नहीं समझता है, और वारंवार मुझे आपसे प्रार्थना करनेके लिये अधीर करता है। मेरे सच्चे उपास्य देव ! एक वार मेरी परीक्षा करके देखो, कि, आपके चरणोंमें मेरी कैसी अनन्य भक्ति है । मेरे हृदयको चीर कर देखो कि आपकी मनोमोहनी मूर्ति उसमें कैसे आदरभावसे चित्रित है और एक वार आज्ञा देकर देखो कि दासी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपके लिये किस प्रकार क्षण भरमें अपने प्राणोंका उत्सर्ग करती है।

नाथ! इतनेपर भी मैं अपने सौभाग्य सुखकी अधिकारिणी नहीं हूं, आपको प्रसन्न करनेमें समर्थ नहीं हूं, तो मेरा दुर्दैव! परंतु जीवन-सर्वस्व! एकबार यह भी तो बतलाओ कि, अन्यत्र आपको कितना सुख मिलता है? कितनी शांति मिलती है? और जिन्हे आपने सुख-शांतिका उपकरण माना है, वे आपको कितने दिन उस शान्तिका दान करता रहेगा? यदि इन प्रश्नोंका आप यथार्थ उत्तर दे देवेंगे, तो मुझे मालूम हो जावेगा कि, आगे आपका जीवन सुखशान्तिताके साथ व्यतीत होगा, तो मुझे प्रसन्नता होगा। फिर मुझे कोई चिन्ता नहीं रहेगी। आनन्दसे मैं अपनी जीवनलीला समाप्त कर दूंगा। मुझे जो कुछ चिन्ता है, वह आपके आगामी जीवनका है। मुझे सुख हुआ तो क्या? और दुःख हुआ तो क्या? उसका कुछ गिनता नहीं है।

यथार्थमें आपका सुख दुख ही मेरा सुख दुख है। और इसलिये आपको दुखके मार्गपर चलते हुए देखकर मैं अधीर हो जाती हूं। आप यदि कलसे उन्मार्ग छोडकर सुमार्गसे लग जावें, तो फिर चाहे मुझे अपनी स्नेहपात्री बनावें चाहे नहीं, मुझे कोई दुःख नहीं रहेगा। और साथ ही यदि आप दिनमें केवल एकबार दर्शन देना स्वीकार कर लेंगे तो संसारमे मैं अपने बराबर किसीको सुखी नहीं समझूंगी।

इसके पश्चात् युवतीने आंसू पोंछते हुए कहा—"नाथ! इतनी रात को आज अचानक दासी पर कृपा की यह सौभाग्यका विषय है, परंतु न जाने क्यों इस समय आपका मुख कुछ चिन्ताग्रस्त तथा उद्विग्न दिखा रहा है। यदि दासीसे कहनेमें कुछ हानि न हो तो इसका कारण कहिये

जबतक युवति उपर्युक्त बातें करती रही, तबतक युवा निस्तब्ध भावसे सुनता रहा। बाहर खडे हुए अज्ञातपुरुषके हृदयपर उस अबलाके वाक्योंका इतना असर हुआ कि, आंसू भर आये, और हृदय उमड आया। वह समझता था कि, युवाके हृदय पर भी ऐसा ही असर होगा। क्योंकि अबलाकी बातें पत्थरको भी पिघलानेवाली थीं। परन्तु यथार्थमें उस युवाके हृदय पर शतांश असर भी न हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह बोला—आजकल दूकानका अधिकार पानेके प्रयत्नसे रातदिन शरीरको चैन नहीं मिलती है। इसीसे शायद तुम्हें मेरा मुंह उदास दिखा होगा।। और कोई बात नहीं है। इस समय मुझे कुछ रुपयोंकी आवश्यकता हुई है। इसलिये तुम्हारे पास आया हूं। यदि तुम अपना गहना दे दो तो काम निकल सकता है।

सुभद्रा—जीवनधन! जब यह शरीर ही आपका है इन प्राणोंपर भी आपका अधिकार है, तब फिर तुच्छ गहना तो किस गिनतीमें है? लीजिए ले जाइये! परन्तु जीवितेश्वर! मैंने जो अनेक प्रार्थनायें कीं, उनका आपने एक भी उत्तर न दिया, एक शब्द भी नहीं कहा; जिससे आत्माको कुछ सन्तोष होता।

हाय! अरण्यमें पडे हुए अशरण्यजीवके रोदनके समान मेरी सब प्रार्थनाये विफल हुईं। वायुमण्डलमें टकराकर नष्ट हो गईं। अस्तु, मेरी उक्त बातें आपको उचित नहीं जंची तो जाने दीजिये "दूध पिला पिलाकर पाले हुए काले सांप अमृतसेवन करेंगे?" भले ही आप अपने इस विचारोंको ब्रह्मवाक्य समझिये। अब मैं आगे कभी उनकी चरचा नहीं करूंगी। आपकी जो इच्छा हो, प्रसन्नतासे कीजिये। परन्तु एकवार यह तो कह जाइये कि इस दासीको प्रतिदिन एकवार दर्शन मिला करेंगे कि नहीं?

इसके पश्चात् अबलाने फिर युवाके पैर पकड लिये और कहा, नाथ! और सब कुछ दुख सहन करनेको दासी तैयार है, परन्तु दर्शन वियोग नहीं सह सकती। एक दर्शनकी आशासे मैं इन प्राणोंको रख सकती हूं। अन्यथा निश्चय समझिये कि अब ये प्रान नहीं रहेंगे। जब प्यारेके दर्शन भी नहीं मिलेंगे, तब संसारमे रहना ही किस लिये?

हमारे पाठक समझ ही गये होंगे कि उक्त युवा और कोई नहीं, रतनचन्दके सुपूत हीरालाल हैं, और अबला उनकी स्त्री सुभद्रा है। इसलिये आगे युवा आदि सांकेतिक शब्द न लिखकर हम इन्हें हीरालाल तथा सुभद्रा ही लिखेंगे।

हीरालालका जैसा कुछ स्वभाव था, और वर्तमानमें सुभद्राकी ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसा कुछ सद्भाव था, उसके अनुसार वह सुभद्राको दो चार गालियां सुनाये बिना नहीं जाता। परन्तु सुभद्राकी बातचीत और भावभंगी ऐसी हृदयद्रावक तथा प्राणाविक थी कि उसके कारण हीरालालके विचार बदले तो नहीं, परन्तु ढीले अवश्य हो गये। और परिवर्तनके कारण वह यह कहकर चला गया कि अवकाश मिलेगा तो आया करूंगा।

गहनेका सन्दूक जो सुभद्राने लाकर रक्खा था, उसे साथ लेता गया सुभद्रा जहां तक देख सकी हीरालालकी ओर देखती रही। और पीछे किवाड लगाकर अपनी कर्मगति पर घंटों विचार करती करती सो गई।

अज्ञातपुरुष कम्बलसे शरीर छुपाये हुए हीरालालके पीछे पीछे चला गया।

यहां यह कह देना उचित होगा कि रतनचन्दकी रहनेकी हवेलीमें नीचेके एक कमरेमें जिसका कि अभी हम वर्णन कर चुके है, सुभद्रा रहती थी और हवेलीके ऊपर पूर्वकी ओरके कमरे में जिसका कि जीना पूर्वको ही था, राजकुवरि रहती थी। लोगोंके हृदय में किसी प्रकारकी शंका उत्पन्न न हो इस विचारसे जयदेवने राजकुंवरि तथा हीरालालको उक्त हवेलीमें से निकालना उचित नहीं समझा था। आज हीरालाल ऊपर रामकुंवरिके निकटसे सुभद्राके कमरेमें आया था। क्योंकि जयदेवके जानेके पश्चात् उसका और उसके मित्रोंका अड्डा रातदिन ऊपरके कमरेमें ही रहता था।

यद्यपि सुभद्रा हीरालालको समझाती थी और उसे बुरे मार्गपर चलनेसे रोकती थी तथापि हीरालाल उससे अप्रसन्न नहीं रहता था। वह रातको उसीके कमरेमें जाकर विश्राम करता था। परन्तु रामकुवरिको जब यह बात मालूम हुई कि सुभद्रा अपने पतिको अच्छा शिक्षा देती है, तब उसे अपनी मायाके नष्ट होजानेकी चिन्ता हो गई। इसलिये उसने थोडे ही दिन पीछे हीरालालके कृत्रिम मित्रोंके द्वारा एक षडयंत्र रचकर सुभद्राकी ओरसे उसका चित्त बदल दिया। और तबसे हीरालालने सुभद्राके पास जाना आना सर्वथा बन्द कर दिया। परन्तु बेचारी सुभद्रा षडयंत्रकी बातसे अज्ञात रही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अठारहवां पर्व ।

आज कंचनपुरमें बडा कोलाहल मच रहा है । जहां तहांसे लडकोंके झुंड हाथों में कंकर पत्थर लिये दौडे जा रहे हैं । प्रौढ नरनारी भी कौतुक देखनेकी लालसासे जल्दी २ कदम बढाये जा रहे हैं । दिनके ११ बजे हैं, काम समय का है, थोडा २ पानी बरस रहा है तो भी लोग इस विचित्र सम्मेलनमें शामिल होनेके लिये आकुल व्याकुल हो रहे हैं ।

बातकी बातमें राजद्वारके सम्मुख हजारों आदमियोंकी भीड इकट्ठी हो गई ! देखा, दो गधे एक विलक्षण प्रकारसे सजाये गये हैं और उनमें से एकपर एक पुरुष और दूसरेपर एक स्त्रीकी सवारी कराई गई है दोनों के सिर तत्काल ही सफाचट किये गये हैं और उनपर अतिशय काला तैल मिश्रित रंग पोतकर कलङ्कीके स्थानमें एक एक बुहारी बांध दी गई है ! वस्त्र भी दोनोंको काले पहनाये गये हैं । लोहेके बडे २ बिढंगे आभूषण पहनाकर तो दोनों को साक्षात् राक्षस ही बना दिया है । बडा ही भयावना दृश्य था । लोग देखनेके लिये टूटे पडते थे ।

थोडी देरमें यह सवारी राजमार्गपरसे अग्रसर हुई । चारों ओरसे धिक्कार ! धिक्कार ! छिः ! छिः ! के शब्दोंकी बौछार होने लगी पीछे पीछे एक विचित्र ही प्रकारके शब्द करनेवाले बाजे बजने लगे । आगे आगे कालीं धुजा पताकायें चलने लगीं, जिनपर मोटे मोटे अक्षरोंमें इस प्रकारके अनेक वाक्य लिखे हुए थे, किये हुए कर्मोंका फल, जो 'जैसा करै सो तैसा फल चाखा,' इस लोकमें पापका फल इस प्रकारसे मिलता है, "आगे भी भयंकर फल भोगने पडेगे ।" उद्दंड लडके चारों ओरसे कंकर फेंकने लगे, और आनंदमें उछल उछल कर नाना प्रकार की तुकबंदिया जोड २ कर गाने लगे । पाठकोंके विनोदके लिये उनकी एक तुकबंदीका नमूना हम यहां पर देते हैं:—

रामकुंवरि हीराका जल्सा, देखो लडको ! दौड ।
किये कर्मका मजा चखाओ, यारो ! करो न देर ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मारो कंकर मारो पत्थर, मारो कंडे ईंट।
धूल उडाओ देखो गाली गाओ वांके गीत ॥

थोडी दूर चलकर प्रौढ लोग हर्ष, विषाद, आश्चर्य, ग्लानि, पश्चात्ताप आदि नाना प्रकारके भावोंमें तन्मय होते हुए और परस्पर रामकुंवर हीरालालकी चर्चा करते हुए अपने अपने घरोंको लौटने लगे। कोई कहता था, अफसोस हीरालालने रतनचन्द जौहरीके नामको डुबा दिया। कोई कहता था, मालूम नहीं हुआ, महाराजने एकाएक किस अपराधपर इन दोनोंकी ऐसी दुर्दशा की। कहीं ऐसा न हो कि, ये बिचारे निर्दोष हों और लोगोंके कहनेसे इन्हें यह दंड दिया हो। कोई कहता था, सन्देह तो मुझे भी बहुत दिनसे था, परन्तु विश्वास नहीं था

अब निश्चय हो गया कि, अवश्य ही ये दोनों परस्पर पापपंकमें लिप्त थे। कोई कहता था, मैं भी बहुत दिनसे हीरालालको बुरी संगति में देखता था। यह उसीका फल है। सारांश यह कि, सबही लोग इस समय अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार फैसला देकर अपने अपने घर जा रहे थे केवल बालक गण उस जूलुसकी शोभा बढानेवाले रह गये नगरके प्रत्येक मार्गसे चारों ओर हीरालाल रामकुंवरिकी सवारी निकाली गई और अन्तमें उन दोनोंको उसी ठाठसे राज्यसेवक कंचनपुर राज्यकी सीमासे बाहर करनेके लिये ले गये। यह समाचार ज्यों ही सुभद्राके पास पहुंचे कि शोकके उद्रेकसे वह अचेत हो गई। और थोडी देरमें जब सचेत हुई, तब अपने भाग्यपर बडी करुणध्वनिसे रोने लगी हाय! संसारमें अब मैं जीकर क्या करूंगी! जब नाथ ही चले गये, तब मैं किसके लिये जीऊं? हाय हाय! मैंने कितना समझाया, पर प्राणनाथने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। और अन्तमें मुझपर यह चिर-वियोगका पहाड लाकर पटक दिया।

नाथ! तुम्हारे सम्मुख रहते हुए मैं सब कुछ दुख सह सकती थी, परन्तु अब तुम्हारे वियोगमे मैं तीन लोकके सम्पूर्ण सुख भी नहीं सह सकती। हे कांचनपुरनरेश! तुमने यह क्या अनर्थ किया! हाय मुझ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अबलापर तुम्हें कुछ भी दया न आई ऐसा ही करना था तो मुझे भी उनके साथ कर दिया होता। इससे मैं बहुत प्रसन्न होती।

हाय! अब मैं अन्तसमयमें पतिका मुख निरीक्षण किये बिना भी कैसे मरूं! और उनके वियोगमें जीऊं भी कैसे? हाय! मैं कहीं की भी न हुई। इस अभागी गर्भका अब मैं क्या करूं! इसका रक्षण कैसे होगा? हा हन्त! यदि अब मैं अपने प्राण देती हूं, तो अपने और तेरे घात करनेके पातककी भागिनी होती हूं। और जो रक्षा करती हूं तो प्राणनाथकी असह्य वियोगतासे उत्तप्त होना पडेगा। तू न होता तो आज प्रसन्नताके साथमैं उनकी अनुगामिनी होजाती, अथवा इस पापमयी संसारसे छुटकारा पानेके लिये, तथा मनुष्य-जन्मको सफल करनेके लिये जैनेश्वरी दीक्षा ले लेती। परन्तु दोनोंमेंसे एक भी नहीं हुआ।

सुभद्रा-इस प्रकार रोरोकर अपने दुःखोंको किसी तरह हलका कर रही थी कि, इतनेमें रतनचन्दजीकी दूकानका प्रधान मुनीम विनीतचन्द आया और बोला-मैं श्रीमान कंचनपुरनरेशकी आज्ञानुसार आपके पास आया हूं। क्योंकि आप शेठ रतनचन्दजीकी दूकानकी स्वामिनी बनाई गई हैं। आजसे उक्त दूकानका कामकाज आपकी इच्छानुसार चलाया जायगा। मैं दूकानका प्रधान मुनीम हूं, इसलिये सूचना देनेके लिये आया हूं। जो कुछ उचित समझें, मुझे आज्ञा दें। महाराजने यह भी संदेशा भेजा है कि, गत बातोंको भूलकर आप सन्तोषपूर्वक अपने चरित्रकी रक्षा करते हुए रहें।

महाराजकी ओरसे इस बातका सविशेष ध्यान रहेगा, कि आपको किसीकी ओरसे किसी प्रकारका कष्ट न पहुंचे। आप निशंक होकर अपनी हवेलीमें निवास करें। इसके सिवाय मैं एक विश्वासपात्र नौकर और दो तीन सदाचारिणी दासियोंकी तजबींज करके आया हूं। वे आज संध्यातक आपकी सेवामें उपस्थित हो जावेगी। उनके आ जानेसे आपको शारीरिक कष्ट न उठाना पडेगा। यह सच है कि, आपपर एक असह्य कष्ट आकर पडा है, और उसके आगे यह सब वैभव तुच्छ है, परन्तु अपनी शरीरिक अवस्था देखकर इस समय सन्तोष किये बिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और दुःखको भुलाये बिना गत्यन्तर ही नही है। इससे अधिक और मैं क्या कहूं, आप-स्वयं बुद्धिमती हैं, सब कुछ सोच समझ सकती हैं। इसके उत्तरमें सुभद्राने कुछ भी नहीं कहा, और मुनीमने भी उत्तरकी आवश्यकता न समझकर अपनी राह ली।

यहां पाठक बडी उलझनमें पडे होंगे कि, एकाएक हीरालाल तथा रामकुंवरिकी ऐसी दुर्दशा क्यों की गई और सुभद्रा दूकानकी अधिकारिणी क्यों बनाई गई। इसलिये हम उनके समाधानके लिये लिखना उचित समझते हैं कि, गतरात्रिको सुभद्राके कमरेके पास जो अज्ञातपुरुष कम्बल ओढे हुए खडा था, वह और कोई नहीं स्वयं कंचनपुरनरेश थे।

प्रजाके सुख दुखकी सुधि लेनेके लिये वे निरन्तर दूसरे चौथे दिन गुप्तरूपसे नगरमें घूमा करते थे। और इसलिये उनका सम्पूर्ण राज्यकार्य केवल तिलका पहाड बनानेवाले अथवा सुमेरुको राई बनानेवाले राज्यकर्मचारियोंके भरोसेपर नहीं चलता था। जिस बिषयमें उन्हें सन्देह होता था, उसका वे स्वयं अपनी दृष्टिसे निवारण करते थे। छोटेसे छोटे और बडेसे बडे आदमीसे मिलनेमें उन्हें संकोच नहीं होता था। सबके साथ वे एक सी दया और शिष्टताका बर्ताव करते थे।

खेद है कि, वर्तमानमें भारतवासियोंको ऐसे राजाओंकी प्राप्ति स्वप्न हो गई। यहां तो अब राजकर्मचारी ही सब कुछ हैं। जैसा चाहे, वैसा सफेद स्याह करनेका उन्हें अधिकार है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि, प्रजा अत्याचारकी चक्कीमें पिसी जाती है और राजेश्वरके कानोंतक उसकी भनक भी नहीं पहुंचती।

कंचनपुरनरेश उसी भेषमें हीरालालके साथ २ चले गये। थोडीदूर चलकर हीरालाल एक मकानमें प्रवेश करके अपने एक मित्रके साथ बाहर निकला। इस समय उसके हाथ में गहनेकी पेटी नहीं, किन्तु रुपयोंकी एक थैली थी। पश्चात् सौ डेडसौ कदम चलकर वह एक दूसरे मकानमें गया। उसके तीसरे मंजिलके एक दीवानखानेमें एक शमादान जल रहा था, और पांच सात आदमी बैठे हुए थे। हीरालालके पहुंचते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही वे सबके सब प्रसन्न हुए, मानो इसके आनेकी राह देख रहे थे। कंचनपुर नरेश एक किवाडकी ओटमें छुपकर भीतरकी बातें सुनने लगे

२ह दीवानखाना एक प्रतिष्ठित राजकर्मचारीका था, जिसके हाथमें सब प्रकारके आज्ञापत्र, योग्यतापत्र आदि लिखनेका अधिकार था। थोडे ही दिन हुए पुराने कर्मचारीके मरनेसे इसकी नियुक्ति की गई थी

इसका नाम सुन्दरलाल था। इसका बाहरी रंग ढंग बोल चाल, तथा कार्य करनेकी और उसमें सम्मत्ति देनेकी शैली ऐसी अच्छी थी कि प्रत्येक पुरुष उसे विश्वासकी दृष्टिसे देखता था। महाराजभी इसको विश्वस्त कर्मचारी समझते थे। परन्तु यथार्थमें इसका हृदय बहुत काला था। हीरालालने अपने मित्रोंके जरिये जो कि वहां पहले हीसे जमे हुए थे, पांचसौ रुपयेकी एक थैली सुन्दरलालको भेटकी और अपनी इच्छा प्रगट की।

इस विषयमें बहुतसा वार्तालाप हुआ, जिसे महाराजने खूब ध्यान देकर सुना। सबका सारांश केवल इतना ही था कि, सुन्दरलालने सब के सम्मुख प्रतिज्ञा की कि, मैं महाराजसे हीरालालकी योग्यता और चलनकी सिफारिस करके जैसे बनेगा तैसे उसे दूकानका सम्पूर्ण स्वत्व दिलवा दूंगा।

सुन्दलालकी प्रतिज्ञा सुनकर महाराजको इतना क्रोध आया कि उसके आवेशमें वे उसे उसी समय दंड देनेको तैयार हो गये। परन्तु तत्काल ही कुछ सोचकर और योग्य अवसर न देखकर वे वहांसे दबे पैर चुपचाप चल दिये।

राजमहलमें लौटकर उन्होंने उसी समय दो तीन गुप्तचरोंको बुलाया। और उन्हें आज्ञा दी कि, आज रात भरमें जिसतरह बन सके उस तरह रामकुंवरि और हीरालालके चालचलनका सच्चा २ अनुसंधान करके प्रातः काल हमको सूचित करो।

गुप्तचर (जासूस) 'जो आज्ञा' कहकर उसी समय चले गये, और महाराज बिश्राम करनेके लिये शयनागारमें गये। प्रातःकाल सोकर उठते ही महाराजको जासूसोंने अपनी २ विज्ञप्ति पृथक् २ सुनाई, जिसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुनकर महाराजने जयदेवके कथनको और अपने अनुमानको यथार्थ पाया।

उसी दिन दरबारमें सुन्दरलालने मौका पाकर महाराजसे हीरालालकी सिफारिश की और उसका हक उसे देनेके लिये भी प्रार्थना की महाराज उस समय अपने क्रोधको संवरण न कर सके। उन्होंने उच्चैः स्वरसे कहा,—इस पापीको इसी समय हथकडी डालकर ले जाओ और एक सालके लिये जेलमें ठूंसदो! हीरालालके मित्रोंका भी यही सत्कार करो। इसके सिवाय हीरालाल और रामकुंवरिको राजकीय पद्धतिके अनुसार काला मुंह करके देशसे निकाल दो। रतनचंदकी दूकानका सम्पूर्ण अधिकार हीरालालकी साध्वी स्त्री सुभद्राको दे दो। इस आज्ञा के सुनते ही दरबारमें सन्नाटा छा गया। लोग एक दूसरेके मुंहकी ओर देखने लगे। एकाएक बिद्युत्पात होनेसे मनुष्यकी जो दशा होती है, सुन्दरलालकी वही दशा हुई। महाराज क्रोधसे आरक्त नेत्र किये हुये उसी समय अन्तःपुरमें चले गये।

उन्नीसवां पर्व।

रात्रिके ग्यारह बज चुके हैं। सूर्यपुरके उद्यानवाले राजमहलके फाटक पर एक बलिष्ठकाय सिपाही पहरा दे रहा है। उसकी उमर २५ वर्षके अनुमान होगी। शरीर ऊंचा परन्तु सुडौल है। सिरपर एक बडा भारी सफेद साफा बंधा हुआ है। कमरमें तलवार लटक रही है। एक हाथमें बरछी लिये हुए है और दूसरा हाथ मूंछों पर है। साफेको छोडकर सब पोशाक खाकी रंगकी है। पैरोंमें दूर तक सुनाई देनेवाले आवाजदार जूते हैं।

समीप ही एक सुन्दर स्त्री द्वारके सहारे बैठी हुई है। उसके दोनों हाथ रस्सीसे बंधे हुए हैं। स्त्रीका नाम मालती है। यह दो तीन दिनसे राजमहलमें सुशीलाके पास जाया करती थी। और उसे घंटों तक गुप्त रूपसे वार्तालाप किया करती थी। आज किसी चालाक दासीने दोनोंके कथोपकथनमें यह सन्देह करके कि, ये दोनों भाग जावेंगी, उदयसिंहको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूचना दी थी, जिससे उन्होंने मुश्क बांधकर रातभर पहरेमें रखनेकी और सवेरे समक्षमें उपस्थित करनेकी आज्ञा दी थी। तदनुसार कैद करके यह पहरेदार की रक्षामें सोंपी गई है।

मालती नवीना नहीं प्रवीना प्रौढा स्त्री जान पडती है। तो भी बाहरी वेषभूषासे, चमक दमकसे रगढंगसे अपने सौन्दर्यको ऐसा बनाये है कि, हजार नवीनाओंको नीचा दिखलाती है। उसके कज्जलरेखारंजित, आकर्णविस्तृत, बडे २ चंचल नेत्र और ताम्बूलरागलिप्त पक्वबिम्बादरोष्ठ ही उसकी सम्पूर्ण शोभाके अनुमानके लिये बस है।

पहरेदार इधर उधर टहलता अवश्य है, परन्तु उसकी दृष्टि मालतीको बराबर अपना केन्द्र बनाये हुये है। यह देखकर मालतीके हृदयमें छुटकारेकी आशाका संचार हो रहा है।

थोडी देरमें अवसर पाकर उसने पहरेवालेके साथ वार्तालाप करना प्रारंभ किया। पहरेवाला हो, चाहे यमदूत हो, सुन्दरी रमणीके साथ वार्तालाप करनेकी इच्छा किसे नहीं नहीं होती? मालती पहले यहां वहांकी सामान्य बात करके उससे नाम, धाम, गृहकर्म, सुखदुःख, आदिकी बातें पूछने लगी।

अपने विषयमें मालतीकी इतनी उत्सुकता देखकर पहरेवाला बहुत प्रसन्न हुआ। मालती भी अवसर देखकर अपने अस्त्र शस्त्र बाहिर निकालके रखने लगी। एक ओर मालतीका अमृतमय रसालाप, और दूसरी ओर उसके साथ २ उन विशाल नेत्रोंका अव्यर्थ कटाक्षपात! बेचारा पहरेवाला पानी २ हो गया। जब मालतीने देखा, मेरे शस्त्र बराबर काम कर रहे हैं, तब वह कोमल स्वरसे बोली—"मुझे न जाने क्यों डर लगता है। इस समय ठाकुर साहब! जरा आप मेरे पास आकर न बैठ जावें?"

पहरेदार चटसे मालतीके समीप जा बैठा। कुछ देर यहां वहांकी बातें हो चुकनेपर मालतीने ठाकुर साहबपर दो चार कटाक्ष संधान कर कहा—"आपके मस्तकपर पसीना बहुत आ रहा है, एक बार मेरे बन्धन खोल दो, तो मैं हवा कर दूं। पीछे फिर बांध देना।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठाकुर साहबके मस्तकपर पसीनेकी एक बूंद भी नहीं थी। परन्तु मालती "विना पसीना देखे कैसे कह देगी ? और इन सुकोमल हाथोंकी हवा भला किसको नसीब हो सकती है।" यह विचार कर ठाकुरसाहबने तत्काल ही बंधन खोल दिये। तब मालती अपने अंचलके द्वारा कुछ देर तक हवा करके थम रही। पीछे ठाकुर साहबका साहस नहीं हुआ कि, उस लावण्यवतीसे बंधनके लिये फिर कहें। बेचारे स्वयं ही उसके बंधनमें बन्ध हो चुके थे।

थोडे समयके पश्चात् मालतीने कहा—ठाकुर साहब ! तुम्हारी स्त्री क्या तुमसे प्यार नहीं करती ?

पहरेवालेने किंचित् विस्मित होकर पूछा—क्यों ?

मालतीने कहा—"यदि करती होती, तो ऐसी पावसकी रात्रियोंमें तुम सरीखे स्वामीको घरसे बाहर जाने देती ?'

ठाकुरसाहबने एक लम्बी सांस ली।

मालतीने शस्त्र संधानकर कहा—"ठाकुर साहब ! क्या कहूं, कहने में लज्जा आती है किन्तु यदि तुम मेरे स्वामी होते, तो ऐसे समयमें मैं तुम्हें कभी बाहर नहीं जाने देती।"

पहरेवालेने फिर एक लम्बी सांस ली।

"अहा ! यदि तुम प्राणनाथ होते तो···" इतना कहकर मालती अटक रही और उसने भी एक स्वास ली। साथ ही पहरेवालेको अपने तीक्ष्ण—कुटिल कटाक्षोंका निशाना बनाया। बेचारेका मस्तक चकरा गया। वह धीरे २ मालतीके और भी पास खिसक गया। मालती भी थोडीसी उसकी ओर खिसक आई। और इसी समय उसने पहरेवालेके हाथपर अपने कोमल करपल्लव स्थापित कर दिये। तब क्या था, ठाकुर साहबकी अकल कूचकर गई।

मालती कहने लगी—पूछनेमें संकोच तो होता है, परन्तु पूछती हूं, कि, क्या तुम पीछे कभी मेरा स्मरण करोगे ?

पहरे०—तुम्हारा स्मरण नहीं करूंगा ? नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मालती—क्या तुमसे एक मनकी बात कहूं ?

पहरेदार—कहो न—कहो ।

मालती—नहीं, अब नहीं कहूंगी । न जाने तुम उससे मेरे विषयमें क्या समझो ।

पहरेदार—नहीं ! नहीं ! कहो, कहनेमें क्या हर्ज है ? मैं तो तुम्हारा दास हूं ।

मालती—मेरा जी होता है, कि अपने पापी पतिका मुंह काला करके तुम्हारे साथ रहने लगूं ।

इतना कहकर मालतीने फिर एक कटाक्षपात किया । पहरेदार आल्हादसे उछल पडा ।

पहरेदार—रहोगी ?

मालती—रक्खोगे, तो रहूंगी ।

पहरेदार—तुम्हें रक्खूंगा नहीं ! किन्तु प्यारी ! तुम्हारा दास हो रहूंगा ।

"इस अपूर्व प्रेमका तुम्हें क्या पारितोषिक दूं ? अच्छा, यही ग्रहण करो ।" यह कहकर मालतीने अपने गलेका एक सुवर्णहार उतारकर पहरेदारके गलेमें पहना दिया । उस समय ठाकुरसाहब सशरीर स्वर्गमें जा पहुँचे । मालती बोली—शास्त्रमें कहा है कि, "अपने गलेकी माला दूसरेके गलेमें डालना विवाह कहलाता है । "

पहरेदारने हंसते २ कहा—'तब तो तुम्हारे साथ मेरा विवाह होगया ।"

"इसमें अब सन्देह ही क्या रहा ? " यह कहकर मालती कुछ देर तक निस्तब्ध सी हो रहीं, मानो किसी गहन चिन्तामें मग्न है । पहरेदार बोला क्या सोच रही हो ?

मालती—जान पडता है, मेरे ललाटमें सुख नहीं लिखा है । मैंने अच्छा नहीं किया, मेरे लिये तुम अपने बालबच्चोंको नहीं छोड सकोगे और यहां तुम्हारे साथ रहकर मुझे सुख नहीं मिल सकता ।

पहरेदारने गर्वके साथ कहा—क्यों क्या अडचन है ? हमारे सुखमें कौन बाधा डाल सकता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मालती—बाधा डालनेवाला वही जले मुंहका मेरा पति है। वह बडा विकट है। यदि सुन पावेगा, तो हम दोनोंको रसातलमें पहुंचाये बिना न रहेगा। उसका नाम याद कर मुझे तो कंपकपी छूटती है। इसके सिवाय सवेरे मुझे राजकुमारके समक्ष भी तो तुम्हें पेश करना पडेगा। उस समय क्या करोगे? स्त्रियोंके लिये उनकी जैसी कुछ नियत रहती है, सो तो तुम जानते ही हो।

पहरे०—सो तो कुछ बात नही है। (मूंछपर हाथ फेरते हुए) मेरे जीते जी वह तुम्हारा मनहूस पति कुछ नहीं बिगाड़ सकता। और राजकुमारकी भी मजाल नही है कि, तुम्हारी ओर नजर उठाकर देख सके। बहुत करेगा, अपनी नौकरी छीन लेगा।

मालती—सो तो मुझे भी तुम्हारे बल पौरुषका भरोसा है। परन्तु आखिर विडम्बना ही रही। जिस स्वातन्त्र्य सुखके लिये मैं तरसती थी, वह तो नही मिला।

पहरे०—[बहुत देरतक सोचकर] तब क्या करना चाहिये?

मालती—(उदास होकर) कुछ नहीं। मेरे पीछे तुम कष्टमें क्यों पडते हो। मेरा जो कुछ होगा, होता रहेगा। समझ लूंगी, मेरे भाग्यमें सुख लिखा ही नही है। (आंखोंमें आंसू भरकर) हाथ जोडती हूं। अब तुम इस विषयको छोडदो और अपना काम करो। अभी जो बातें हुई हैं, उन्हें भूल जाओ।

इस समय मालतीने ऐसी विलक्षण मुद्रा बनाई और इतना शोक का उद्रेक दिखलाया कि ठाकुर साहबका जी मोम हो गया।

पहरे०—(हाथ पकडकर) प्यारी! ऐसी बात मत करो। तुम्हे अब मैं कभी नहीं छोड सकता। जैसा तुम कहो, मैं वैसा करनेके लिये राजी हू। तुम्हारी आज्ञा हो तो, मैं अभी साथ चलनेको तैयार हूं। तुम्हारा शोक मुझसे देखा नही जाता। तुम्हारे लिये मैं सब कुछ कर सकता हूं।

यह सुनकर मालती अपने प्रयत्नको सफलताके मार्गपर आया समझकर मन ही मन प्रसन्न हुई। परन्तु ऊपर उदासीनताकी छाया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिखलाती हुई बोली-नहीं, मुझे तो दृढ विश्वास हो चुका है कि, विधाताने मेरे ललाटमें सुख नहीं लिखा। क्या आश्चर्य कि मेरे साथ तुम्हें भी दुःख भोगना पडे, इस लिये तुम इस प्रपंचमें मत पडो।

इस समय ठाकुरसाहबको अपनी पिछली बात पर दृढता दिखानेका जोश चढा। आप खडे होकर बोले—नहीं, मैं निश्चय कर चुका जहां तुम कहो, अभी चलनेके लिये तैयार हूं। अच्छा, तो तुम यही बैठना, मैं घर जाकर रास्तेके खर्चके लिये कुछ रुपये और जरूरी सामान लेकर आता हूं।

मालती—कटाक्ष संधान कर अजी, मुझे धोखा क्यों देते हो? साफ क्यों नहीं कहते कि ठाकुरा इनसे मिलनेको जाता हूं।

पहरे०—नहीं! प्यारी। सचमुच अब मैं तुम्हारा दास हो चुका हूं। इसमें धोखा नहीं हैं। मैं बहुत जल्दी लौटके आता हूं।

मालती—मुसकुराकर और तब तक मैं कहीं भाग गई तो? रस्सीसे बांधे आओ न?

पहरे०—खैर, ये हंसी मजाककी बातें फिर करना। अभी काम सिद्ध करने दो।

मालती—लौटके आवोगे, तो सही?

पहरे०—क्या दो चार दिनमें आऊंगा, जो ऐसा कहती हो? बस गया और आया।

मालती—देखो! तुम्हे मेरे सिरकी कसम है! कहीं ठकुराइनके प्रेममें न उलझ जाना।

पहरे०—नहीं! नहीं! प्यारी! तुम मुझे इतना अविश्वासी मत समझो।

मालती—अच्छा जाओ, परन्तु यह तो कहो कि, मुझे अकेले यहां डर नहीं लगेगा? हाय! मेरी तो छाती धडकती है।

पहरे०—नहीं, यहां डर किस बातका है? मुझे देर नहीं लगेगी।

ठाकुरसाहबके जीमें मालतीके विषयमें तिलार्द्ध भी संशय नही रहा। बच्चाजी, ऐसे उल्लू बने कि, आगा पीछा सब भूल गये। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी नहीं सोचा कि, यह वही स्त्री है जैसे मैंने घटेभर पहले रस्सीसे कसके बांधा था।

पहरेवालेने पीठ फेरी कि, मालतीने अपनी सफलता पर प्रसन्न होते हुए बंगलेके भीतर प्रवेश किया। रात आधीसे ज्यादा बीत चुकी थी, इसलिये बंगलेकी प्रायः सम्पूर्ण दासियां अचेत होकर खुर्राटे ले रही थीं। आज विशेष निश्चिन्ततासे सोनेका कारण भी था। सुशीला मालतीके पकडे जानेसे बहुत व्याकुल थी। कभी बाहर जाती थी और कभी भीतर आती थी। अभीतक उसकी आंखोंमें निद्राका आभास भी नहीं आया था। यद्यपि उसे अपनी प्यारी सखी मालतीकी बुद्धिमानीका बडा भारी विश्वास था, तौ भी उसके पकडे जानेसे सचिन्त्य हो गई थी।

जिस दिनसे सुशीलाके यहां मालतीका आवागमन प्रारंभ हुआ है, उसी दिनसे उसकी चर्यामें एक विलक्षण प्रकारका परिवर्तन हो गया है। मुखमण्डलपर दीप्ति आ गई है, नेत्र प्रफुल्लित रहते हैं, शरीरमें स्फूर्तिचंचलता दिखलाई देती है। और उदासी विदा लेगई है। यद्यपि वह अपने इस परिवर्तनको छुपानेका बहुत कुछ प्रयत्न करती है, परंतु उसमें सफल नहीं होती।

समय २ पर उसके मुखमण्डलपर जो हसीकी रेखा झलक आती है, उससे वहांकी दासियां इस परिवर्तनका कारण जाननेके लिये उत्कण्ठित हो जाती हैं। मालतीके पैरकी आहट सुनकर सुशीला कमरेसे बाहर दौड आई और यह पूछनेके लिये आतुर हुई कि तुम कैसे छूट आई? परन्तु इसके पहले ही मालतीने कहा, तो अब देर मत करो। इस समय थोडा भी विलम्ब होगा, तो सर्वनाश हो जावेगा।

पहले बंगले भरके दीपकोंको बुझा देना चाहिये, पीछे यहांसे चलना चाहिये। यह कहकर मालती शीघ्रतासे दीपनिर्वाण करने लगी। सुशीलाने भी उसे इस कार्यमें सहायता दी। जब बंगला सर्वथा अन्धकारमय हो गया, तब दोनोंकी दोनों उसी फाटक परसे बाहर निकल गई, जहां कि पहले पहरेदारका पहरा था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फाटक पार करते हीं एक युवाने आकर मालतीका हाथ पकड लिया और कहा—मालती महाशया ! अब कहां जाती हा ? मैं तुम्हारे साथ भाग चलनेके लिये तैयार हूं । तुम्हारी बाट ही देखर हा था । देखो, तुम्हारे लिये मैं अपने बालबच्चे सब छोड आया । राहखचके लिये जो कुछ रुपयों पैसोंकी आवश्यक्ता थी, सो भी ले आया हूं । युवाके ये वाक्य सुनकर सुशीला कांप उठीं कि, हाय ! यह क्या विपत्ति आई ? मालती भी चमक उठी, परन्तु तत्काल ही प्रसन्न होकर बोली—हां ! हां चलिये । परन्तु याद रखिये, मालतीके लिये मदनमालती छोड देनी पडेगी । सुनते ही युवा खिलखिला उठा और बोला—वाह ! क्या अच्छा अनुपास मिलाया है ।

मालती—जान पडता है, आप यहां बहुत देरसे आये हैं ।

युवा—हां जिस समय ठाकुर साहबसे आपका वार्तालाप प्रारम्भ हुआ था, उसी समय मैं यहां आ गया था । जब आज ११ बज चुके और आपका आगमन न हुआ तब मुझे चिन्ता हुई और आखिर बात क्या है, यह जाननेके लिये मुझे यहां तक आना पडा ।

मालती—अच्छा, तो अब देरी करनेका समय नहीं है । जिस तरह बने रात ही रात यहांसे दो तीन कोस निकल चलना है । इस समय डेरेपर जानेकी आवश्यकता तो नहीं थी परन्तु मालिनको सचेत कर चलना अच्छा है । इसलिये आप डेरेपरसे होकर आ जाइये हम धीरे २ चलते हैं ।

उधर थोडी देरमें मनके लड्डू पागते हुए ठाकुरसाहब घरसे लौटे । परन्तु फाटकपर आके देखते हैं, तो कोई नहीं है । एक वार पुकारा—"मालती !" यहां वहां देखा, परन्तु कुछ भी उत्तर नही मिला और न कोई दिखाई दिया सोचा, शायद बंगलेमें चली गई होगी । भीतर जाके देखा, बंगला अंधकारमय हो रहा है ।

वहां भी डरते २ पुकारा—"मालती !" परन्तु किसीने उत्तर नहीं दिया । उस समय ठाकुरसाहबका माथा ठनका । समझ आई कि मालतीने धोखा दिया । अब तो वह दासियोंका नाम लेकर जोर जोरसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुकारने लगा। जिसे सुनते ही दासियां घबडाकर उठ बैठी और चारों ओर अन्धकारका राज्य देखकर कर्तव्यविमूढ हो यहां वहां दौडने लगीं।

एक दासीने सुशीलाके कमरेमें जाकर आतुरतासे पुकारा—"सुशीला सुशीला!" परन्तु वहां कौन था, जो उत्तर देता। बस सबकी सब दासियां रोने चिल्लाने लगी कि हाय! सुशीला भाग गई। सुशीलाको कोई ले गया। दौडो! दौडो!

यह सुनते ही ठाकुरसाहबके रहे सहे प्राण और भी सूख गये।

इसी समय रेवती और बलदेवसिंह साधुओंके वेषमें सुशीलाको छुडानेके लिये आकर, चकित स्तंभित हो गये थे।

वीसवां पर्व।

भूपसिंह सुवर्णपुर छोडकर अपने प्राणप्रिय मित्र जयदेवका पता लगाता हुआ गांव गांव नगर नगर घूम रहा था कि अचानक एक दिन एक ग्राममें उसे साधुके वेषमें फिरते हुए, जयदेवसे मिलाप हो गया। जयदेवको कंचनपुर छोडे हुए उस समय अधिक दिन नहीं हुए थे परन्तु भूपसिंहको महीनों बीत गये थे।

उस समय एकाएक मिलाप होनेसे दोनों मित्रोंको जो आनंद प्राप्त हुआ, वह अकथनीय है। कलममें इतनी शक्ति नहीं है कि, वह वांचनेवालोंको उसका अनुभव करा सके। उस संयोगसुखका अनुमान वहीं कर सकते हैं, जो कभी अपने सच्चे मित्रसे विछुडकर मिले हैं।

जयदेव भूपसिंहकी मित्रताका वर्णन बहुत कुछ किया जा चुका है। इसलिये हम यहां इस विषयको फिरसे पल्लवित नहीं करना चाहते क्योंकि शायद ऐसा करनेसे हमें कथाका परिणाम जाननेकी उत्कंठावाले पाठकोंकी अप्रसन्नताका भाजन बनना पडे।

दोनों मित्र सुशीलाका पता लगानेके लिये चले। दोनोंको यही सम्मति हुई कि, पहले सूर्यपुरमें जाकर शोध करना चाहिये। क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदयसिंहकी ओरसे उन दोनोंको ही शंका थी। यदि वहां पता न चलेगा, तो फिर कोई दूसरा प्रयत्न करेंगे। सूर्यपुर पहुंचकर वे दोनों एक मालिन के घर जाकर ठहरे। मालिन बडी ही चतुरा और चालाक थी। वह सूर्यपुरके राजमहलमें निरन्तर आया जाया करती थी। और वहींसे जो कुछ प्राप्ति होती थी, उसीके द्वारा अपना उदरनिर्वाह करती थी।

जिस समय उदयसिंह सुशीलाको लाया था, अन्तःपुरमें इस बातकी चर्चा चली थी और वह मालिनको स्मरण थी। भूपसिंहने बातों ही बातोंमें उससे इस बातका पता लगा लिया कि, राजकुमारने कई महीने हुए उद्यानवाले बंगलेमें कहींसे एक सुन्दरी स्त्री लाके रक्खी है।

इसके पश्चात् भूपसिंहने मालिनको पारितोषिकादि देकर धीरे २ अपने हाथमें कर ली और उसे यह निश्चय करा दिया कि, मैं विजयपुरका राजकुमार हूं। जिस समय भूपसिंहने उदयसिंह और निहालसिंहकी लडाईमें कैद किया था, उस समय मालिनने भूपसिंहका नाम सुना था। इस समय उसे शूरवीर भूपसिंह को अपना पाहुना जानकर वह बहुत प्रसन्न हुई और उसे वह बहुत आदरकी दृष्टिसे देखने लगी। भूपसिंहको भी उसके द्वारा अपने कार्यके सिद्ध होनेकी आशा होने लगी।

भूपसिंहने जब यह विश्वास कर लिया कि, मालिन अपनी सर्वथा आज्ञाकारिणी दासी बन गई है, तब एक दिन उससे कहा—यदि तुम हमारे मित्रको उस स्त्रीके साथ जिसे कि राजकुमारने अपने बङ्गलेमें लाके रक्खा है, साक्षात् करा दो, तो तुम्हें बहुतसा पारितोषिक दिया जावेगा।

मालिन पहले तो डरी, परन्तु पीछे भूपसिंहके आश्वासनसे राजी होगई। उसने कहा—साक्षात् तो करा दूंगी परन्तु आपमेंसे किसी एकको मेरे साथ स्त्रीका रूप बनाकर चलना होगा।

यह सुनकर भूपसिंहने जयदेवकी ओर देखा और संकेत मात्रसे अपनी इच्छा प्रगट की कि, आपका जाना अच्छा होगा। जयदेव पहले तो स्त्री वेष बनानेके लिये संकुचित हुए। परन्तु पीछे राजनीतिके चार-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समुद्देशका स्मरण होनेसे और भूपसिंहके आग्रहसे उन्हें तैयार होना पडा। मालिन बडी ही चतुरा थी। उसने अपनी रुचिके अनुसार जयदेवको ऐसा सजधजके तैयार कर दिया कि उसे स्वयं भ्रम होने लगा, कि, यह स्त्री है, अथवा स्त्रीरूप पुरुष।

यहां हम पाठकोंकी यह शंका भी दूर कर देना चाहते हैं कि, जयदेव भूपसिंह जैसे वीर पुरुषोंको यह स्वांग रचनेकी क्या आवश्यकता थी?

यथार्थमें सुशीलाको संकटमुक्त करनेका कार्य बडी ही जोखिमका काम था। यदि उसमें जरा भी बलसे काम लिया जाता, तो उसके प्राणों पर आ बननेका डर था। इसके सिवाय राजा निहालसिंह इस षड्यंत्रसे सर्वथा अलिप्त और अनजान थे। उन्हें व्यर्थ ही सताना अनुचित था। यदि ऐसा न होता, तो भूपसिंह जयदेवके आनेके पहले ही राजा विक्रमसिंह तथा रणवीरसिंह सूर्यपुर जैसे कई राज्योंको नष्ट करके सुशीलाको छुडा ले जाते, और जासूसादि भेजनेकी विटम्बनामें न पडते।

पाठकोंको स्मरण होगा कि राजा विक्रमसिंहने बलप्रयोग करनेका विचार किया भी था, परन्तु इन्हीं कारणोंसे उनके शूरसेन मंत्रीने उन्हे रोक दिया था।

रातको अनुमान ग्यारह बजे मालिनने मालतीको साथ लेकर और अनेक उपयोगी बातें समझाकर उद्यानकी ओर प्रस्थान किया। उस समय नगरमें धीरे २ नीरवता तथा निश्चेष्टताका साम्राज्य जम रहा था। लोगोंके आवागमनके विना मार्ग शून्य हो रहे थे।

बंगलेके द्वारपर पहुंचते ही मालिनने पहरेदारसे हंसते हुए कहा—अच्छा आजकल आप हैं यहां? खैर मुझे तो बडी चिन्ता हो रही थी कि, न जाने पहरेपर कौन उजड्ड होगा? और मुझे भीतर जाने देगा या नहीं?

ठाकुरसाहब! आप तो पुराने नौकर हैं, इसलिये मुझे पहिचानते हैं, कि राजमहलमें मेरी कैसी कदर रही है। परन्तु आजकल तो ऐसे नालायक भरती हुए हैं, कि किसीको कुछ समझते ही नहीं है। अच्छा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ, जो आप मिल गये, नहीं तो यह बेचारी बंगला न देख पाती। लो बेटी ; चली जा, मैं सीधी राजमहलको जाती हूं। न जाने क्यों इतनी रातको महाराणीने याद किया है। वहांसे लौटकर तुझे लेती जाऊंगी नहीं तो यहीं चम्पाके अथवा और किसीके पास सो जाना। ठाकुरसाहब ! यह मेरी बहनकी लडकी है। बेचारी देहातकी रहनेवाली है।

इसने काहेको कभी ऐसे बङ्गले देखे होंगे। कल या परसों चली जावेगी। अच्छा है, आज देख लेगी। और रहेगी, तो एकाधबार और देख जावेगी। इतना कहकर मालिनने एक रुपया निकाल कर पहरेवालेके हाथपर रख दिया और उत्तरकी प्रतीक्षा न करके वहांसे चल दी।

मालती छमाके मारती हुई फाटक लांघकर बंगलेमें जा पहुंची। ठाकुरसाहब मालिनकी बातोंमें ऐसे उल्लू बने कि, कुछ भी न कह सके और उसने भी ऐसी चालाकीसे बातचीत की कि, बोलनेका मौका ही न आने दिया। ठाकुरसाहब शायद पीछे कुछ कहनेका साहस करते, परन्तु तबतक वह एक चांदीकी जूती लगाकर चल ही दी। बेचारे रुपयेको जेबमें रखकर कठपुतलीकी नाईं खडे रहे।

नगरके बाह्य प्रदेशमें होनेसे बंगलेमें एक तो योंही सूना सूना मालूम पडता है। दूसरे कई दिनसे उस ओर उदयसिंहका आगमन नहीं होता है, इसलिये दास दासियोंकी चहल पहल भी जरा कम रहती है। मालतीने जाकर देखा, दासियां चैनसे खुर्राटे लगा रही हैं। सबकी सब अचेत हैं। बीचके विशाल कमरेके एक कोनेमें एक चटाई पर हाथका सिराहना लगाये हुए सुशीला लेटी है। आंखोंमें निद्राकी छाया नहीं है तो भी वे मुद्रित हैं।

शरीर पर एक मलिन धोती, मस्तक पर सौभाग्यतिलक, और हाथोंमें चूडियोंके सिवाय और कुछ शृंगार नहीं है। वियोगके दुःसह तापसे उसके सम्पूर्ण अंगोपांग झुलस गये हैं। ऐसा जान पडता है, मानो संयोगस्वर्गकी प्राप्तिके लिये उसने विभूतिभूषित शरीरसे तपस्या करनेका उपक्रम किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुखकी कान्ति क्षीण होकर उदासीनतामें परिणत हो रही है कपोलमण्डल पर धवलिमा छा रहो है। आंखोंमें बहो हुई अश्रुधाराओंकी शुष्क रेखायें कंठपर्यन्त दिखाई देती हैं। भ्रमरराशिके समान श्याम सचिक्कण केश योगियोंकी जटाओंके समान रूक्ष होकर बिखर रहे हैं। सारांश यह कि सुशीलाका मनोहर शरीर विरहवेदनाके कारण सर्वथा परिवर्तित हो गया है।

मालतीरूपधारी जयदेव पहले तो यह सन्देह करके कि यह सुशीला नहीं है, द्वारपर ठिठक रहे। परन्तु किंचित् बारीकीसे देखने पर जब उन्हें विश्वास हो गया कि यही मेरी प्रियतमा है, तब भी वे समीप जानेको अग्रसर न हो सके। जहां खडे थे वहीं स्तम्भित हो रहे। कंठ रूद्ध हो गया, मस्तक पर पसीना आ गया, जी उमड आया, हर्ष शोक और करुणाका एक अपूर्व सम्मिलन हुआ, हृदय सब प्रकारके विचारोंसे शून्य होकर जडीभूत हो गया। कुछ क्षणके पश्चात् हवाके एक झोंकेसे उस कमरेकी खिडकियां बन्द हो गईं। और उनकी आहट पाकर सुशीलाने नेत्र खोल दिये। उनमें निद्राका नाम नहीं था। अपने समीप एक अपरिचित स्त्रीको खडी देखकर उसने पूछा, क्यों खडी हो?

जयदेव अवाक् हो रहे। बहुत विचार किया, परन्तु कंठसे एक अक्षर भी नहीं निकला। उत्तर न पाकर सुशीलाने फिर पूछा, क्यों बोलती क्यों नहीं हो? कहो, उस पापात्माका सन्देशा हो, तो वह भी कहो! मैं दयाकी पात्रा नहीं हूं। तुम कौन हो, जो मेरे लिये! इस तरह संकोच कर रही हो! मैं मरी तो क्या, और जीती रही तो क्या!

यदि तुम मेरे मारनेकी आज्ञा लाई हो, तो मैं उससे बहुत प्रसन्न होऊंगी। मैं कलहीसे उसकी बाट देख रही हूं। उस दिन वह दुरात्मा ३ दिनकी अवधि देकर गया था, परन्तु आज ४–५ दिन हो गये।

जयदेवने बडी कठिनाईसे–बडी दृढतासे अपने मनको वशमें करके और आगामी कर्तव्यका निश्चय करके कहा–मैं तुम्हारे पतिका सन्देशा लाई हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुशीलाः—मुझे क्यों व्यर्थ कष्ट देती हो ! ऐसे सन्देश देनेवाली तो मेरे पास प्रतिदिन ही आया करती हैं। यह कहो कि, सन्देशका कुछ प्रमाण भी तुम्हारे पास है या नहीं ?

जयदेवः—हा ! देखो यह मुद्रिका किसकी है।

मुद्रिकाका नाम सुनते ही सुशीला बिछौनेपरसे उठ बैठी। और उसे हाथमें लेकर बडे गौरसे देखने लगी। यह मुद्रिका सुशीलाने प्रथम समगांमके समय अपने पतिको प्रेमोपहार स्वरूप समर्पण की थी उसपर सुशीलाका द्वितीय नाम "सरस्वती" खुदा हुआ था। मुद्रिका पहिचान लेनेके पश्चात सुशीलाने उस स्त्रीके मुंहकी ओर खूब बारीकीसे देखा और जीमें यह कहते हुए कि इस रूपको तो कभी देखा है पूछा—तुम और भी कोई ऐसा प्रमाण दे सकती हो जिससे मुझे तुम्हारे विषयमें कुछ भी सन्देह न रहे !

मालती—हां जितने कहिये, उतने प्रमाण दे सकती हूं। यह देखो मैं तुम्हारे नामकी चिट्ठी भी लाई हूं। ऐसा कहकर मालतीने एक बटुवेमेंसे चिट्ठी निकालकर दे दी। सुशीलाने उसे खोलकर बांचा। ठीक जयदेवके अक्षरोंसे मिलते हुए अक्षर थे। उसमें लिखा हुआ था—

प्रिये ! जिस स्त्रीके साथ यह पत्र भेजता हूं यह बडी विश्वासपात्रा है। दुख के दिन समाप्त होंगे। प्रयत्न कर रहा हूं। प्रिय भूपसिंह भी मेरे साथ हैं धैर्य्य रखना। तुम्हारे दर्शनके लिये व्याकुलता बढ रही है इस समय इतना ही····· तुम्हारा—जयदेव

इस चिट्ठीको पढकर सुशीलाके हृदयकी जो दशा हुई होगी उसका पाठक अनुमान कर सकते हैं। एक ओर चिरवियोगके अन्त होनेका सीमाधीक हर्ष दूसरी ओर एक नगरमें रहते हुए भी जीवन सर्वस्वके अदर्शनका शोक एक ओर संदेशा भेजनेकी कृतज्ञता दूसरी ओर स्वयं दर्शन न देनेका स्नेहरंजित ईषत्कोप एक ओर चिर रोधित—शोकाश्रुओंका प्रवाह, दूसरी ओर संकटमुक्त होनेके पश्चात्का भावी आनन्द, भिन्न भिन्न प्रकारके भावोंके चित्र उसके हृदय पर एकके पीछे एक खिचने लगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिट्ठी पढकर एकवार मालतीकी ओर देखा, फिर चिट्ठीको पढा फिर देखा और फिर पढा। इस प्रकार कइवार देखा कईवार पढ़ा चिट्ठीके पढनेसे सुशीलाकी मुद्रामें क्या २ फेरफार होता है मालतीका इस ओर सविशेष ध्यान था। उस समय वह अपने हृदय पर जो शासन कर रही थी वह बडे ही साहस धैर्य और जितेन्द्रियताका कार्य था।

परन्तु अपने अभिन्न शरीरको–अपने अर्धांगको इस प्रकारसे कौन कबतक पृथक रख सकता है! जयदेवका (अब मालती कहना छोड दीजिये) धैर्य्यस्तम्भ खिसकने लगा।

सुशीलाको चकित विस्मित दृष्टिसे अपनी ओर बार बार निहारते देखकर उसने कहा–क्या अभी तक आपकी शंका दूर नहीं हुई।

सुशीला—नहीं शङ्का तो अब नहीं रही। किन्तु एसा जान पडता कि तुम्हें मैंने कभी देखा है, परन्तु स्मरण नहीं आता। अस्तु इस बातको जाने दो और यह कहो कि, तुम्हारा डेरा यहांसे कितनी दूर है?

जयदेव–इसके पूछनेसे आपका अभिप्राय क्या है।

सुशीलाने एक दीर्घनिःश्वास खीचकर उत्तर दिया यों ही पूछती हूं

जयदेव–नही ठीक कहिये यदि इच्छा हो, तो मैं उनसे इसी समय मिला सकती हूं सुशीलाका मुखकमल खिल उठा। उसने बडी उत्कंठासे पूछा–क्या ऐसा हो सकता है।

जयदेव—हां यदि मैं चाहूं तो सब कुछ हो सकता है।

सुशीला—(विनम्र होकर) तो कृपा करके मुझे उनके पास ले चलो।

जयदेव—उन्हें ही यहां न ले आऊं।

सुशीला–वे क्या यहां आ सकते हैं।

जयदेव–क्यों नहीं।

सुशीला–तो बुला दो।

जयदेव—कितनी जल्दी बुलाऊं।

सुशीला–जितनी जल्दी हो सके।

जयदेव–मुझे क्या दोगी।

सुशीला–जो तुम मांगोगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जयदेव--देखो, भूलना नहीं।

सुशीला--नहीं। खूब स्मरण है।

जयदेव--तो, लो ये आ गये।

सुशीला रोमांचित होकर यहां वहां बडी व्याकुलतासे देखने लगी। परन्तु जब कोई नहीं है, तब दीन कातर होकर मालतीके मुंहकी ओर देखने लगी और बोली, कहां हैं? जयदेव उस समय बडी कठिनतासे चित्तको वशमें किये हुए मुसुकुरा रहे थे। उन्होंने कहा—तुम्हारे समक्ष ही तो हैं।

सुशीलाने मालतीकी ओर लालायित लोचनोंसे देखा। बस, मालती जयदेवका चित्त उस अपूर्व दृष्टिपातसे धैर्य्यच्युत हो गया। उसी समय उसने सुशीलाको अपने बाहु पाशमें बद्ध करके मुखचुम्बन करते हुए कम्पितस्खलित स्वरसे कहा–यह देखो, मैं उपस्थित हूं। मैं ही तुम्हारा अभागा पति हूं।

सुशीलाका कोमल हृदय एकाएक उस अचिन्त्य हर्षकी चोटको नहीं सम्भाल सका। इसलिये उसी पाशवद्ध अवस्थामें वह चेतनाविहीन हो गई। जयदेव भी अपने शरीरको अधिक समय तक नहीं सम्भाल सके दोनों एक दूसरेकी ओर अनिमिष नेत्रोंसे देखने लगे। स्नेहकी अविरल अश्रुधारा बहने लगी। दोनों आक्रन्दन करने लगे। पाठक! बतलाइये, संयोग सुखमें यह रोना और आंसू बहाना क्यों होता है?

\+ \+ \+

मालती रूपधारी जयदेव उस दिन रातभर सुशीलाके पास रहे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि, वह रात दोनोंकी व्यथा वार्ताओंमें, पारस्परिक उलाहनोंमें और कष्टमुक्त होनेके विचारोंमें ही व्यतीत हो गई। प्रातःकाल होनेके पहले जयदेव बडे कष्टसे विदा लेकर अपने डेरेपर चले गये। उस समय तक बंगलेकी दासियां चैनसे नींद ले रही थीं। पहरेवाले ठाकुर साहब प्रातःकालकी ठण्डी हवाके झोंकोंमें फाटक पर बैठे हुए नींदमें आगेको झुके जा रहे थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरे दिन रातके ठीक बारह बजे श्रीमती मालतीजी फिर बंगलेके फाटक पर आ पहुंचा और ठाकुरसाहबको एक चिदानन्द तथा एक तिरछे कटाक्षका दान करती और कमरको बल देती हुई अपने अभीष्ट स्थान पर चली गईं। तीसरे दिन भी उन्होंने ऐसा ही किया। परन्तु आज एक दासीने जिसका नाम चम्पा था, मालतीको आते हुए देख लिया।

उस समय वह लेटी हुई थी, परन्तु उसे निद्रा नहीं आई थी। एक अपरिचित स्त्री को आते हुए देखकर उसे सन्देह हुआ और इसलिये यह धीरे से उठकर कमरे की एक खिडकी के पास ओट में खडी हो गई। वहां से सुशीला और जयदेव की बातें अस्पष्ट रीति से सुनने में आती थीं।

उस समय वे दोनों वहां से निकल चलने की बात चीत कर रहे थे। उससे चम्पा यह तो नहीं समझ सकी कि, यह कोई पुरुष है, परन्तु इस विषय में उसे कुछ भी सन्देह नहीं रहा कि यह कोई धूर्ता स्त्री उसे छुडाने के लिये आई है। बस, उसी समय उसने एक कोठरी में जाकर एक कागज पर कुछ लिखा और एक दासी को जगाकर उसके हाथ में देकर कहा—इसी समय राजकुमार के पास ले जाकर इस पुरजे का जवाब लाओ। दासी तत्काल ही उदयसिंह के पास गई।

उदयसिंह उस समय अपने मित्र के साथ फूटे मन्दिर में जाने को तैयार था, क्योंकि उस दिन रविवार था। पुरजे को बांचकर उसने मुंह जबानी कह दिया कि, अच्छा कुछ डर नहीं है। उसको मुश्कें बांधकर कैद कर लो, और पहरेदार की निगरानी में छोड दो। मैं प्रातःकाल आकर उसका निपटारा कर दूंगा।

दासी ने लौटकर यह समाचार चम्पा को आके सुना दिया। तदानुसार दासियों ने मिलकर मालती को पकड के कैद कर लिया और ठाकुर साहबके हवाले कर दिया। मालती ने उस समय जरा भी बलसे काम नहीं लिया। उसने बडी सरलता से अपनी मुश्कें बांध लेने दीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुशीला अवश्य ही घबडा गई, परन्तु पीछे मालती के सांकेतिक आश्वासन से उसे बहुत कुछ ढाढस बंध गया।

इसके पीछे क्या हुआ, सो पहले कहा जा चुका है।

इक्कीसवां पर्व।

जबसे एक राह चलते पथिक से जयदेव, भूपसिंह और सुशीला के विजयपुर को लौट आने के समाचार नगरवासियों ने सुने हैं, तबसे विजयपुर में आनन्द की लहरें उच्छलित हो रही हैं। प्रत्येक बालक, प्रत्येक युवा के, प्रत्येक वृद्धके, प्रत्येक भिक्षुकके, प्रत्येक धनिकके, जिसका मुंह देखा उसीके मुंह पर आज मूर्तिमान आनन्द विराजमान है।

प्रत्येक वीथीमें, प्रत्येक मार्गमें, प्रत्येक घरमें, प्रत्येक महलमें, प्रत्येक उद्यानमें, प्रत्येक सरोवर में, जहां देखो वहां आनन्द की मनोहारिणी प्रभा प्रभास्फुट हो रही है। राजमार्ग ध्वजा पताओं से सुसज्जित हो रहे हैं। महलों के द्वार मणिमुक्तावेष्टित बंधनवारों से और साधारण स्थिति के गृहस्थोंके द्वार पत्रपुष्प बंधनवारोंसे सजाये गये हैं। मन्दिरों के द्वारों पर मधुर वाद्यध्वनि हो रही है। नृत्य गायन हो रहे हैं। सजे हुए पुरुषों के झुंड के झुंड आनन्द कलरव करते हुए इधर उधर आते जाते दिखाई देते हैं।

मकानों की छतों पर बैठी हुई स्त्रियां मङ्गल गीत गा रही हैं। जगह २ सदावर्त खुल रहे हैं। आहार वस्त्रादि जिसे जो कुछ चाहिये, वह मिलता है। देव मन्दिरों में पूजन हवनादि पुण्य कर्म हो रहे हैं। सारांश यह कि आज विजयपुर साक्षात् स्वर्ग बन रहा है।

कहने की आवश्यक्ता नहीं है कि, यह आनन्द कोलाहल विजयपुर की गई हुई शोभा के, गई हुई विद्या के, गई हुई वीरता के, किंबहुना गये हुए प्राणों के लौट आने से हो रहा है। आज विजयपुर और विलासपुर के जीवन सर्वस्व जयदेव भूपसिंह और सरस्वती के आने के समाचार जहां तहां सुनाई पडते हैं। विचार शील हृदय लोग कह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहे हैं, आज ऊजड हुआ विजयपुर फिर बस गया। विजयपुर की अनाथ प्रजा अनाथ हो गई। विद्वानों के ग्राहक, वीरों के चाहक, और अनाथोंके नाथ आ गये। महाराजा रणधीरसिंह और विक्रमसिंह के शुष्क तनपिंजर में उनकी कीर्तिका यशःपाठ करने वाले विहङ्ग फिर से आ गये।

रात दिन प्यास प्यास रटने वाले पपीहों की करुण ध्वनि सुनकर मेघों को दया आ गई। भीषण ग्रीष्म संतप्त भूमि फिर हरी भरी हो गई। शोकाकुलित अयोध्या रामचन्द्र, जानकी और लक्ष्मण के प्रत्यागमन से हर्षोत्फुल्ल हो गई।

राजमार्ग पर से एक बडा भरी जनसमुह उत्तर की ओर उमडा जा रहा है शंख घंटा, तुरही, भेरी, दुदुंभी आदि नाना प्रकार के बाजों का अपार नाद हो रहा है। हाथी घोडों और रथ पालकियों के मारे मार्ग चलना कठिन दिखता है। बन्दीजन विरद गायन करते जाते हैं। आगे आगे प्रधान मन्त्री आदि राज्य कर्मचारी और नगर के धनिक जा रहे हैं।

थोडी देर में यह महासमुद्र अपने रंगविरंगे वस्त्रों की लहरों से लहराता हुआ, कोलाहल स्वरूप शब्द करता हुआ उस उद्यानके समीप पहुंचा, जहां जयदेव, भूपसिंह और सुशीला के ठहरने की खबर सुनी थी।

यह उद्यान विजयपुर से अनुमान २ मील उत्तर की ओर है। देखने में उद्यान छोटा है परन्तु बडाही मनोहर है। विजयपुरके सैकडों विनोदप्रिय जीव यहां जी बहलाने को आया करते हैं। उद्यान के बीच में एक छोटा सा सरोवर है, जिसके चारों ओर सीढ़ियां बंधा हुआ पक्का घाट है। एक ओर एक छोटी दालान है। वर्षा के दिनों में प्रायः लोग उसी में बैठकर विश्राम पाते हैं।

उसी दालान में इस समय एक बडा ही मनोवेधक करुणा पूर्ण दृश्य उपस्थित है। महाराज रणधीरसिंह भूपसिंह को छाती से लगाये हुए अचेत हैं, भूपसिंह अचेत है, श्रीचन्द अचेत हैं, विद्यादेवी अचेत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, दोनों के चरणों में लिपटा हुआ जयदेव अचेत है विनयचंद्र अचेत है विक्रमसिंह अचेत है और उनकी गोद में सिर रक्खे सुशीला अचेत है।

दूसरी ओर उद्यान के वृक्ष, बल्लारी, पुष्पमंजरी अचेत हैं, सरोवर का निर्मल जल स्थिर अचेत है हजारों दर्शक जो उस स्थान को घेरे हुए हैं, सब के सब कठपुतलियों के समान नीरव निस्तब्ध तथा अचेत है। जहां देखो, तहां अचेतन का साम्राज्य है।

थोडी देर में इस गम्भीर शान्तिका भंग हुआ, शीतल जल सेवन से उन सबकी मूर्च्छा दूर हुई। साथ ही आक्रन्दन शुरू हो गया। विचित्र रोदन! किसी को विराम नहीं है।

रणवीरसिंह रोदन करते हैं, विक्रमसिंह अश्रुधारा से पृथ्वी परिप्लुत कर रहे हैं जयदेव की हिचकी बंध गई है, भूपसिंह कातर हो उठे हैं श्रीचन्द आक्रन्दन करते हैं विद्यादेवी नीरव होकर आंसू बहाती है, सुशीला रोती है, दर्शकगणों की भी यही दशा है किसी के मुंह से एक शब्द भी नहीं निकलता है। सबके सब मौन धारण किये हुए हैं। अपूर्व मूकाभिनय है। विलक्षण दृश्य है। विचित्र शोभा है। इस सुखके समय, इस शुभ सम्मिलन के समय रोदन का इतना कोलाहल क्यो? क्या कोई इसका उत्तर दे सकता है?

सुशीला विद्यादेवी के चरण पकडे हुए है, रणबीर भूपसिंह को छाती से लगाये हुए है, श्रीचन्द जयदेव का आलिंगन कर रहे हैं। पर आक्रन्दन कम नहीं होता। वियोग समय में संचित हुआ शोकवारि इस शुभ समय को पाकर हृदय सरोवर के किनारे तोडकर नयन प्रणालियों से प्रबल वेग द्वारा बह रहा है। परन्तु क्या इस रोदन को शोक कह सकते हैं? नहीं! रोदन ही सुख है। चिर वियोग के पश्चात् शुभ सम्मिलन के समय रोदन ही सुख है। इस शुभ सम्मिलन का रोदन पृथ्वी का नहीं है, स्वर्ग का है। यह आक्रन्दन लवणाक्त अश्रुधारा नहीं, किन्तु पवित्र प्रेम-रसकी स्वर्गीय सुधाधारा है। इस प्रेमगङ्गा के जल में जिन्होंने कभी अवगाहन किया है, वे धन्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ समय के पश्चात् आक्रन्दन कम हुआ। जयदेव ने महाराज रणवीरसिंह को और विक्रमसिंह को नमस्कार किया। भूपसिंह ने श्रीचन्द्र को तथा विलासपुर नरेश को नमस्कार किया और सुशीला ने तीनों को प्रणाम किया। सबने यथायोग्य आशीर्वाद दिया। साथ ही बन्दीजनों ने उच्चकंठ से गाया।

"जियै यह रामलखन को जोरा, सङ्ग में सीता बयस किशोरा।"

इसके पश्चात् मन्त्री आदि सब लोग आ गये। भूपसिंह और जयदेव सबसे योग्यतानुसार मिले और किसी को कुशल प्रश्न से, किसी को मिष्ट भाषण से, किसी को मन्दमुसक्यान से तथा किसी को दृष्टिनिक्षेप मात्र से ही प्रसन्न करते हुए विजयपुर की ओर चलने लगे। पीछे २ वह विस्तृत जन-सागर लहराता तथा आनन्द कलरव करता हुआ चला। मन्त्री आदि ने बहुत कुछ कहा कि आप लोग हाथियों पर, घोडों पर अथवा रथ पर जावें, परन्तु ऐसा करने के लिये वे राजी न हुए। और पैदल ही चलने में प्रसन्न हुए।

उस समय रणवीरसिंह विक्रमसिंह तथा श्रीचन्द्र की हर्षके मारे कुछ विलक्षण ही दशा होगई थी। उस समय वे अपने आपको विस्मृत थे। पगडी थी, तो जूते नहीं थे। दुपट्टा था, तो पगडी नहीं था। दूसरे आभूषणोंको तो पूछता ही कौन है? कभी सबके आगे चलने लगते थे, कभी सबसे पीछे हो जाते थे। कभी जयदेवको भूपसिंह कहते थे, और कभी भूपसिंहको जयदेव।

थोडी देर में नगरप्रवेश हुआ। छज्जा पर बैठी हुई कुलबधुओंने भूपसिंह—जयदेव-सुशीला पर पीत अक्षतों और मांगलिक पुष्पोंकी बालिकाओंने हंसकर, मुग्धाओंने मुसक्याकर, प्रौढाओंने हर्षके आंसू डालकर, और वृद्धाओंके आशीर्वाद देकर उन तीनों महाभाग्योंका सत्कार किया।

राजमहलके द्वारपर अनेक सौभाग्यवती स्त्रियां जलपूर्ण घट लिये हुए जिनपर कि घृतके दीपक जल रहे हैं, खडी हैं और परमाल्हादके करनेवाले मंगलगीत गा रही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहां पहुंचते ही भूपसिंह जयदेव तथा सुशीलाकी मङ्गल आरती उतारी गई। इसके पश्चात् और भी जो राजकीय रीतियां थी, उनकी पूर्ति की गई। राज्य के सम्पूर्ण सेवकोंको तथा बन्दोजनों को भरपूर पारितोषिक बांटा गया। ब्राह्मणोंको विद्वानोंको इच्छित दक्षिणा दी गई उसी समय एक दरबार किया गया और सम्पूर्ण आगत पुरुषोंका ताम्बूलादिसे सत्कार करके हर्ष प्रकाशित किया गया।

उस दिन महाराज रणधीरसिंह तथा विक्रमसिंह ने जयदेव तथा सुशीलाको राजमहलमें ही रक्खा। श्रीचन्द्र, विद्यादेवी तथा विनयचन्द्र भी वहीं रहे। वह दिन बडे ही आनन्दसे व्यतीत हुआ। सारा नगर सुखसागरमें आन्दोलित होता रहा।

दूसरे दिन श्रीचन्द्रजी जयदेव सुशीलाको अपने घर लिवा ले गये। उस दिन जौहरी श्रीचन्द्रने भी अपनी शक्ति भर उत्सव करने में कोई कसर नहीं रक्खी।

परिशिष्ट

जयदेव भूपसिंहादिकी दुःखरजनी समाप्त हो गई। सौख्य सूर्य का सुहावना उदय हो गया। विजयपुर राज्यकी पंकजप्रजा उस अपूर्ण प्रकाश से प्रफुल्लित होगई। इधर विलासपुर भी उसी दिन सुशीलादि के आगमन-समाचार सुनकर उत्सवमय बन गया।

जयदेवकी सम्मतिसे माहाराजा रणवीरसिंहने सुवर्णपुर नरेशके समीप अपने एक मंत्रीको यह समाचार लेकर भेजा कि भूपसिंह मेरे पुत्र हैं। वे प्रसन्नता से विजयपुर आ पहुंचे हैं। आप किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करें। यह समाचार फैलते ही सुवर्णपुर भी हर्षोल्लसित हो उठा।

महाराजा विजयसिंह बडे भारी ठाटवाटके साथ मदनमालतीको साठ लेकर विजयपुर आये और अपने सम्बन्धियोंके सत्कारसे सन्तुष्ट हुए। मदनमालती अपने प्राणनथको को पाकर प्रमुदित होगई पुत्रबधू सहित भूपसिंह को देखकर महाराज रणवीरसिंहके नेत्र शीतल हो गये महाराज विक्रमसिंहकी तथा बलवन्तसिंहकी इच्छा थी कि, उदय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिंह तथा बलवन्तसिंहको उचित दण्ड दिया जावे । परन्तु दयावान जयदेव और वीर्यवान भूपसिंहके आग्रहसे वे दोनों सर्वथा क्षमा करके छोड दिये गये ।

महाराज निहालसिंह (उदयसिंहकेपिता) को अपने पुत्रके उक्त काले कृत्योंको सुनकर बहुत दुःख हुआ । उन्होंने आज्ञा जारी कर दी कि, उदयसिंह और बलवन्त हमारे राज्य भरमें कहीं भी आश्रय न पावें

सूर्यपुरकी मालिनको बुलाकर बहुतसा पारितोषिक दिया गया और विजयपुरमें ही सदाके लिये उसकी जीविकाका प्रबन्ध कर दिया गया ।

जिस समय रेवतीने योगीका वेष धारण किया था और बलदेवसिंह उसका शिष्य बना था, उसी समय उन दोनोंके हृदयमें स्नेहने अपना स्थान बना लिया था । यह बात किसी प्रकार महाराज रणवीरसिंहके कानों तक पहुंच गई । इसलिये उन्होंने प्रसन्नताके साथ उन दोनोंको सदाके लिये स्नेहबंधनमें बांध दिया । विवाहके पश्चात् एक दिन रेवतीके आनेपर सुशीलाने मुसुकुराते हुए पूछा आइये ठकुराइनजी ! कहिये आपके शिष्य महाशय तो प्रसन्न हैं ? रेवतीने चटसे उत्तर दिया जी ! आपकी मालतीजीकी कृपा चाहिये, फिर अप्रसन्नताका क्या काम है ?

हीरालालकी स्त्री सुभद्राको एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई । गुणवती सुभद्राने बहुत उत्तम रीतिसे लालन पालन करके उसको बडा किया । ४–५ वर्षका होनेपर उसकी शिक्षा दीक्षापर कंचनपुर नरेश स्वयं देख-रेख रखने लगे । पश्चात् समर्थ होनेपर रतनचन्द्रकी दुकानका वह स्वामी बनाया गया । सुभद्राने पुत्रकी चिन्तासे निर्वृत्त होकर एक बुद्धिशालिनी आर्यिकाके निकट जिनदीक्षा ले ली ।

जयदेवके चले जानेपर कंचनपुरनरेशने रतनचन्दके दानद्रव्यसे एक पाठशाला खोल दी और अच्छे २ विद्वान अध्यापकोंकी उसमें नियुक्ति कर दी प्रतिज्ञानुसार कई वर्ष के बाद जयदेव ने कंचनपुर नरेश से जाकर भेट की, और श्रीरतनचन्द पाठशालाका अवलोकन करके सन्तोष प्रगट किया । कंचनपुर नरेशने जयदेवकी स्नेहवश बहुत दिन तक अपने यहां रक्खा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ दिनमें भूपसिंह और जयदेवको एक २ पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। बडे आनन्दसे उनके जीवनके दिन अतिवाहित होने लगे। महाराज रणवीरसिंह और जौहरी श्रीचन्द्र पौत्रोंके मुख देखकर स्वर्ग—सुखोंका अनुभव करने लगे।

रतनचन्द दीक्षित होगये। उनका दीक्षा नाम 'श्रीविमलकीर्तिमुनि' रक्खा गया। गुरुके पास विद्याभ्यास करके कुछ दिनोंमें उन्होंने असाधारण बिद्वत्ता प्राप्त कर ली। तपस्या करनेमें भी वे अद्वितीय हो गये इन्द्रियोंकी विषयलालसाओंका उन्होंने खूब दमन किया। अन्तरंग तपके शृङ्गारसे भूषित होकर वे संघके साथ बिहार करने लगे। और अपने अपूर्व उपदेशामृतसे चिरसतप्त प्राणियोंके चित्तोंको शान्तिता प्रदान करने लगे।

जयदेव सरस्वती पाठशालाका निरक्षीण करने के लिये बिलासपुर गये थे। महाराज विक्रमसिंहने उन्हें बुला भेजा था। और उसी समय श्री विमलकीर्तिमुनिका भी अचानक आगमन हुआ था।

उस दिन महाराज उनके दर्शनके लिये गये थे कि मुनिराजके व्याख्यानसे उनके हृदयपटपर संसारका भयानक चित्र खिंच गया। लौटके घर आनेपर भी वे उस चित्रको हृदयसे दूर नहीं कर सके। आखिर अपने राज्यका सम्पूर्ण भार जयदेवको सौंप करके वे दूसरे ही दिन दीक्षित हो गये। महाराणी मदनबेगा भी अपने पतिकी अनुगामिनी हो गई।

उधर विजयपुरमें यह खबर सुनकर महाराज रणवीरसिंह और श्रीचन्द्रको भी बैराग्य उत्पन्न हुआ। इसलिए वे भी गृहका सम्पूर्ण भार भूपसिंह और जयदेवको सौंप करके दीक्षित हो गये। विद्यादेवीने भी एक आर्यिकाके निकट आर्यिकाके व्रत ग्रहण कर लिये।

इस लोक सम्बन्धी संपूर्ण सुखोंको भोगकर के जो लोग परलोकके लिये भी यहीं प्रयत्न कर लेते हैं, उनके समान भाग्यशाली और बुद्धिमान् कौन हैं?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi